विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

Dhingra Family Foundation USA

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 7, अंक : 26
जुलाई-सितम्बर 2022
मूल्य 50 रुपये

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन पुस्तक विमोचन समारोह

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

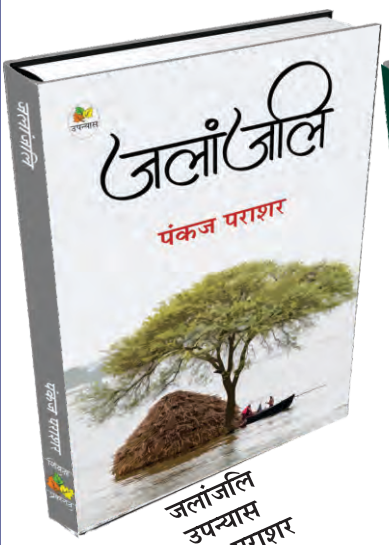

जलांजलि
उपन्यास
पंकज पराशर

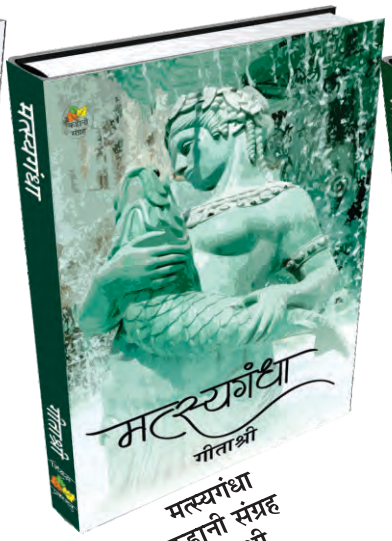

मत्स्यगंधा
कहानी संग्रह
गीताश्री

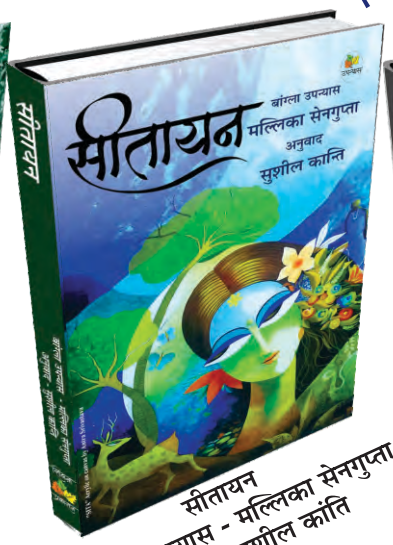

सीतायन
बांग्ला उपन्यास - मल्लिका सेनगुप्ता
अनुवाद - सुशील कांति

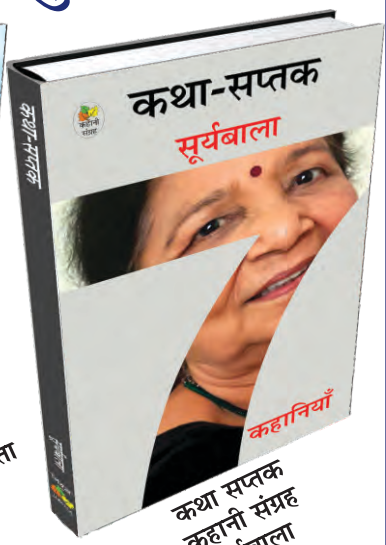

कथा सप्तक
कहानी संग्रह
सूर्यबाला

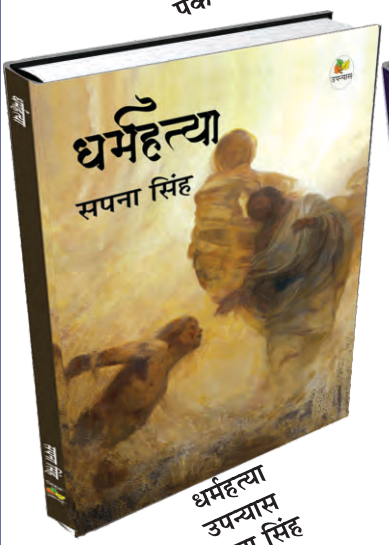

धर्महत्या
उपन्यास
सपना सिंह

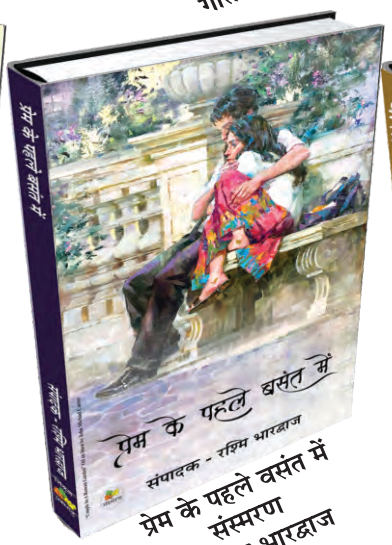

प्रेम के पहले वसंत में
संस्मरण
सं.रश्मि भारद्वाज

बोसोन
कविता संग्रह
नरेन्द्र नागदेव

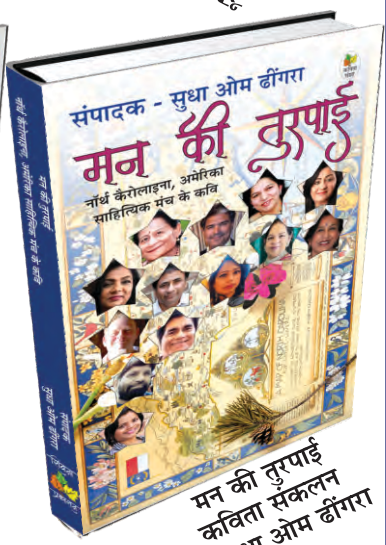

मन की तुरपाई
कविता संकलन
सं. सुधा ओम ढींगरा

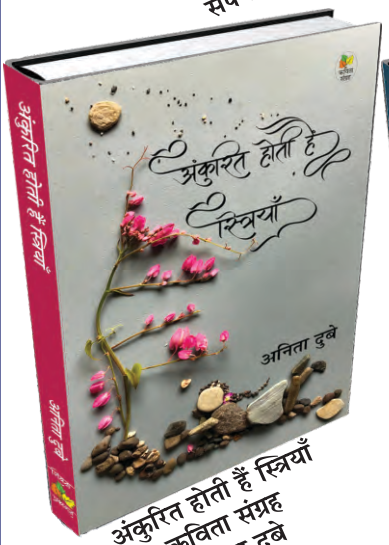

अंकुरित होती हैं स्त्रियाँ
कविता संग्रह
अनिता दुबे

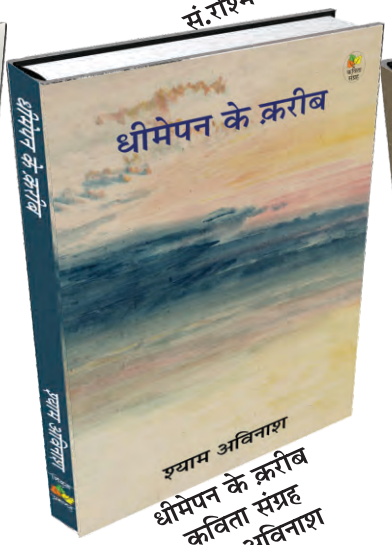

धीमेपन के क़रीब
कविता संग्रह
श्याम अविनाश

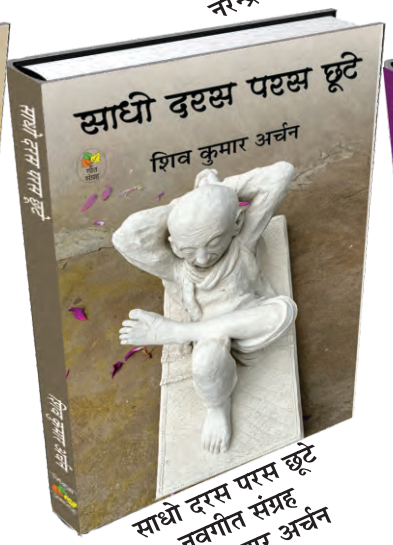

साधो दरस परस छूटे
नवगीत संग्रह
शिव कुमार अर्चन

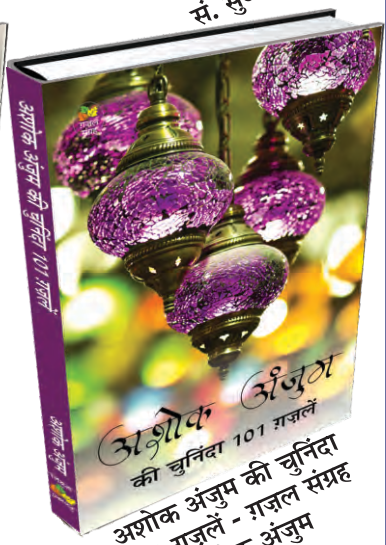

अशोक अंजुम की चुनिंदा
101 ग़ज़लें - ग़ज़ल संग्रह
अशोक अंजुम

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक
शहरयार
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह, आकाश माथुर
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 7, अंक : 26, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण चित्र
राहुल पुरविया

इस अंक में

यह अंक

वर्ष : 7, अंक : 26

जुलाई-सितम्बर 2022

आवरण चित्र / राहुल पुरविया

संपादकीय / शहरयार / 3

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

पुस्तक समीक्षा

मत्स्यगंधा
दीपक गिरकर / गीता श्री / 5

मालूशाही मेरा छलिया बुरांश
वंदना बाजपेयी / प्रज्ञा / 8

विमर्श- जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
दीपक गिरकर / सुधा ओम ढींगरा / 12

चौपड़े की चुड़ैलें
अदिति भदौरिया / पंकज सुबीर / 17

नक़्क़ाशीदार केबिनेट
मधूलिका श्रीवास्तव / सुधा ओम ढींगरा / 20

अम्बपाली - एक उत्तरगाथा
अभिषेक मुखर्जी / गीताश्री / 23

ख़ैरियत है हुज़ूर
डॉ. (सुश्री) शरद सिंह / उर्मिला शिरीष / 40

कुछ इधर ज़िन्दगी, कुछ उधर ज़िंदगी
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा / गीताश्री / 42

भाप के घर में शीशे की लड़की
रमेश शर्मा / बाबुषा कोहली / 44

शह और मात
डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा / मंजूश्री / 46

तीन गुमशुदा लोग, बुल्लेशाह
प्रमोद त्रिवेदी / प्रताप सहगल / 48

काला सोना
प्रगति गुप्ता / रेनू यादव / 50

ओ,जीवन के शाश्वत साथी
डॉ.नीलोत्पल रमेश / डॉ. मयंक मुरारी / 52

गांधी जी की लाठी में कोपलें
कैलाश मंडलेकर / डॉ. जवाहर चौधरी / 54

कवि के मन से
राजेश सक्सेना / प्रमोद त्रिवेदी / 56

समकाल के नेपथ्य में
भालचंद्र जोशी / डॉ. शोभा जैन / 58

हरे कक्ष में दिन भर
रमेश खत्री / प्रबोध कुमार गोविल / 60

भेड़ और भेड़िए
डॉ. प्रदीप उपाध्याय / धर्मपाल महेंद्र जैन / 62

तलाश ख़त्म हुई
'योगी' योगेन्द्र व्यास / प्रमोद देवगिरिकर / 64

धापू पनाला
राहुल देव / कैलाश मंडलेकर / 65

सूखे पत्तों पर चलते हुए
भालचंद्र जोशी / शैलेन्द्र शरण / 66

डीजे पे मोर नाचा
राहुल देव / कमलेश पाण्डेय / 67

खिड़कियों से झाँकती आँखें
शीला मिश्रा / सुधा ओम ढींगरा / 68

रपट

शिवना प्रकाशन पुस्तक विमोचन समारोह
आकाश माथुर / 39

इन दिनों जो मैंने पढ़ा

काला सोना
रेनू यादव

हमेशा देर कर देता हूँ मैं
पंकज सुबीर

उमेदा- एक योद्धा नर्तकी
आकाश माथुर
सुधा ओम ढींगरा / 26

केंद्र में पुस्तक

दृश्य से अदृश्य का सफ़र
अंजू शर्मा, डॉ. रेनू यादव, अदिति सिंह भदौरिया
सुधा ओम ढींगरा / 29

हमेशा देर कर देता हूँ मैं
प्रकाश कान्त, दीपक गिरकर, अशोक अंजुम
पंकज सुबीर / 34

शोध आलेख

डॉ. राकेश प्रेम का रचना संसार और विविध विमर्श
शोध : डॉ. दीप्ति / 69

संपादकीय

महाविद्यालयों के हिन्दी विभाग या हिन्दी के दुश्मन...?

एक समय था जब हर छोटे शहर या क़स्बे में साहित्य की बागडोर उस शहर के महाविद्यालय के हिन्दी विभाग के हाथों में होती थी। शहर में कोई भी साहित्यिक आयोजन होना हो, विद्वान अतिथि वक्ताओं को बुलाने हेतु संस्थाएँ हिन्दी विभाग से ही संपर्क करती थीं। और यह हिन्दी विभाग भी पूरा सहयोग करते थे। सहयोग इसलिए करते थे कि इनको समकालीन साहित्य समाज का पूरा ज्ञान होता था। विभाग प्रमुखों को, प्राध्यापकों को पता होता था कि किस विषय के लिए कहाँ से, किस विशेषज्ञ को बुलाया जा सकता है। इसके अलावा महाविद्यालयों के हिन्दी विभाग द्वारा भी समय-समय पर साहित्यिक आयोजन किए जाते थे, इन आयोजनों की गरिमा अद्‌भुत होती थी। देश के उस समय के प्रमुख हिन्दी विद्वान, साहित्यकार इन आयोजनों में भाग लेते थे और उनको सुनने का अवसर साहित्य प्रेमियों को मिलता था। वह नाम, जिनको केवल पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ा होता था, उनको सामने बैठ कर सुनने का अवसर उनके पाठकों को मिलता था। यह आयोजन उस शहर की साहित्यिक चेतना को जगाए रखने का काम करते थे। इस प्रकार देखा जाए, तो किसी भी शहर के महाविद्यालय का हिन्दी विभाग उस शहर में साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र होता था, किन्तु आज की तारीख़ में ऐसा लगता है कि महाविद्यालयों के हिन्दी विभाग ही हिन्दी के असली दुश्मन हैं। यदि आप अपने शहर के हिन्दी विभाग के किसी भी प्राध्यापक से जाकर बात करेंगे, तो आप पाएँगे कि हिन्दी साहित्य में इस समय, या पिछले पच्चीस-तीस साल से क्या चल रहा है, इसका इनको कुछ भी पता नहीं है। कितनी नई पीढ़ियाँ या नए लेखक आए हैं, आ रहे हैं इसके बारे में इनको कुछ भी ज्ञात नहीं। इस समय कौन सी प्रमुख पत्रिकाएँ हैं साहित्य की, उनके नाम पूछ लिए जाएँ, तो यह प्राध्यापक गण बगलें झाँकते नज़र आएँगे। इनसे बात करते समय आपको ज्ञात होगा कि इनके ज्ञान कोश में चालीस-पचास साल या उससे भी पहले के साहित्यकार ही स्थिर हैं। बात करते समय यह उन्हीं का नाम लेते रहेंगे। इनको कुछ पता भी नहीं होता कि इस समय हिन्दी में क्या चल रहा है, साहित्य जगत् में क्या चल रहा है। मज़े की बात यह है कि इन हिन्दी विभागों द्वारा जब आयोजन किए जाते हैं, तो उन आयोजनों के विषय भी वही होते हैं, चालीस-पचास साल पुराने। यहाँ आयोजित होने वाली संगोष्ठियों के विषय तो और भी पुराने होते हैं तथा छायावाद, उससे भी पीछे भक्तिकाल तक फैले होते हैं। अब तो हाल यह है कि आप अपने शहर या क़स्बे के किसी महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में चले जाइए और उनसे देश तो छोड़ा उसी शहर के प्रमुख साहित्यकारों के नाम पूछ लीजिए, उनको पता भी नहीं होगा कि उनके शहर में कोई साहित्यकार रहता है। जब अपने ही शहर के बारे में पता नहीं है, तो देश और दुनिया के बारे में इनको क्या पता होगा। यदि दुर्भाग्य से उस महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में कोई पीएॅच. डी. गाइड भी है, तो उन गाइड महोदय द्वारा पिछले कुछ वर्षों में करवाए गए शोध की सूची ज़रूर देखिएगा, उस सूची में आपको पिछले तीस-चालीस सालों का हिन्दी साहित्य सिरे से ग़ायब मिलेगा। वहाँ आपको विषय मिलेंगे पचास साल पुराने या शायद उससे भी पुराने। जिन विषयों पर पहले ही कई बार शोध हो चुके हैं, उन्हीं पर नाम बदल कर, थोड़ा हेर-फेर कर के शोध करवाए जा रहे हैं। ऐसा इसलिए कि नए विषय या समकालीन लेखन को शोध में शामिल करने के लिए तो पढ़ना पड़ेगा। पढ़ना होगा, समकालीन पत्र-पत्रिकाओं को, पुस्तकों को, नए लेखकों को। अपने आप को अपडेट रखना होगा कि क्या परिवर्तन आ रहे हैं, क्या नया हो रहा है, कौन से विमर्श चल रहे हैं, क्या प्रयोग किए जा रहे हैं। मगर सरकारी नौकरी लग जाने के बाद अपडेट रहने की क्या ज़रूरत है ? यह कोई लाइसेंस तो है नहीं कि आपको इसका नवीनीकरण करवाना होगा। फिलहाल तो उनकी सुई पचास वर्ष पहले के साहित्य पर स्थिर है, तो है। **आपका ही**

शहरयार

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

मत्स्यगंधा

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : गीताश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

हिन्दी की सुपरिचित कथाकार और प्रसिद्ध उपन्यास "हसीनाबाद" की लेखिका गीताश्री की कहानियों का संग्रह "मत्स्यगंधा" इन दिनों काफी चर्चा में है। इसके पूर्व गीताश्री की प्रमुख पुस्तकें प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ, स्वप्न साजिश और स्त्री, डाउनलोड होते हैं सपने, लेडीज़ सर्कल, लिट्टी चोखा एवं अन्य कहानियाँ, भूतखेला, बलम कलकत्ता (कहानी संग्रह), हसीनाबाद, वाया मीडिया - एक रोमिंग कॉरेस्पोंडेड की डायरी, राजनटनी, अंबपाली (उपन्यास), कुछ इधर ज़िंदगी कुछ उधर ज़िंदगी असमाप्त यात्राओं की कहानियाँ (यात्रा संस्मरण), औरत की बोली, स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, (स्त्री विमर्श), सपनों की मंडी (आदिवासी लड़कियों की तस्करी पर आधारित शोध) प्रकाशित हो चुकी हैं। गीताश्री ने 12 कृतियों का सम्पादन किया हैं। गीताश्री ने औरत की अस्मिता पर निरंतर लेखनी चलाई है। गीताश्री एक पत्रकार रही हैं इस कारण इनकी कहानियों में पत्रकारिता के इनके अपने अनुभव और यथार्थ की व्यापकता देखी जा सकती है। ये अपने अनुभवों को बड़ी सहजता से कहानी में ढाल लेती हैं। इनकी कहानियाँ अपने समय से आगे की कहानियाँ हैं। लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती है। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। इनकी कहानियों की कथा-वस्तु कल्पित नहीं है, संग्रह की कहानियाँ सचेत और जीवंत कथाकार की बानगी है और साथ ही मानवीय संवेदना से लबरेज़ हैं। इस कहानी संग्रह में छोटी-बड़ी 10 कहानियाँ हैं। ये ग्रामीण और क़स्बाई पृष्ठभूमि की बेबाक कहानियाँ हैं। इस संग्रह में अलग-अलग परिवेश की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में कुछ ऐसे चरित्र हैं, जो अपनी संवेदनशीलता, मानवीयता, परोपकारिता, सेवाभाविता के कारण सदैव याद किए जाते रहेंगे। इनमें प्रमुख है "सैंया निकस गए, मैं ना लड़ी थी" कहानी की रेहाना, "जहाँ तज़लील है जीना" कहानी की कुसुम, "बारहगामा" कहानी की भवानी।

"सैंया निकस गए, मैं ना लड़ी थी" कहानी को लेखिका ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। कहानी में कथाकार ने रेहाना और अज़हर की छटपटाहट को स्वाभाविक रूप से रेखांकित किया है। कथाकार ने एक महत्त्वपूर्ण विषय को उठाया है संग्रह की शीर्षक कहानी "मत्स्यगंधा" में। इस कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। लोकजीवन और समाज के हाशिए पर रहे लोगों के जीवन को भी गीताश्री ने समझा है। इस कहानी में कथाकार ने सुरसती और बतहू की मन:स्थिति और उनके मनोविज्ञान का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। कहानी में ग्रामीण स्त्री और पुरुष दोनों का साहस, संघर्ष और संकल्प व्यक्त हुए हैं। गाँवों में अकेली औरत को डाइन करार दिया जाता है लेकिन इस कहानी की नायिका सुरसती ओझाइन बनकर गाँव वालों के सामने खड़ी होती है। अकेली स्त्री एवं उसकी कठिनाईयों का बिंब-प्रतिबिंब इस कहानी में है। गीताश्री की इस कथा में गंध संवेदना की सुंदर अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं - सुरसती का साँवला सौंदर्य दिपदिपा जाता। बतहू उसे खींचता अपनी ओर.... "आओ मेरी लाल मछरिया.... खा जाऊँ तुमको..... " "नदी कभी अपनी मछरी को खाती है का, आप मेरी नदी हैं, हम आपकी मछरिया पिया..... " (पृष्ठ 19) अंदर एक और साँवली नदी बिछी हुई थी। आज बतहू को फूलों की गंध नहीं आई, आज मछली की गंध से महक रही थी बतहू की साँवली नदी। बतहू कुछ देर ठिठक कर उस साँवली नदी को देखता रहा, फिर एक छलाँग लगा कर उस साँवली नदी में कूद गया। कूद गया, कभी लौट कर शहर नहीं जाने के लिए। मत्स्यगंधा साँवली नदी भी धीरे-धीरे ज़िंदा हो रही थी। (पृष्ठ 33) इस कहानी की मुख्य किरदार सुरसती को जिस प्रकार कथाकार ने गढ़ा है, उससे ऐसा लगता है कि सुरसती सजीव होकर हमारे सामने आ गई है। कहानी की नायिका सुरसती एक अमिट छाप छोड़ती है।

कथाकार ने "अहेरी" कहानी में परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा ख़ुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है। साइकॉलॉजिस्ट तारा नितिन को उसके अपने ही जाल से बाहर नहीं निकाल सकी क्योंकि नितिन एक अहेरी है जो उस जाल से निकलना नहीं चाहता। उसे लड़कियों के शिकार की आदत हो चुकी है। "मेरे पाप को पुण्य में बदल दीजिए" कहानी में साइकॉलॉजिस्ट डॉ. रीमा ने अवसाद से ग्रसित एक युवती तपस्या और एक युवक आलोक के मानसिक आक्रोश को प्रकट करने के साथ उनकी नकारात्मकता को सकारात्मकता में परिवर्तित कर उनकी समस्याओं का समाधान किया है। "मूव ऑन" में लेखिका ने रक्षा भाभी के मानसिक धरातल को समझकर उसके मन की तह तक पहुँचकर कहानी का सृजन किया है। कहानी रोचक है। इस कहानी में एक नवयुवती बिन्नी और रक्षा भाभी के माध्यम से स्त्री चेतना का स्वर पूरी तरह से मुखर हुआ है और यह कहानी स्त्री विमर्श के फ़लक को आवश्यक विस्तार देती हैं। कहानी संवादात्मक है। स्त्री का दु:ख संवादों से खुलता है। कहानी की कथावस्तु भावप्रधान है। गीताश्री ने इस कहानी में स्त्री संवेगों और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत बारीकी से और बहुत सुंदर चित्रण किया है। कहानीकार ने एक नारी की दयनीय गाथा को कहानी की किरदार रक्षा भाभी के माध्यम से मार्मिक ढंग से कलमबद्ध किया है। लेखिका ने रक्षा भाभी के मन की भावनाओं को बख़ूबी व्यक्त किया हैं। रक्षा भाभी बिन्नी से कहती है "अपने जीवन काल में हरेक विवाहित स्त्री एक न एक बार अपने पति से छुटकारा पाने के बारे में सोचती है....." रक्षा भाभी के काँपते होंठों से निकला – "अपनी मर्दानगी का बड़ा ग़ुमान होता है इन्हें। अगर स्त्रियों के पास श्राप देने की शक्ति होती तो वे पुरुषों को नपुंसकता का श्राप देतीं।" (पृष्ठ 67)

"बरजोरी बसे हो नयनवाँ में" फ्लैश बैक शैली में लिखी नौवीं कक्षा की लड़की और क़स्बे के सबसे स्मार्ट लड़के के आत्मीय प्रेम की उत्कृष्ट कोटि की अनूठी कहानी है जो कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से पाठकीय चेतना पर अमिट प्रभाव छोड़ती है। यह बचपन में अंकुरित निश्छल प्रेम की अनुभूतियों की कहानी है। यह कहानी स्वार्थरहित निश्छल प्रेम की सघनता, गहरी सम्वेदना और आत्मीय प्रेम की जीवंतता को उजागर करती है। इस कहानी में कथाकार ने इस कहानी की नायिका के माध्यम से प्रेम संबंधी बौद्धिक चिंतन अभिव्यक्त किया है। "मुखौटा" कहानी अपने कथ्य और कथानक से काफी रोचक बन पड़ी है। कहानी के केन्द्र में प्रदीप सिन्हा है। इस कहानी में पत्थर होती जाती मिसेज़ प्रदीप सिन्हा अर्थात् शोभा का हृदयस्पर्शी चित्र हैं। आज की नारी व्यावहारिक धरातल पर सोचने लगी है। अब वह पति को परमेश्वर मानकर हर समय उसकी पूजा नहीं करती है बल्कि निर्लज्ज बिगड़ैल पति को वह सही रास्ते पर लाना भी जानती है। यह बदलते समय की आहट है। जब पानी सिर से ऊपर निकल चुका तब एक भारतीय घरेलू पत्नी का रूप देखिए - शोभा का रौद्र रूप देख कर प्रदीप सिन्हा के होश उड़ गए। घर घुस्सू, दब्बू, चुप्पा स्त्री के भीतर से ये नई स्त्री का अवतार कैसे हो गया, एक रात में ही बदल गई। इस बदली हुई स्त्री को, उसकी आक्रामकता को वे सहन नहीं कर सकते थे। उनके भीतर का सर्प फुँफकारा। वे आगे बढ़ कर लगभग शोभा को धक्का देने वाले ही थे कि शोभा का हाथ हवा में लहराया और कमरे में ज़ोरदार चटाक की गूँज उठी। सविता के मुख से हैरानी की चीख निकली। प्रदीप पीछे हट गए। हथेलियाँ गाल को सहलाने लगी थीं। शोभा का चेहरा तप रहा था। (पृष्ठ 93)

"जहाँ तज़लील है जीना" मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। कथाकार ने इस कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। यह कहानी शाहीनबाग में जो अतिक्रमण हटाया गया था, उस घटना से प्रेरित है। कथाकार ने इस कथा में सांप्रदायिक सदभाव का सकारात्मक सन्देश दिया है। कथाकार ने घटनाक्रम से अधिक वहाँ पात्रों के मनोभावों और उनके अंदर चल रहे अंतर्द्वंद्वों को अभिव्यक्त किया है। इस कहानी में कुसुम का प्रभावशाली किरदार प्रभावित करता है। कहानी का हर किरदार कुसुम, शकील भाई, हसन टेलर, मृदुला, सफ़दर अपनी विशेषता लिए हुए हैं और अपनी उसी ख़ासियत के साथ सामने आते हैं। लेखिका ने पात्रों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह से निरूपित किया है और उनके स्वभाव को भी रूपायित किया है। कहानी की कथावस्तु भावप्रधान है। इसमें कथाकार ने कहानी की मुख्य किरदार कुसुम है, की भावदशा का कुशलतापूर्वक चित्रण किया है साथ ही उसकी मनोदशा संकेतात्मक रूप से सामने आई है। भाषा की रवानगी और क़िस्सागोई की कला इस कहानी को और अधिक सशक्त बनाती है। इस कथा में अनुभूतियों की मधुरता है, यह कहानी गीताश्री के सामर्थ्य से परिचित कराती है। कुसुम शकील भाई से हेयर कट और सिर की मसाज करवाकर तथा हसन टेलर के हाथ के सिले कपड़े पहनकर आत्मविश्वास से भर उठती है। उसे याद आया, मज़ाक में कहा करती थी - शकील भाई, मैं आपके पीछे पीछे जन्नत तक आ जाऊँगी। आपका पीछा नहीं छोड़ने वाली हूँ। जन्नत में भी बाल ही काटता रहूँगा क्या.... ? शकील भाई हँसने लगते। मँझोले क़द के, गेहुँआ रंग के सुदर्शन शकील भाई कुसुम की आत्मीयता से निहाल हो उठते थे। कभी शोले के डायलॉग उछालती – "ये हाथ मुझे दे दो शकील भाई..... " "हाथ दे दूँगा तो आपके ये बाल काटेगा कौन मैम.... ?" चुहलबाज़ियों का दौर चलता। कुसुम उनसे ख़ूब गप्पें मारती। हेयर काट के बाद जब शकील भाई सूखे बालों में अपनी उँगलियाँ चलाते, मसाज करते तो कुसुम को जो असीम आनंद मिलता, वह अनिर्वचनीय था। (पृष्ठ 98) हसन टेलर के बारे में जुमला कहती - ये आँखों से नाप लेते हैं। इस सच का आधार वो जानती है, ये वही जानती हैं कि मुल्ला जी ने एक बार जो आँखों से नाप लिया, तो फिर चाहे उनकी देह घटती या बढ़ती रहे, मुल्ला जी का नाप फेल नहीं होता। वे सालों साल इंच टेप

नहीं निकालते। कपड़े लेते हैं, आँखों से पूरी काया को देखते हैं और डिज़ाइन भी नहीं पूछते, कपड़ों और स्त्रीकाया के हिसाब से डिज़ाइन तैयार कर देते हैं। (पृष्ठ 100)

"तू क्या है.... ?" कहानी एक बिलकुल अलग कथ्य और मिज़ाज की कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। यह कथा महिलाओं का स्वतंत्र अस्तित्व, समयानुसार बदलते सामाजिक रंग, जातीयता, सवर्ण मानसिकता इत्यादि बुनियादी सवालों से साक्षात्कार करती नज़र आती हैं। "बारहगामा" आत्मीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। भवानी के मालिक के जीवन की कहानी मन को भिगोती है। कहानी में एक बेटी पिता के घर की यादों को जिस संवेदनशीलता के साथ याद करती है, वह पाठक को भाव विभोर कर देता है। कथाकार ने इस कहानी में घर के मालिक की घर के नौकरों के साथ आत्मीय संबंधों की धड़कन को बख़ूबी उभारा है। एक नौकरानी भवानी की संवेदनाओं को लेखिका ने जिस तरह से इस कहानी में संप्रेषित किया है वह काबिले-तारीफ़ है।

लेखिका स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को पूरी शिद्दत से सामने लाती हैं। कथाकार स्त्रियों की ज़िंदगी के हर पार्श्व को देखने, छूने तथा उकेरने की निरंतर कोशिश करती हैं। इनके कथा साहित्य में स्त्री के कई रूप दिखाई देते हैं। गीताश्री के नारी पात्र पुरुष से अधिक ईमानदार, व्यवहारिक, साहसी और कर्मठ दिखाई देती हैं। कहानियाँ नारी मन का मनोवैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण करती हैं। गीताश्री की कहानियों की स्त्रियाँ सबल, प्रगतिशील, स्वाबलंबी, कामकाजी, जुझारू और अपना जीवन अपनी शर्तों पर जीने वाली हैं। संकलन की अधिकांश कहानियों के स्त्री पात्र विपरीत समय आने पर चुनौतियों का सामना करनेवाली सशक्त नारी के रूप में दिखाई देते हैं। गीताश्री की कहानियों के स्त्री चरित्र स्वयं निर्णय लेने की क्षमता रखते हैं। कहानीकार नारी पात्रों की वैयक्तिक चेतना को प्रर्याप्त वाणी दे पाई है। कथाकार ने इस संग्रह की कहानियों में स्त्रियों के मन की अनकही बातों को, उनके जीवन के संघर्ष को और उनके सवालों को रेखांकित किया हैं। कहानियों में हर उम्र, हर वर्ग की स्त्री की विवशता को कथाकार ने बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कथाकार ने नारी जीवन के विविध पक्षों को अपने ही नज़रिए से देखा और उन्हें अपनी कहानियों में अभिव्यक्त भी किया हैं। गीता श्री की कहानियों में स्त्री विमर्श ही मुख्य है। गीता श्री ने कहानी में स्त्री विमर्श को नया आयाम दिया है। कहानीकार नारी पात्रों की वैयक्तिक चेतना को पर्याप्त वाणी दे पाई है। साहसी और बेबाक लेखनी ही गीताश्री की ख़ास पहचान है। इन कहानियों में स्त्री जीवन के यथार्थ की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। संग्रह की कहानियों के पात्रों की स्वाभाविकता, सहजता, सामाजिक, आर्थिक स्थिति आदि इस कृति को बेहद उम्दा बनाती है। इस संग्रह की कहानियाँ अपनी सार्थकता सिद्ध करती हैं। स्त्री के मन को छूती हुई ये कहानियाँ पाठक के मन में समा जाती हैं। इस संकलन की कहानियों में लेखिका की परिपक्वता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। गीताश्री की कहानियाँ बदलते समय की आहट है। लेखिका जीवन की विसंगतियों और जीवन के कच्चे चिट्ठों को उद्घाटित करने में सफल हुई है। कहानियों में पात्रों के मन की गाँठें बहुत ही सहज और स्वाभाविक रूप से खुलती हैं। इस संग्रह की कहानियाँ जीवन और यथार्थ के हर पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास करती है। कहानियों का कथानक निरंतर गतिशील बना रहता है, पात्रों के आचरण में असहजता नहीं लगती, संवाद में स्वाभाविकता बाधित नहीं हुई है। कथाकार ने जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। इस संग्रह की कहानियाँ पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू-ब-रू करवाती हैं। रिश्तों और मानवीय संबंधों की बारीक पड़ताल की गई है। संग्रह की सभी कहानियाँ मानवीय चरित्र का सहज विश्लेषण करती हैं।

कहानीकार ने पुरुषों और नारियों की सूक्ष्म मनोवृत्तियों, जीवन की धड़कनों को इन कहानियों में अभिव्यक्त किया है। सभी कहानियाँ आज के समय की सार्थक अभिव्यक्ति हैं। कहानियाँ कल्पनाओं से परे जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ी हुई लगती हैं। गीताश्री के कथा साहित्य का कथ्य एवं शिल्प बहुत ही बेजोड़ है जो उन्हें अपने समकालीन लेखकों की पहली पंक्ति में स्थापित करती है। गीताश्री पात्रों के मानसिक धरातल को समझकर उनके मन की तह तक पहुँचकर कहानी का सृजन करती है। गीताश्री की कहानियों में सिर्फ पात्र ही नहीं समूचा परिवेश पाठक से मुखरित होता है। इन कहानियों को पढ़ना अपने समय और समाज को गहराई से जानना है। इन कहानियों में अनुभूतिजन्य यथार्थ है। इस संग्रह की कहानियाँ ज़िंदगी की हक़ीक़त से रू-ब-रू करवाती हैं। इस संग्रह की कहानियाँ और कहानियों के चरित्र धीमे और संजीदा अंदाज़ में पाठक के भीतर उतरते चले जाते हैं। कहानियों में गहराई है क्योंकि इन कहानियों में कथाकार ने परिवेश, कथानक, चरित्र इत्यादि का कलात्मक रचाव किया है। गीताश्री की कहानियों को पढ़ने और उनकी गहराई समझने के लिए पाठकों को एक नई सोच और नई दृष्टि की आवश्यकता है। संग्रह की कहानियाँ वर्तमान समय को उजागर करती है। गीताश्री ने सहजता से अपने समाज और आज के समय की सच्चाइयों का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया हैं। कथाकार की भाषा में पाठक को बाँधे रखने का सामर्थ्य है। संवेदना के धरातल पर ये कहानियाँ सशक्त हैं। संग्रह की हर कहानी उल्लेखनीय तथा लाजवाब है और साथ ही हर कहानी ख़ास शिल्प लिए हुए है। ये कहानियाँ सिर्फ़ हमारा मनोरंजन नहीं करतीं बल्कि समसामयिक यथार्थ से परिचित कराती हैं। इन कहानियों में प्रयुक्त कथानुकूलित परिवेश, पात्रों की अनुभूतियों, पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, कहानियों में लेखिका की उत्कृष्ट कला-कौशलता का परिचय देती है। कथा सृजन की अनूठी पद्धति गीताश्री को अपने समकालीन कथाकारों से अलग खड़ा कर देती है। कहानियों का यह संग्रह पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है।

000

पुस्तक समीक्षा

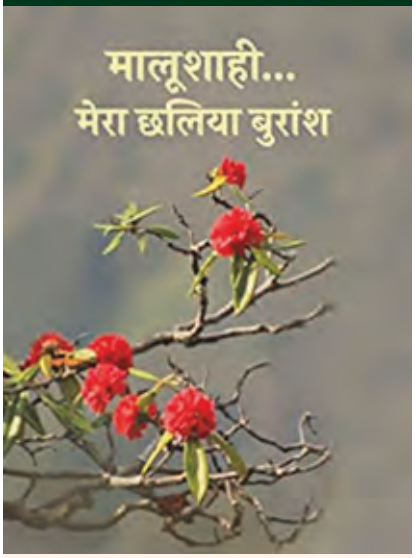

(कहानी संग्रह)

मालूशाही मेरा छलिया बुरांश

समीक्षक : वंदना बाजपेयी

लेखक : प्रज्ञा

प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली

वंदना बाजपेयी
बी-105, फर्स्ट फ़्लोर, निर्माण विहार
नई दिल्ली 110092
मोबाइल- 9818350904

समकालीन कथाकारों में प्रज्ञा ने अपनी सशक्त और अलहदा पहचान बनाई है। उनके कथापत्रों में जहाँ एक ओर कमज़ोर दबे कुचले, शोषित वर्ग से लेकर मध्यम वर्ग और आज के हालातों से जूझते किरदार होते हैं तो दूसरी ओर वह मानवीय संवेदनाओं को जागृत कर अच्छे लोगों और अच्छाई पर भी विश्वास बनाये रखने की आशा रखती हैं। मानवीय संवेदनाओं के उठते गिरते ग्राफ में वे कुछ अच्छा, सुखद थाम लेती हैं। वास्तव में यही वे लम्हे हैं जिन्होंने तमाम विद्रूपताओं से भरे इस समय में आशा की डोर को थाम रखा है। प्रज्ञा की इन कहानियों की विशेषता है कि वे बिलकुल आम पात्रों को उठाती हैं और सहजता के साथ शिल्प के अलंकारिक आडंबरों से मुक्त होकर संवेदनाओं के स्तर पर उतर कर गहनता से कथा बुनती जाती हैं। समकाल पर कलम चालते हुए वो कोरी भावुकता में नहीं बहतीं बल्कि तटस्थ होकर आस-पास घटने वाली एक-एक घटना का सूक्ष्म अवलोकन करते हुए साक्षी भाव से कथारस के साथ उकेरती चलती हैं। पाठक पढ़ कर हतप्रभ होता चलता है, "हाँ! ऐसा ही तो होता है। पर ऐसा ही होता है को लिखने के लिए जिस सूक्ष्म नज़र से समाज की पड़ताल करनी पड़ती है। समाज के मनोभावों का ऐक्स रे करना होता है, वह अपने आप में एक पूरा शोध होता है। जिसे उकेरना इतना सहज नहीं है पर प्रज्ञा इसमें सिद्ध हस्त हैं।

स्त्री चरित्रों को उकेरते समय भी वे किसी विमर्श के दायरे में ना बाँध कर समाज की कंडीशनिंग की बात करती हैं। जिसके शिकार दोनों हैं। आपसी सहयोग और सम्मान ही सहअस्तित्व का आधार है, जिसकी उँगली पकड़ कर उनके पात्र एक सुंदर दुनिया की संभावना तलाशते हैं।

अभी हाल ही में प्रज्ञा का नया कहानी संग्रह "मालूशाही मेरा छलिया बुरांश" आया है। हर बार की तरह इस संग्रह की योजना भी उन्होंने बहुत सुचिन्तित तरीके से बनाई है। विषय में जहाँ समकाल की चिंताएँ हैं, तो प्रेम की फुहारें भी, एक अच्छे आदमी द्वारा अपने अंदर छिपे बुरे आदमी की शिनाख़्त तो माटी से माटी होते हुए शरीर में नई आशा फूँक देने की कवायद भी। बहुत ही हौले से वे उस बाज़ार के दवाब और प्रलोभन की बात भी कह जाती हैं, जिसके पंजों की जकड़ में समझदार व्यक्ति भी फँस जाता है। आज जब हम उन्हीं विषयों को बार-बार अलग - अलग शिल्प में पढ़ते हैं, वहीं प्रज्ञा द्वारा लाए गए जीवन से जुड़े नए अनूठे विषय उन्हें कथाकारों की अलग पाँत में खड़ा करते हैं। इस संग्रह में उन्होंने शिल्प के स्तर पर भी कुछ नए प्रयोग किए हैं जो आकर्षित करते हैं, पर उनसे कहानियों की भाषा की सरलता सहजता और प्रवाह की उनकी धारा अपने पूर्ववत वेग को नहीं बदलती।

पुस्तक की भूमिका "एक दुनिया जो हम चाहते हैं बने" में प्रज्ञा लिखती हैं, "मैंने इस संग्रह की कहानियों में अपने विवधवर्णी समय को अंकित करने का प्रयास किया है। समाज में जहाँ एक ओर मनुष्यता की विजय की कहानियाँ सामने आई हैं, वहीं कहीं ना कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्यता पूँजी और बाज़ार में कहीं सबसे सस्ती और अनुपयोगी हो गई है। इसलिए मेरा प्रयास रहा है कि समय की कटुता के साथ मनुष्यता के भरोसे को जीवित रखने वाले कुछ किस्से आप के साथ साझा कर सकूँ।"

प्रेम दुनिया की सबसे सुंदर शय है। दो लोग मन -प्राण से एकाकार हो जाएँ इस से सुंदर घटना कोई दूसरी नहीं हो सकती। पहाड़ों की सुरम्य वादियों में हवा की सुरीली घंटियों सी आज भी गूँजती है अब तक मालूशाही और राजुला की प्रेम कहानी, जिसने हर संघर्ष के बाद आख़िरकार पा ही लिया उसे, जिसे बार-बार छल से दूर किया जाता रहा। कहाँ राज परिवार का मालूशाही और कहाँ साधारण घराने की राजुला। पर प्रेम ने कब मानी हैं दीवारें। वही प्रेम कहानी फिर उतरी, उसी धरती पर अपनी पूरी सुगंध, पूरी तारतम्यता के साथ। सदाबहार बुरांश के फूलों के बीच फिर छल ने दस्तक दी पर मालूशाही फिर आया अपनी राजुला के पास। "जिन्हें एक

सच्चे वचन ने बाँध लिया। क्योंकि निभाने के लिए एक वचन ही काफी है और न निभाने के लिए सात सौ भी कम। छलिया फिर आया भेष बदल कर.. पर मन ने उसका छल माना कहाँ। लोककथा से आधुनिक प्रेम कथा को जोड़ती बुरांश के फूलों सी दहकती एक अलग तरह की प्रेम कहानी है वो कहानी पर जिसके ऊपर संग्रह का नाम रखा गया है यानि "मालूशाही मेरा छलिया बुरांश"।

कहानी "माटी का राग" एक ऐसी ही कहानी है जो जीवन को सकारात्मक नज़रिये से देखने पर ज़ोर देती है।

किसान हो, कुम्हार हो या ये जीवन, सब माटी पर निर्भर है। सारा जुगत है इस माटी को किसी सृजन में लगा देना। वह सृजन खेत खलिहानों में उगती फसल का हो सकता है, कला का हो सकता है या फिर स्वयं के जीवन को कोई सकारात्मक मोड़ देने का। राम अवतार की ये कहानी अनेक आयाम समेटे हुए है। चाहे वो धर्म के नाम पर ज़बरदस्ती वैमनस्यता हो, गाँव, खेत छोड़कर कर शहरों की ओर भागते युवा हों। बुज़ुर्गों का अकेलापन हो। कहानी गाँव से शहर की ओर जाती है और फिर गाँव की ओर लौटती है।

कहानी शुरू होती है अस्पताल के एक दृश्य से जहाँ राम अवतार दंगों में घायल अपने मित्र हसन को देखने गया है। वह गाँव जहाँ हिन्दू -मुस्लिम भाई की तरह रहे, वहाँ की हवा ना जाने क्यों इतनी विषाक्त हो गई कि दोनों एक दूसरे के घर उजाड़ने पर आमादा हो गए। छोटा सा कारण और विश्वास का एक मज़बूत क़िला दरक गया।

अकेला निराश राम अवतार आहत है। अपने बेतरतीब घर में वह पुराने दिन याद करता है जब वो और उसकी पत्नी व तीन बच्चे एक ख़ुशहाल ज़िंदगी जीते थे। पत्नी स्वर्ग सिधारी और बच्चे परदेश बस गए। अकेलेपन से जूझते पिता को बड़ा बेटा अपने साथ ले जाता है। पर शहर की आबोहवा उन्हें रास नहीं आती, गाँव उन्हें बुलाता है, वे लौटते हैं पर पहले वाले राम अवतार की तरह नहीं।

समय का चाक घूमता है और माटी तैयार होती है... कँपकँपाती उँगलियाँ माटी को थामती हैं। माटी नए आकार लेती है। सृजन के, रिश्तों के और जीवन के और माटी का राग एक नई धुन पर बज उठता है। जीवन है तो दुख हैं, समस्याएँ हैं पर उन पर उन पर विलाप करते हुए ज़िंदगी नहीं काट देनी है.. उस माटी से नए आकार गढ़ने का प्रयास करना है।

कहानी गाँव के जीवन और वहाँ आ रहे बदलाव को भी रेखांकित करती है। भाषा हमेशा की तरह सहज सरल व प्रभावमयी है। कुछ आंचलिक शब्द प्रभावित करते हैं।

एक सकारात्मक अंत के साथ यह कहानी अकेलेपन से जूझते हुए बुज़ुर्गों को एक सार्थक संदेश देती है।

संग्रह की बहुचर्चित पहली कहानी "बुरा आदमी" पढ़ते हुए मन-मस्तिष्क में तीन बातों पर मंथन चलता रहा.. यह कहानी सोचने पर विवश करती है कि वह कौन सा बिंदु है जिस पर चिंता चिता में बदल जाती है और एक आदमी किसी दूसरे आदमी में तब्दील होने लगता है या मन बेलगाम सा हो ग़लत दिशा में दौड़ने लगता है। और क्या यह अवश्यसंम्भावी है या इस तस्वीर का दूसरा पक्ष भी हो सकता है ?

यह कहानी भी एक ऐसे मध्यमवर्गीय व्यक्ति की कहानी है। जो दिल्ली शहर में नौकरी के लिए आया है। अकेला परिवार के बिना, नौकरी की ज़रूरतों के मुताबिक तीन प्रदेशों की सीमाओं के बीच भटकता, निराश हताश सा बस नौकरी करने के लिए करे जा रहा है। उसका मानसिक द्वंद्व दिल्ली में दूसरे प्रदेशों से आकर रहने वाले अनेकों मध्यमवर्गीय लोगों की कथा है जो एक अदद नौकरी को चलाए रखने के लिए मन और तन दोनों से जूझते रहते हैं।

कहानी के उत्तरार्द्ध में देर रात अपने घर की ओर जाने के जुगाड़ में लगा नायक एक ऐसी अँधेरी सड़क पर पहुँच जाता है जहाँ कोई नहीं है। उसके मोबाइल की बैटरी भी ख़त्म है। इस सुनसान वीराने स्थान में उसे फ्लाई ओवर के नीचे किसी के कराहने की आवाज़ आती है और वो उस दिशा में चल पड़ता है। वहाँ मिलती है उसे किशोर लड़की यशु जो...

कहानी में क्या होता है ये तो आप कहानी पढ़ कर ही जानेंगे, पर मुख्य बात है वह एक निर्णायक क्षण जहाँ एक अच्छा आदमी बुरे आदमी में बदल जाता है। यही वह क्षण है जहाँ वह अपने बेलगाम मन की लगाम बुद्धि के हाथों ले कर उस बुरे आदमी को शिकस्त दे सकता है।

आज जब हम बुरी नज़र और बुरे लोगों की कथाएँ ज़्यादा कहते सुनते हैं, तो यह कहानी इस गहन विश्वास के साथ एक अलग दिशा में खड़ी नज़र आती है कि हर आदमी के अंदर एक बुरा आदमी छिपा है, पर उसको काबू में रखने का विवेक भी उसी के पास है। विवेक के नियंत्रण से एक पल की फिसलन उसे बुरा या अच्छा बना देती है।

हमारे ही अंदर छिपे बुरे आदमी पर अच्छे आदमी की जीत के सकारात्मक अंत के साथ समाज को दिशा देती बेहतरीन कहानी है "बुरा आदमी" जो जंगल में नाखूनों के उग आने और चिड़िया के चहचहाने जैसे ख़ूबसूरत बिंबों का प्रयोग करके कहानी के अंत की कलात्मक ख़ूबसूरती को बढ़ा देती है।

एक गंभीर दृष्टिकोण के साथ-साथ यह कहानी यशु जैसे बच्चों की बात भी उठाती है। किशोर उम्र के इन बच्चों के साथ मार-पीट समस्या का समाधान नहीं हो सकती। ज़रूरी ही उन्हें बात प्यार से समझाई जाए अन्यथा घातक परिणाम भी हो सकते हैं।

" फिडेलिटी डॉट कॉम" निजता में तकनीकी के घालमेल की सुंदर कहानी है।

कहते हैं शक की दवा तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं थी। यूँ तो यह भी कहा जाता है कि रिश्ते वही सच्चे और दूर तक साथ चलने वाले होते हैं जहाँ आपस में विश्वास हो और रिश्ते की ज़मीन पर शक का कीड़ा दूर -दूर तक न रेंग रहा हो, पर रिश्तों में कभी न कभी शक आ ही जाता है, ख़ासकर पति-पत्नी के रिश्ते में। लेकिन क्या ऐसा हो सकता है कि कोई ज़बरदस्ती शक आपके दिमाग़ में घुसा दे? यह काम करने वाला कोई जान-पहचान वाला नहीं है, बल्कि ऐसा हो जिससे आपका दूर -दूर तक नाता ही न हो, और आप की शक मिज़ाजी में उसका फ़ायदा हो। इंटरनेट की दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं हैं। ऐसी ही

एक साइट है फिडेलिटी डॉट कॉम और यही है प्रज्ञा की कहानी का अलहदा विषय।

यह कहानी एक ऐसी लड़की विनीता के बारे में हैं, जो अपने कड़क मामाजी के अनुशासन में पली है। घर के अतरिक्त कहीं जाना, नौकरी करना उसे रास ही नहीं आता। विवाह के बाद उसके जीवन में एक बड़ा परिवर्तन होता है, जब उसे अपने पति सुबोध के साथ कोच्चि में रहना पड़ता। अनजान प्रदेश, अजनबी भाषा ऊपर से सुबोध के मार्केटिंग में होने के कारण बार-बार लगने वाले टूर। अकेलापन उसे घेरने लगता है, भाषा के अंतर के कारण लोगों से संवाद मुस्कराहट से ऊपर जा नहीं पाता, और टीवी अब सुहाता नहीं। ऐसे में सुबोध उसे टैबलेट पर फ़ेसबुक और इंटरनेट की दुनिया से जोड़ देता है। उसके हाथ में तो जैसे ख़ज़ाना लग जाता है... रिश्तों के विस्तृत संसार के बीच अब अकेलापन जैसे गुज़रे ज़माने की बात लगने लगती है। इंटरनेट की दुनिया में इस साइट से उस साइट को खँगालते हुए एक पॉप अप विज्ञापन पर उसकी निगाह टिकती है, "क्या आपको अपने साथी पर पूरा भरोसा है ? क्या करते हैं आप के पति, जब काम पर बाहर जाते हैं ? क्या आप जानना चाहती हैं ?" ना चाहते हुए भी वह उस पर क्लिक कर देती है। फिडेलिटी डॉट कॉम वेबसाइट का एक नया संसार उसके सामने खुलता है। जहाँ फरेबी पति-पत्नियों के अनेकों क़िस्से हैं, घबरा देने वाले आँकड़े हैं और ख़ुद को आश्वस्त करने के लिए अपने जीवनसाथी की जासूसी करने के तरीके भी।

एक छोटी सी क्विज़ के बाद दिमाग़ में शक का एक कीड़ा रेंग जाता है। जो चीज़ें अभी तक सामान्य थीं, असमान्य लगने लगतीं हैं। छोटे-छोटे ऊलजलूल प्रश्नों के हाँ में आने वाले उत्तरों से मन की ज़मीन पर पड़े शक की नीव के ऊपर अट्टालिकाएँ खड़ी होने लगतीं है और विज्ञापन की चपेट में आ कर वो, वो करने को हामी बोल देती है, जो उसका दिल नहीं चाहता। यानी कि फिडेलिटी डॉट कॉम पर क्लिक करके अपनी पति की जासूसी करने का उपकरण खरीदने को तैयार हो जाती है और एक बेल्ट के लिए ओके कर देती है। ये वो जासूसी उपकरण होते है जो ऐसे कपड़ों पर लगाए जाते हैं जो उस व्यक्ति के हमेशा पास रहे। जिससे वह कहाँ जाता है, क्या करता है इसकी पूरी भनक उसके जीवन साथी को मिलती रहे।

मेरा दिमाग उस लिंक की कठपुतली बना उसके निर्देशों पर नाच रहा था। मैंने कई चीज़ों के रेट नोट किए। मन के कंजूस कोने ने सस्ती चीज़ों का पूरा मुआयना किया। यूँ महँगी चीज़ों पर भी बार-बार निगाह गई। सस्ता रोये बार-बार वाली कहावत भूली नहीं थी मुझे। इसी बीच माँ का फ़ोन आ गया। अपनी ज़िंदगी के अकेलेपन को भुलाकर वह मेरी ज़िंदगी के अकेलेपन के लिए बहुत चिंतित थीं।

हालाँकि बाद में ख़ुद ही उसे इस बात का अफ़सोस होने लगता है कि उसने यह क्यों किया। कहानी में उसके मन का अंतर्द्वंद्व बहुत ख़ूबसूरती से दिखाया गया है। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, पाठक आगे क्या होगा जानने के लिए दिल थाम कर पढ़ता जाता है। कहानी सकारात्मक और हल्के से चुटीले अंत के साथ समाप्त होती है, परंतु यह बहुत सारे प्रश्न पाठक के मन में उठा देती है कि इंटरनेट किस तरह से हमारे निजी जीवन व रिश्तों में शामिल हो गया है और एक ज़हर घोलने में कामयाब भी हो रहा है। ऐसी तमाम साइट्स पर हमारी निजता को दाँव पर लगाने वाला हमारा अपना ही जीवन साथी हो सकता है। लोगों से जोड़ने वाला हमें अपनों से दूर कर देने का तिलिस्म भी रच रहा है, जिसमें जाने अनजाने हम सब फँस रहे हैं।

एक नए रोचक व ज़रूरी कथ्य, सधे हुए शिल्प व प्रस्तुतीकरण की कहानी है फ़िडेलिटी डॉट कॉम।

"शोध कथा" कहानी शोध छात्रों के शोषण का मुद्दा उठाती है। हास्य रस के साथ शुरू हुई ये कहानी धीरे-धीरे गंभीर होती जाती है और अंत तक पहुँचते-पहुँचते पीएँच. डी. की डिग्री हासिल करने के मखमली कालीन को हटा कर अंदर छिपी भ्रष्टाचार की सारी गंदगी दिखा देती है। कहानी की शुरूआत एक ऐसे प्राध्यापक से होती है जिसके आधीन पहली बार कोई छात्र शोध करने आया है। उसे खुशी है कि अब उसे भी तथाकथित बौद्धिक जमात वाला समझा जाएगा। "किसी से सीधे मुँह बात न कर अपनी वैचारिक दुनिया में खोए रहना और किसी प्रश्न का सीधा सा उत्तर नया देकर, उसे इस तरह से कहना कि सामने वाले को भले ही कुछ समझ आए या न आए वह आपकी बौद्धिकता से चकरा ज़रूर जाए।" उसके नए रूप के प्रस्थान बिन्दु बने।

शोध के विषय का शोधार्थी और शिक्षक दोनों को ज्ञान न होना, पैसों की वजह से शोध को लटकाए रहना शुरूआती दिक़्क़तें थीं... जो अंत तक आते-आते सारे सिस्टम की पोल खोल गई।

ग्रेडिंग सिस्टम के द्वारा उच्च शिक्षा को विश्वस्तर का बनाने के नाम पर शिक्षा के व्यवसायीकरण की तार्किक पर करुण गाथा है कहानी "ताबूत की पहली कील"। आम छात्रों और सस्ती और सबको उपलब्ध हो सकने वाली शिक्षा के स्थान पर यह हाइ प्रोफ़ाइल शिक्षा केवल अभिजात्य छात्रों तक ही सीमित रह जाने की बात को मैनेजमेंट सुनने को तैयार ही नहीं। विरोध की ये आवाज़ें कहीं पदावनति कर, तो कहीं जल में रहकर मगर से बैर नहीं किया जा सकता के नाम पर दबा दी जातीं।

किस तरह से आज कॉलेज से लेकर बाज़ार तक असहमति की आवाज़ों को विकास के ख़िलाफ़ बता कर उन्हें सुनने तक से इंकार किया जाता है, यह कहानी हाल ही में उग आई इस असहिष्णुता पर भी उँगली रखती है। सामाजिक स्तर के मुद्दों को व्यक्ति के स्तर पर सीमित कर "उससे काम न हो पाने का आरोप लगा कर, व्यक्ति की नहीं विरोध की भी कमर तोड़ी जा रही है।

रिसर्च पेपर्स, इंटेरनेशनल कमेटीज़, हाई लेवल सेमीनार्स आदि शब्दों के जाल में ए ग्रेड के नाम पर बाहर से चमकते और भीतर से खोखले कायान्तरण जो आँखों में धूल झोंक सकते हैं पर उस बुनियाद को हिला देते हैं, जो विश्वविद्यालयों को शिक्षा का मंदिर मानती रही है। यह ए ग्रेड और उसे पाने वाली सारी कोशिश "ताबूत में ठुकी पहली कील" है। अंत

तक आते-आते कहनी मार्मिक हो जाती है और पाठक के भीतर चलने लगती है। इस कहानी में जिस तरह से शिक्षा व्यवस्था के व्यावसायिक करण का नकाब उतारा गया है वो प्रज्ञा की कलम को कई स्तर ऊपर ले जाता है।

"कहाँ है आपातकाल अनुभा?"आराम से उठिए, काम पर जाइए खाना खाइए, टीवी देखिए, इश्क-मोहब्बत कीजिए, सैर सपाटा खरीदारी कीजिए, कहाँ है आपातकाल ? पर जब आप बोलते हैं, सोचते हैं, सवाल करते हैं, तब यकीन जाइए दुनिया वैसी नहीं रहती।"

ये पंक्तियाँ हैं कहानी "स्याह घेरे" की। मनुष्य विरोधी प्रवृत्तियाँ ही वो स्याह घेरे हैं, जो दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं और किसी ब्लैक होल की तरह लील रहे हैं सौहार्द, भाईचारे और इंसानियत को। ऐसा नहीं है कि कोई ऐसा समय रहा हो जब कट्टरता, स्वार्थपरता, संकीर्णता ना रही हो, पर अब मनुष्य विरोधी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं।

आपकी हर बात को एक छन्नी से छान कर स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है कि आप का धर्म विचारधारा क्या है। बात महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण यह हो गया है कि आप किस पक्ष में खड़े हैं। इतने प्रबल विरोध के आगे शब्दों की ताकत क्षीण पड़ जाती है। शब्दों को घोंटने के प्रयास में लगे ये स्याह घेरे हर जगह पीछा करते रहते हैं।

यह कहानी है एक बेबाक पत्रकार अनुभा की जो ज्योति अपार्टमेंट्स में किरायेदार के रूप में आई है। कलम पर किस तरह दवाब बढ़ रहा है। सच कोई सुनना नहीं चाहता, सब अपने मन का और दूसरे के विरोध का सुनना चाहते हैं। सच बोलने लिखने वालों की राह में कितनी परेशानियाँ हैं, किस तरह उनका हौसला तोड़ा जाता है। बिना किसी कानून, तफ़्तीश के सब मुंसिफ़ बने बैठे हैं और आसानी से किसी को मुजरिम करार दे देते हैं। भीड़ तंत्र की ये कहानी मन में किरचों की तरह गड़ती है और बहुत कुछ सोचने पर विवश करती है।

स्त्रियों पर लिखने वाली अनुभा जब एक धर्म की स्त्रियों की जकड़ बंदी पर लिखती है तो कॉलोनी के सारे लोग खुश होकर उसका सम्मान करते हैं। विरोध के स्वरों के बीच उसे प्रोटेक्शन देने की बात करते हैं। पर अगले ही लेख में अनुभा जब उनके धर्म की स्त्रियों की जकड़बंदी की बात करती है तो अचानक वह संस्कृति विरोधी घोषित कर दी जाती है। उसे डराया धमकाया जाता है, कलम तोड़ दी जाती है, कार के शीशे तोड़ दिए जाते है और कॉलोनी से निकाले जाने की बात होने लगती ही। दूसरे देश जाने को कहा जाता है और तो और उसकी हिम्मत तोड़ने के लिए स्त्री इज़्ज़त पर लांछन का वही पुराना फॉर्मूला अपनाया जाता है। कुछ समय पहले कॉलोनी में जिसका सम्मान हुआ था वही अब चरित्रहीन और देशद्रोही साबित की जा रही है।

जो कुछ आज हो रहा है उन स्याह घेरों की बात करते हुए कहानी की मशाल प्रज्ञा विनय को सौंप देती हैं। जो ज्योति अपर्टमेंट की एक्ज़ीक्यूटिव कमेटी के हेड हैं, कभी कॉलेज के दिनों में एक्टिविस्ट रहे हैं, और अनुभा को अपनी बात कहने के हक के पक्षधर हैं। हिम्मत उनकी भी तोड़ी जाती है, पर... कहानी हमसे आपसे, आम पाठक से विनय की तरह अपेक्षा भी करती है सच की उस कमज़ोर पड़ जाने वाली आवाज़ का साथ देने की। भले ही वह एक स्वर हो क्योंकि सच कड़वा होता है पर वही बदलाव का वाहक बनता है।

"सच कड़वा होता है पर वही बदलाव का वाहक बनता है" एक बार फिर से यह कहने का कारण है एक अन्य कहानी "चमत्कारी कुंड" एक अलग शैली में लिखी गई यह कहानी सब कुछ अच्छा दिखने के खोल में सब कुछ बुरा होने के मुद्दे को उठाती है। काल्पनिक स्वर्ग की मायावी दुनिया के ठीक नीचे एक नर्क भी छिपा है। यह कहानी बस उन जालों को साफ कर सत्य को दिखाने की चेष्टा करती है।

जब से शब्दों पर पहरे लगे हैं। सच बोलने वाली कलमें ग़द्दार और दूसरे देश चले जाओ के नारों से पाट दी गईं हैं। कलम ने कहन का एक अलग रास्ता निकला है। जानवरों के माध्यम से, प्रतीकों से बिंबों से वो बात कही जाए जो वह कहना चाहती है। इधर ऐसी कई सुंदर कहानियाँ पढ़ने को मिली हैं। यह कहानी उसी श्रृंखला की एक अलहदा और सशक्त कड़ी है।

कहनी है जय नगर के राजा विजय प्रताप यशोवर्धन की। जिनके राज्य में सब कुछ अच्छा -अच्छा, सुंदर -सुंदर है। इसी राज्य में एक चमत्कारी कुंड है सारा चमत्कार इसी कुंड की वजह से है। पर आत्ममुग्ध राजा को बिस्तर पर लेट कर कान के नीचे कुछ आवाज़ें सुनाई देती हैं। हर आवाज़ की धरपकड़ होती है। प्रयोगशाला में प्रयोगों से उसे सुरीले गीतों में बदला जाता है। पर वार्षिकोत्सव में राजा को उपहार देने के क्रम में चमत्कारी कुंड में अलग ही चमत्कार हो जाता है।

बिल्कुल आज की परिस्थितियों को ग़ज़ब के बिंबों में ढालकर प्रस्तुत करती इस कहानी के लिए प्रज्ञा बधाई की पात्र हैं।

"चाल और मात के बीच" कहानी बाज़ार के बढ़ते प्रलोभनों के बीच आम आदमी को फँसा लिए जाने की बात करती है। अरविन्द जी जो ऑफ़िस में टेक्निकल गुरुजी माने जाते हैं, सबको तकनीकी गुणवत्ता की जानकारी देते हैं। अपने शौक के कारण गूगल पर भर नई तकनीकी से युक्त न्यू लॉन्च चीज़ों को इतना पढ़ते हैं कि याद ही हो गई हैं। इसीलिए घर हो या दफ्तर, कोई नई चीज़ खरीदते समय लोग उनकी राय ज़रूर लेते हैं। पर जब यही बाज़ार जब अपना मोहक जाल उन पर फेंकता है तो...।

अंत में यही कहूँगी कि हमेशा नए विषय लाने और अपनी कहानियों में आस-पास के जीवन का खाका खींच देने में प्रज्ञा सिद्धहस्त हैं। उनकी लम्बी-लम्बी कहानियाँ पढ़ने के बाद भी लगता है कि काश थोड़ा और पढ़ें। विविध रंगी रंग से सजे कहानियों के इस गुलदस्ते में प्रज्ञा ने गंभीर और मानवीय संवेदनाओं को उकेरती और शोध परक, प्रेम और बाज़ार के दवाब वाली आम जीवन से जुड़ी हर तरह की कहानियों को शामिल कर एक समृद्ध संग्रह पाठकों को दिया है। इसके लिए वे बधाई की पात्र हैं। आशा है उनके इस संग्रह को भी पाठकों का प्यार मिलेगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(आलोचना)

विमर्श- जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

समीक्षक : दीपक गिरकर

संपदक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

शिवना प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक विमर्श - जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (आलोचना) का संपादन वरिष्ठ प्रवासी साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने किया है। यह पुस्तक साहित्यकारों, समीक्षकों, आलोचकों, शोधार्थियों, पाठकों के विवेक को समृद्ध करने वाली पुस्तक है। वरिष्ठ साहित्यकार श्री नन्द भारद्वाज ने इस क़िताब पर अपने सारगर्भित बीज आलेख में लिखा है कि "ऐतिहासिक तथ्यों की रौशनी में भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ों को खँगालने का यह प्रयास वाकई नया और दिलचस्प है। पंकज सुबीर ने देश के दो बड़े मज़हबी समुदायों के बीच साम्प्रदायिक सौहार्द्र क़ायम करने के वृहत्तर उद्देश्य के लिए इस उपन्यास की कथा को अपने ढंग से आकार दिया है और समय-समाज के एक बड़े सच को पूरी शिद्दत से उभार कर प्रस्तुत किया है।" विमर्श - जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (आलोचना) पुस्तक में 43 आलोचकों के आलोचनात्मक, मानीखेज आलेख और 57 सारगर्भित टिप्पणियाँ शामिल हैं, जो धर्म, सम्प्रदाय, साम्प्रदायिक दंगों के कारणों और उपन्यास के कथानक, पात्रों के चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, भाषा शैली, उद्देश्य को समग्रता से समझने के लिए नई रोशनी देते हैं। वर्ष 2019 में ही यह उपन्यास "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" इतना अधिक चर्चित हुआ कि साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में इस उपन्यास की बहुत अधिक समीक्षाएँ और आलोचनाएँ प्रकाशित हुईं। इस उपन्यास ने आलोचनात्मक लेखों का कीर्तिमान बनाया है। "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" उपन्यास को पाठकों ने इतना सराहा कि, 2019 में पहले संस्करण के फ़ौरन बाद 2019 में ही इसका दूसरा संस्करण प्रकाशक को प्रकाशित करना पड़ा। तीसरा और चौथा संस्करण 2020 में और पाँचवाँ संस्करण 2021 में छपा। इस उपन्यास ने पठनीयता के नए मानदंड स्थापित किए हैं। इस पुस्तक की संपादक वरिष्ठ प्रवासी साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने इस कृति के विषय में कहा है "यह उपन्यास धर्म की परिभाषा, फैली भ्रांतियों, पूर्वाग्रहों, संशय और विरोधाभासों को तर्कसंगत स्पष्ट करता हुआ कई प्रश्नों के उत्तर देता है। इस उपन्यास में पाँच हज़ार साल के इतिहास को नई दृष्टि से देखा, सोचा, समझा और परखा गया है।"

हिन्दी के सुपरिचित कथाकार और प्रसिद्ध उपन्यास "अकाल में उत्सव" के लेखक पंकज सुबीर का धार्मिक दंगों की पृष्ठभूमि पर लिखा उपन्यास "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" वर्ष 2019 से ही काफी चर्चा में है। इस उपन्यास के पूर्व पंकज जी के दो उपन्यास, पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इस उपन्यास में कथाकार ने धर्म, धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिक दंगों, विघटनकारी और कलुषित विचारधाराओं पर अपनी कलम चलाई है। लेखक ने इस उपन्यास में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सांप्रदायिकता और देश के विभाजन को बहुत ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया है। "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" बहुपात्रीय उपन्यास है। पात्रों की

अधिक संख्या से ऊब नहीं पैदा होती है, अपितु उनके संवाद से स्वाभाविकता का निर्माण होता है। उपन्यास के पात्र गढ़े हुए नहीं लगते हैं, सभी पात्र जीवंत लगते हैं। प्रत्येक पात्र अपने-अपने चरित्र का निर्माण स्वयं करता है। पुस्तक के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखक ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। उपन्यास में दो मुख्य चरित्र हैं - एक सूत्रधार रामेश्वर है जो कथानक को निरंतर गतिशील रखता है और दूसरा चरित्र शाहनवाज़ है जिससे वह लगातार मुख़ातिब है। इनके अलावा भी इस उपन्यास में कुछ चरित्र हैं भारत यादव, विकास परमार, वरुण कुमार, शाहनवाज़ के पिताजी शमीम, रामेश्वर का पड़ोसी सलीम, जिनकी अलग-अलग गरिमा है। विनय, सलामुद्दीन और पुरुषोत्तम जैसे चरित्र धर्म के नाम पर दंगों की आग को भड़काते हैं। इस उपन्यास में दिखने वाले चेहरे हमारे बहुत करीबी परिवेश के जीते-जागते चेहरे हैं। इस पुस्तक को पढ़ते हुए इस उपन्यास के पात्रों के अंदर की छटपटाहट, दंगा पीड़ितों की व्यथा, पीड़ा और प्रशासनिक अधिकारियों के अन्तर्मन की अकुलाहट को पाठक स्वयं अपने अंदर महसूस करने लगता है। कथाकार ने घटनाक्रम से अधिक वहाँ पात्रों के मनोभावों और उनके अंदर चल रहे अंतरर्द्वंद्वों को अभिव्यक्त किया है। यह उपन्यास बेहद पठनीय है और पाठक की चेतना को झकझोरता है। रामेश्वर के खड़खड़ाते तेवर पाठकों को प्रभावित करते हैं। यह उपन्यास जीवन के यथार्थ और सच्चाइयों से रू-ब-रू करवाता है। भाषा सरल और सहज है। लेखक ने पात्रों के मनोविज्ञान को भली-भाँति निरूपित किया है और साथ ही उनके स्वभाव को भी रूपायित किया है।

उपन्यास के कथानक में मौलिकता और स्वाभाविकता है। इस उपन्यास की कथा एक रात की है, जिसमें एक क़स्बे की बाहर की बस्ती में दो सम्प्रदायों के लोगों के बीच दंगा भड़क उठता है। उस बस्ती में जहाँ दंगा भड़कता है वहाँ कोचिंग शिक्षक रामेश्वर के पुत्रवत शिष्य शाहनवाज़ का परिवार रहता है। उस रात को शाहनवाज़ की पत्नी को प्रसव पीड़ा होती है। रामेश्वर सारी रात जागकर किस प्रकार अपने शिष्यों और प्रशासनिक अधिकारियों की मदद से शाहनवाज़ की पत्नी को उसके परिवार सहित उस बस्ती से सुरक्षित बाहर निकलावाकर अस्पताल में पहुँचवाता है और दूसरी ओर अपनी कॉलोनी में रहने वाले मुस्लिम परिवार के जान-माल की अपने शिष्यों की सहायता से रक्षा करता है, यह तो आप उपन्यास पढ़कर ही समझ पाएँगे। एक साध्वी कंप्यूटर सीखना चाहती है लेकिन वह न तो कक्षा में आना चाहती है और न ही अपने निवास पर एक कंप्यूटर शिक्षक शाहनवाज़ से सीखना चाहती है क्योंकि शाहनवाज़ एक मुस्लिम है। इस कृति के माध्यम से लेखक जीवन की विसंगतियों और जीवन के कच्चे चिट्ठों और धर्म के तथाकथित ठेकेदारों को उद्घाटित करने में सफल हुए है। आलोच्य कृति महज एक उपन्यास नहीं है बल्कि एक विचारधारा है।

जिस प्रकार फिल्म "लगे रहो मुन्नाभाई" में फिल्म का मुख्य पात्र महात्मा गांधी से संवाद करता है, उसी तरह से इस पुस्तक में उपन्यास के मुख्य पात्र रामेश्वर के मोबाइल फ़ोन के इंटरसेप्ट हो जाने से रामेश्वर का नाथूराम गोडसे, जिन्ना और महात्मा गाँधी के साथ जो संवाद होता है, उससे पाठकों को इतिहास की भ्रांतियों और देश विभाजन के सारे सवालों के उत्तर मिल जाते हैं। कथाकार ने जिन्ना की महत्त्वाकांक्षा, धर्मनिरपेक्षता को, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के मनोविज्ञान, उनके मानसिक सोच-विचार, कांग्रेस के इतिहास को और अंग्रेज़ों की विघटनकारी व फूट डालो नीतियों को इस पुस्तक के माध्यम से भली-भाँति निरूपित किया है। उपन्यास में इस तरह की अभिव्यक्ति शिल्प में बेजोड़ है और लेखक की रचनात्मक सामर्थ्य का जीवंत दस्तावेज़ है। इस उपन्यास में सजीव, सार्थक, स्वाभाविक और सरल संवादों का प्रयोग किया गया है।

इस पुस्तक के अंतिम पृष्ठ पर पंकज सुबीर ने बहुत ही सकारात्मक सारगर्भित बात लिखी है। उन्होंने लिखा है "उन गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई। अभी यह कहना ठीक नहीं होगा कि वे चले गए। बहुत सारे लोगों के रूप में अभी वे लोग बाकी हैं और आने वाले समय में भी बाकी रहेंगे। माफ़ी चाहता हूँ फ़ैज़ साहब, अभी गुनाहगार गए नहीं हैं। गुनाहगार यहीं हैं। भारत यादव, विकास परमार, वरुण कुमार, शाहनवाज के रूप में इश्क़ का जुर्म करने वाले और उस जुर्म पर नाज़ करने वाले अभी बहुत से गुनाहगार बाक़ी हैं। बाक़ी है उनके अंदर जूनून-ए-रूख़-ए-वफ़ा भी। जो मानते हैं कि असत्य के रास्ते पर मिलने वाली जीत से महत्त्वपूर्ण सत्य के रास्ते पर मिलने वाली पराजय है। कह दीजिए उन लोगों से जो पाँच हज़ार साल से रसन और दार लिए घूम रहे हैं इन गुनाहगारों के पीछे। कह दीजिए कि आने वाले पाँच हज़ार सालों के लिए भी रसन और दार का इंतजाम कर के रख लें। हम मानने वाले नहीं हैं। हमारी नस्ल ख़त्म होने वाली नहीं है।"

पंकज जी पाठकों का ध्यान धार्मिक दंगों के कारणों की तह में ले जाने में कामयाब होते हैं। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने धर्म और इतिहास से संबंधित सही तथ्य प्रस्तुत किये हैं। पुस्तक में सभी धर्मों और इतिहास के बारे में सूक्ष्म जानकारियाँ गहन शोध का परिचय देती हैं। उपन्यास के बुनावट में कहीं भी ढीलापन नहीं है। लेखक ने इस उपन्यास को बहुत गंभीर अध्ययन और शोध के पश्चात् लिखा है। जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था उपन्यास शिल्प और औपन्यासिक कला की दृष्टि से सफल रचना है। यह उपन्यास सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। यह कृति धर्म, सांप्रदायिकता, धार्मिक विसंगतियों पर पर बहुत ही स्वाभाविक रूप से सवाल खड़े करती है और इन विषयों पर एक व्यापक बहस को आमंत्रित करती है।

सूर्यकांत नागर ने अपनी समीक्षा में लिखा है– समकालीनता की पुख्ता ज़मीन पर आधारित इस उपन्यास में पंकज सुबीर ने धर्म और हिंसा के परस्पर संबंध का भिन्न दृष्टि से विश्लेषण कर यह जताने की कोशिश की है कि हर धर्म ग्रन्थ में हिंसा का प्रसंग है। पवन कुमार के अनुसार यह उपन्यास अँधेरे में एक

रोशनदान की तरह है जिसमें लेखक कहता है कि जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था, वे गुनहगार चले गए कहना जल्दबाज़ी होगी। उन गुनाहगारों की नस्ल अभी ख़त्म नहीं हुई है। तरसेम गुजराल ने इस उपन्यास के संबंध में लिखा है कि यह उपन्यास इन्सानियत की खोज में तर्कपूर्ण आवाज़ है। डॉ. नीलोत्पल रमेश लिखते हैं "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" में पंकज सुबीर ने वर्तमान भारत में दंगों की मूल वजह की पड़ताल के साथ-साथ भारत-पाकिस्तान विभाजन की त्रासदियों का वर्णन भी किया है। माधव नागदा ने लिखा है कि यह उपन्यास हमारे चारों ओर पसरते जा रहे अंधकार को चीरकर एक प्रकाश-पुंज की तरह सामने आता है। अशोक प्रियदर्शी ने जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था को पढ़कर लिखा है पंकज सुबीर ने जिस रचनात्मक कौशल के साथ इस साम्प्रदायिकता की समस्या को उठाया है वह अद्‌भुत है, साहसपूर्ण है। प्रकाश कान्त इस उपन्यास के बारे में लिखते हैं बहस के बीच से एक उपन्यास किस तरह निकलता है इसका उदाहरण है पंकज सुबीर का उपन्यास "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था"। यह उपन्यास तेज़ी से ध्रुवीकृत होते या किए जाते आज के भारतीय समाज की केंद्रीय समस्या को रेखांकित करता है और साथ ही हिन्दू-मुस्लिम संबंधों के उलझाव, संकट एवं समस्याओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझने-समझाने का बेहद ज़रूरी प्रयास करता है।

वरिष्ठ साहित्यककार रमेश दवे लिखते हैं कि इस उपन्यास की विशेषता है- कठोर यथार्थ के धरातल पर रोचक एवं तथ्य-परक शैली। रमेश दवे ने अपनी आलोचना में लिखा हैं - पंकज सुबीर ने अपने आत्म को कथा-रूप देकर, वाङ्‌ग्मय की गहन पृष्ठभूमि और हमारी जातीय स्मृति के साथ आधुनिक चुनौतियों को पहचान दी है।

गीताश्री ने अपनी सारगर्भित समीक्षा में लिखा है – उपन्यास का फ़लक विराट है। फ़ैज़ को कहाँ पता था कि सौ साल बाद हालात ऐसे होंगे? पंकज सुबीर जब लिख रहे थे, तब शाहीन बाग़ के बारे में कहाँ पता था। लेखक आने वाले समय को भाँप लेता है। उसकी आहट, ख़तरे सूँघ लेता है। जैसे नाविक या मछुआरे समंदर के मिज़ाज को सूँघ लेते हैं। प्रेम जनमेजय ने इस कृति के विषय में कहा है – "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" पढ़ते हुए न केवल "मंटो साहित्य", "झूठा-सच", "तमस", "जिन लाहौर नहीं वेख्या" आदि की रचनात्मक स्मृतियाँ ताज़ा हुईं, अपितु अपनी माँ और बाऊजी द्वारा विभाजन का भोगा हुआ यथार्थ और उनकी शिक्षाओं से भी गुज़रा। "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" एक परिपक्व सोच का संवेदनशील उपन्यास है जिसे हर समझदार को तो पढ़ना ही चाहिए, उन्हें नासमझों को भी पढ़वाना चाहिए। डॉ. लता अग्रवाल के अनुसार पूरे उपन्यास में रामेश्वर का इश्क़ छाया हुआ है। आज समाज में इश्क़ का अभाव है जिसके लिए आज समाज में रामेश्वर जैसे पात्र की महती आवश्यकता है। गोविंद सेन ने इस उपन्यास पर अपनी प्रतिक्रया इस तरह दी है – "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" उपन्यास कट्टरपंथी ताक़तों को दिया गया एक माकूल जवाब है। भारती पाठक इस उपन्यास पर लिखती हैं - वर्तमान समय में धर्म को लेकर युवाओं में नकारात्मकता और अंधानुकरण अपने चरम की ओर अग्रसर है। उसमें यह उपन्यास निश्चय ही उनकी सोच को सही दिशा देने में उम्मीद की किरण जगाता है। प्रमोद त्रिवेदी ने जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था को पढ़कर लिखा है - पंकज सुबीर ने इतिहास के विभिन्न काल खण्डों में तथ्यों के आधार पर उजागर किया है कि राजनीति और लोगों की निजी महत्त्वाकांक्षाओं के हाथों धर्म का मानवीय और लोक कल्याणकारी पक्ष विकृत होता चला गया। आज धर्म के नाम पर विघटनकारी शक्तियों को पहचानने और उनसे सावधान रहने के लिए यह किताब ज़रूर पढ़ी जानी चाहिए। डॉ. सीमा शर्मा लिखती हैं- पंकज सुबीर ने विश्व इतिहास से न जाने कितने उदाहरण देकर यही समझाने का प्रयास किया है कि "असली सुख बचाने में है, मारने में नहीं"। डॉ. प्रज्ञा रोहिणी इस उपन्यास के बारे में लिखती हैं कि इस उपन्यास में दंगों के मनोविज्ञान को समझाने की कोशिश की गई है। किस तरह कभी किसी अपराध, कभी बीमा के लाभ या कभी ज़मीन के कारण व्यक्तिगत बैर को दंगे की शक्ल दी जाती है।

दीपक गिरकर ने अपनी समीक्षा में लिखा है कि यह उपन्यास साम्प्रदायिक दंगों के असली कारणों की पड़ताल करता है। वे आगे लिखते हैं साम्प्रदायिकता के वीभत्स रूप पर हिन्दी में अनेक कथाकारों ने उपन्यास लिखे हैं। जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था उपन्यास यशपाल के "झूठा सच", नासिरा शर्मा के "जीरो रोड", गीतांजलिश्री के "हमारा शहर उस बरस" , कमलेश्वर के " कितने पाकिस्तान", राही मासूम रजा के "आधा गाँव", विभूति नारायण राय के "शहर में कर्फ्यू" और भीष्म साहनी के उपन्यास "तमस" से अपने कथ्य, प्रस्तुति और चिंतन की दृष्टि से भिन्न है। भीष्म साहनी ने भी "तमस" उपन्यास में सांप्रदायिक दंगों के कारणों का विश्लेषण किया था। "तमस" उपन्यास भी सांप्रदायिक उन्माद और उसके पीछे की राजनीति को उजागर करने वाला उपन्यास है। आलोचक प्रफुल्ल कोलख्यान के अनुसार "तमस" एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। यह महान् उपन्यास होता यदि इसमें उस परोक्ष भारतीय परिदृश्य को भी उपन्यस्त कर प्रत्यक्ष किया गया होता, जिस भारतीय परिदृश्य को बदलने के लिए औपनिवेशिक ताक़तें जनता का विभाजन करती रही हैं और जिस प्रयोजन के लिए सांप्रदायिकता का परोक्ष इस्तेमाल करती रही हैं। "तमस" का सन्देश है कि तमस को पहचानना आसान नहीं है, उससे बाहर निकलना तो ख़ैर बहुत मुश्किल है। अभी तक सांप्रदायिक दंगों पर जितने भी उपन्यास लिखे गए हैं उनमें यह उपन्यास "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" उन सब से अलग खड़ा दिखाई देता है क्योंकि लेखक ने धर्म के मर्म की पड़ताल ऐतिहासिक तथ्यों के साथ की है और साथ ही सांप्रदायिक दंगों के असली कारणों का पर्दापाश करते हुए सांप्रदायिक सद्‌भाव का सकारात्मक सन्देश दिया है। कथाकार पंकज सुबीर सांप्रदायिकता

नामक बीमारी की गहराई तक गए है और इस विषय पर गहन चिंतन भी किया है।

कैलाश मण्डलेकर के अनुसार आज जिस तरह सामाजिक वैमनस्य बढ़ते जा रहा है उसमें प्रशासन और पुलिस के बजाय रामेश्वर जैसे लोगों की महती ज़रूरत है। इस कृति के मार्फ़त, पंकज सुबीर की मान्यता है कि क़स्बाई शहरों में यदि सामाजिक विषमताएँ और साम्प्रदायिक विद्वेष है तो रामेश्वर जैसे चरित्र भी हैं जो अहेतुक रूप से सद्भाव, भाईचारा और साम्प्रदायिक समरसता के लिए फ़िक्रमंद रहते हैं। मीरा गोयल ने अपनी आलोचना में लिखा है कि कुछ धर्म के ठेकेदार अपनी नीच करतूतों से अपने धर्म और मज़हब को बदनाम कर रहे हैं और अपने षड्यंत्र से मासूम, अविकसित मस्तिष्क में भी अपने संकुचित विचार भर रहे हैं। वेद प्रकाश अमिताभ लिखते हैं बहुत दिनों तक हिन्दी उपन्यासों का यह रेडीमेड सोच रहा है कि प्राय: फ़ासिस्ट मनोवृत्ति के हिंदू संगठन साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए उत्तरदायी हैं, आम मुसलमान सेकुलर है, मजबूरी या प्रतिक्रिया में आक्रामक होता है। अत: हिंदू साम्प्रदायिकता अपेक्षाकृत बुरी और भयावह मानी गई, बजाय मुस्लिम फिरकापरस्ती के। पंकज सुबीर ने दोनों पक्षों की अतिवादी-प्रवादों-विवादों की पड़ताल की है और प्रेमचंद के साथ खड़े दिखाई देते हैं कि साम्प्रदायिकता अच्छी या बुरी नहीं होती, वह हर हाल में भत्सर्ना योग्य होती है। यही वजह है कि उपन्यास ने हिंदू मानसिकता के साथ-साथ मुस्लिम दुराग्रहों को भी आड़े हाथों लिया है। प्रियदर्शन ने इस कृति के विषय में कहा है – हमारे समय का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है - इस लिहाज से और ज़्यादा कि यह बहुत सरल ढंग से साम्प्रदायिकता की राजनीति का कच्चा-चिट्ठा खोलता दिखाई पड़ता है और धर्म और राष्ट्र के नाम पर पैदा किए जाने वाले उन्मादों से सतर्क करता है। डॉ. रेनू यादव के अनुसार यह उपन्यास सिर्फ समय से संवाद नहीं बल्कि पूरे युग से संवाद है। वे कहती हैं उपन्यासों में आज सिर्फ कहानियाँ ही नहीं गढ़ी जा रहीं बल्कि कहानियों के पीछे छुपी सच्चाइयों की व्याख्या और उन्हें उजागर करना एक नई चुनौती बनती जा रही है। शोध छात्रा प्रतिभा सिंह के अनुसार धर्म के नाम पर हमेशा स्त्रियों का शोषण होता रहा है। शोध छात्र जुगेश कुमार गुप्ता ने अपने आलेख में लिखा है कि अहिंसा और धर्म को लेकर एक बेहतरीन दर्शन इस उपन्यास में देखने को मिलता है। "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" आधुनिक सन्दर्भ में साम्प्रदायिक घटनाओं के निर्माण और उससे होने वाली त्रासदियों की बेजोड़ व्याख्या करता है।

दिनेश कुमार पाल ने अपनी समीक्षा में लिखा है इस पूरे उपन्यास की रचना शैली अहिंसा और दर्शन पर आधारित है। पंकज सुबीर का यह उपन्यास बड़ी ख़ूबी से धर्म की आड़ में साम्प्रदायिक दंगों का पर्दाफ़ाश करता है। अपने समकालीन कथाकारों में पंकज सुबीर की कथा प्रकृति और वैचारिकता भिन्न स्वर की है। सागर सियालकोटी कहते हैं यह उपन्यास नहीं है बल्कि एक तारीख़ी दस्तावेज़ है जिसे समाज के हर व्यक्ति को पढ़ना चाहिए। पंकज सुबीर ने यह बताने की कोशिश की है कि दंगों की वजह कुछ और होती है और रंग कुछ और दे दिया जाता है। राजेंद्र नागदेव लिखते हैं यह उपन्यास आज विभिन्न धर्मों-सम्प्रदायों के मध्य चरम कटुता पर पहुँच चुके परस्पर संबंधों और घृणा को लेकर लिखा गया है। यह वर्तमान विषाक्त वातावरण में परस्पर भाईचारे की आवश्यकता को रेखांकित करता है। अशोक "अंजुम" इस उपन्यास को पढ़कर कहते हैं इस उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगे के गणित को बड़ी बारीक़ी से तीन घटनाक्रमों के द्वारा समझाया गया है। पहला दंगा अवैध संबंधों की आड़ में हुआ। दूसरा दंगा एक व्यवसायी की बेटी के एक मैकेनिक के साथ प्रेम संबंधों के कारण हुआ और तीसरा वह दंगा जिसकी चपेट में शाहनवाज़ और उसका पूरा परिवार तथा पूरा ख़ैरपुर आया हुआ है, वह एक व्यक्ति द्वारा अपने खेतों तक सीधे रास्ते की चाह में हुआ है। यहाँ यह समझाने की ईमानदार और दमदार कोशिश है कि कोई भी दंगा धार्मिक नहीं होता। हर दंगे की शुरूआत से किसी का व्यक्तिगत स्वार्थ जुड़ा होता है। कमलेश पाण्डेय ने अपनी सारगर्भित समीक्षा में लिखा है कि उपन्यास एक रोमांचक और कसा हुआ प्लॉट है जो दंगों की मानसिकता, खौफ़ और उसके इर्द-गिर्द रक्स करने वाले इंसानी जज़्बों का नाटकीय मगर प्रामाणिक दृश्यांकन करता है। रामेश्वर नामक केंद्रीय पात्र पूरे घटना-क्रम का संचालन करता मालूम होता है, पर वह एक व्यक्ति नहीं एक विचार है जो सदियों से चले आ रहे तमाम उदात्त मानवीय मूल्यों का प्रतीक है।

आरती इस उपन्यास पर लिखती हैं - यह उपन्यास धर्म के इतिहास को खँगालता और तार्किक ढंग से एक-एक बिंदु को खोलता हुआ और उन पर लंबी बहस करता हुआ, मेरी नज़र में अभी तक आया पहला उपन्यास है। कितना अजीब है कि शाहनवाज़ को शिक्षित करने में रामेश्वर को एक दशक से अधिक समय लगता है, वहीं दो सम्प्रदाय के लोगों को हिंसा की आग में झोंक देने के लिए दो दिनों का समय भी नहीं लगता। सुपरिचित प्रवासी कथाकार डॉ. हंसा दीप के अनुसार उपन्यास का संदेश व्यापक है, सामाजिक विघटन और कलुषित विचारधाराओं के ये बीज लगातार अंकुरित होते रहे हैं एवं जाने या फिर अनजाने ही हम सब इसके गुनहगार हैं। वीरेन्द्र जैन ने अपनी आलोचना में लिखा है कि कुटिल सत्तालोलुपों द्वारा न केवल धार्मिक भावनाओं का विदोहन कर सरल लोगों को ठगा जा रहा है, अपितु इतिहास और इतिहास पुरुषों को भी विकृत किया जा रहा है। सुषमा मुनीन्द्र लिखती हैं इस उपन्यास में लेखक का जुनूनी शोधार्थी की तरह किया गया अध्ययन और श्रम स्पष्ट गोचर होता है। ब्रजेश राजपूत ने अपनी सारगर्भित समीक्षा में लिखा है कि कथ्य और कथानक की दृष्टि से आँखें खोल देने वाला साहसिक प्रयास है। जब साम्प्रदायिकता पर लोग कुछ कहने और अपने आपको व्यक्त करने से बचते हैं उस दौर में इस साहसिक उपन्यास लिखने वाले पंकज सुबीर बधाई के पात्र हैं। डॉ. उर्मिला शिरीष कहती हैं यह उपन्यास आज के सन्दर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण और अर्थपूर्ण उपन्यास है।

गाँधी जी विचारधारा को एक पात्र के माध्यम से समझने का बहुत सार्थक प्रयोग है। आलोक जोशी ने अपनी आलोचना में लिखा है कि यह किताब एक तरह से आईना दिखा रही है। इसके लिए उन्होंने बहुत अच्छी इमेजरी का सहारा लिया है, थोड़ी कहीं-कहीं पर भारी पड़ती है, ऐसा लगता है, इसके साथ में एक सन्दर्भ ग्रंथ लेख भी होना ज़रूरी है, क्योंकि इसमें समझना यह भी ज़रूरी है कि यह बातें क्यों कही जा रही हैं।

तरुण कुमार पिथोड़े इस उपन्यास को पढ़कर कहते हैं कि कथाकार ने कहानी को महसूस किया है, उन पलों को जिया है। यह उपन्यास लिखकर पंकज सुबीर ने अपने मिट्टी के क़र्ज़ को पूरी तरह से उतार दिया है। सैयद मोहम्मद अफ़ज़ल ने अपनी समीक्षा में लिखा था कि यदि मैं सक्षम होता तो इस उपन्यास को पाठ्यक्रम में शामिल करता। सुदीप्ता सूदी लिखती हैं कि भारत पाक विभाजन पर बहुत कुछ लिखा गया है। काफी कुछ मैंने भी पढ़ा है, लेकिन विभाजन के पीछे के मूल कारणों को एक नए दृष्टिकोण से समझाती, उनका विश्लेषण करती मैंने यह पहली किताब पढ़ी है। अभय अरविंद बेडेकर ने इस उपन्यास पर चर्चा करते हुए लिखा है सुबीर क्या कहूँ मैं तुम्हारे बारे में। ऐसा अद्‌भुत उपन्यास जो ना सिर्फ़ नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी, प्रशासन, धर्म, दंगा, समाज की मानसिकता सब पर प्रकाश डालता है और एक नई दृष्टि प्रदान करता है, सिर्फ़ तुम्हीं लिख सकते थे। लक्ष्मी शर्मा ने अपनी प्रतिक्रिया में लिखा है गहन शोध और पैनी इतिहास दृष्टि के साथ लिखा ये उपन्यास बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमें लेखक ने राजनीति, समाज और दर्शन सब के प्रकाश में यथास्थिति को चीन्हा है। अनीता सक्सेना इस उपन्यास पर लिखती हैं - साम्प्रदायिकता और विस्थापन के दर्द को भी कथाकार ने परिभाषित किया है। विस्थापन का दर्द वही जानता है जो उससे गुज़रा हो। वे लिखती हैं कि कथाकार ने विस्थापन के दर्द को उकेरा है। कोई भी दंगा साम्प्रदायिक होता नहीं है उसके पीछे कुछ दूसरे कारण होते हैं। महेश शर्मा ने अपनी आलोचना में लिखा है - आरंभ में ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक की स्वयं की सोच को तरजीह दी जा रही है, एक पक्ष की ओर झुकाव है या यूँ कहें कि एक पक्ष का विरोध कुछ अधिक है लेकिन जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता है वैसे-वैसे स्पष्ट होता जाता है कि हर पहलू पर, हर पक्ष पर प्रकाश डाला जा रहा है।

इस उपन्यास पर अपनी टिप्पणी में पंकज पाराशर ने इस उपन्यास को सहजता और सरलता की संघनित क़िस्सागोई कहा है। राजीव तनेजा ने दंगाइयों की मानसिकता का बहुत ही सटीक चित्रण कहा है। कविता वर्मा ने इसे कठिन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश कहा है। विश्वनाथ सचदेव ने इस उपन्यास पर लिखा है - आओ, इंसानियत से इश्क़ करें। मनीषा कुलश्रेष्ठ अपनी सारगर्भित टिप्पणी में लिखती हैं - पंकज सुबीर उन सवालों पर सहज ही बात करते हैं अपने पात्रों के माध्यम से जिनसे हर कोई बचता प्रतीत होता है। निधि जैन कहती हैं कि पंकज सुबीर इसमें कथात्मकता और रोचकता के साथ-साथ रस की उत्पत्ति करने में सफल रहे हैं। नरेंद्र नागदेव के अनुसार यह महज एक उपन्यास नहीं, बल्कि एक विचार है। डॉ. रश्मि दुधे ने इसे एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास कहा है। प्रभुदयाल मिश्र ने इस उपन्यास को धर्म का नया समाजशास्त्र बताया है। आकांक्षा पारे के अनुसार यह कृति धर्म, साम्प्रदायिकता के प्रश्नों के उत्तर तलाशती है। आकाश माथुर लिखते हैं कि इस किताब की महत्ता कभी कम नहीं होगी। सुदीप शुक्ला के मतानुसार यह किताब सवाल भी तलाशती है और जवाब भी देती है। नीलम कुलश्रेष्ठ ने इसे इंसानियत धर्म की किताब कहा है। रितु सिंह के अनुसार इस उपन्यास में लेखक की तैयारी दिखाई देती है। डॉ. शोभा जैन ने इस पुस्तक पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यह उपन्यास क़ौमों के सहअस्तित्व की पड़ताल करता है। मेधा झा ने इस किताब को ऐतिहासिक दस्तावेज़ कहा है। पंकज मित्र इस उपन्यास को पढ़कर लिखते है - एक बहुत ही जटिल विमर्श को आसान तरीक़े से पाठक के सामने पेश करने और धर्म के मर्म को उद्‌घाटित करने में लेखक की क़ामयाबी चौंका देती है। डॉ. कुंकुम गुप्ता लिखती हैं कि यह उपन्यास सच का आईना दिखाता है। अंजू शर्मा के अनुसार इस उपन्यास को पढ़ने के बाद बहुत सारे जाले साफ़ होंगे। पारुल सिंह अपनी टिप्पणी में लिखती हैं कि पंकज सुबीर ने इस उपन्यास को लिखकर देश हित के यज्ञ में अपनी आहुति दे दी है। अपना तर्पण पूर्वजों को कर दिया है। ईश मधु तलवार ने रेखांकित किया है कि यह किताब विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जानी चाहिए। सपना सोलंकी ने अपनी प्रतिक्रिया में लिखा है कि यह क़िताब आदर्शवादी न होकर विशुद्ध यथार्थवादी है। तिलक राज कपूर ने इस उपन्यास के बारे में लिखा है कि यह उपन्यास पाठक को निरंतर बाँधे रखता है। उषाकिरण खान, चित्रा देसाई, धीरेन्द्र अस्थाना, मधु कांकरिया, सूर्यबाला, उषा भटनागर जैसे वरिष्ठ साहित्यकारों ने इस उपन्यास पर अपनी संक्षिप्त प्रतिक्रिया दी है। इस उपन्यास का महत्त्व बताते हुए विमर्श - जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (आलोचना) पुस्तक की संपादक सुधा ओम ढींगरा ने सही ही लिखा है कि यह उपन्यास बेहद पठनीय है और यह उपन्यास घर-घर पढ़ा जाना चाहिए।

समीक्षकों, आलोचकों, साहित्यकारों ने इस पुस्तक में तथ्यों के साथ गहरा विश्लेषण किया है। "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" उपन्यास में समालोचकों के लिए भी सीखने को बहुत कुछ है। धर्म, साम्प्रदायिकता और धार्मिक दंगों जैसे गंभीर विषयों पर इतने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर तर्कयुक्त, सार्थक और संवेदनशील ढंग से पंकज सुबीर द्वारा विचार किया गया, यह काबिलेतारीफ़ है। उपन्यास और विमर्श की इस पुस्तक को पढ़कर लगा कि वास्तव में पंकज सुबीर एक निडर और साहसी साहित्यकार हैं। विमर्श की यह क़िताब धर्म और साम्प्रदायिक विमर्श के लिहाज से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। विमर्श - जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था (आलोचना) पुस्तक शोधार्थियों, साहित्यकारों, समीक्षकों, आलोचकों, पाठकों के लिए उत्प्रेरक का कार्य करेगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

चौपड़े की चुड़ैलें

समीक्षक : अदिति सिंह भदौरिया

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

अदिति सिंह भदौरिया
साहिल, सिद्धिविनायक टॉवर, फ़्लैट नं. 404, ब्लॉक- ए, बंगाली चौराहा, मयंक वाटर पार्क के पास, बिछोली मरदाना, इन्दौर, मप्र 452016
मोबाइल- 8959361111

पंकज सुबीर का 'चौपड़े की चुड़ैलें' कहानी संग्रह पढ़ा। बड़े- बड़े व्याख्यान जो नहीं समझा पाते। वह एक सीधी सरल भाषा में जीवन की सहजता हमें समझा देती है। कहानी कोई व्याखान नहीं है बल्कि वह तो हमारे भीतर के भाव है, जो बाहर आना चाहते हैं। पर शब्दों की जादूगरी अगर इतनी ही आसान होती तो फिर क्यों पंकज सुबीर को ही ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार संग्रह के लेखक होने का सम्मान मिलता ? इस सम्मान का अर्थ है कि लेखक ने हमारी भावनाओं को अपने भीतर आत्मसात् किया है। लिखित कहानियों की नींव हमें बताती है कि लेखक की स्याही भावनाओं का मिश्रण है। जनाब सलीम लंगड़े और श्रीमती शीला देवी की कहानी इस शीर्षक से चाहे पाठकों को लगे कि एक सामान्य कहानी है। जिसमें दैहिक सुख को प्रेम के साथ जोड़ने का लेखक ने प्रयास किया है , परन्तु इसमें हमारे उस समाज पर कटाक्ष है, जिसमें लड़के और लड़की के भेदभाव ने भ्रूण हत्या को जन्म दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि लड़कियों की संख्या लड़कों से बहुत कम हो गई, और इसका खामियाज़ा भी लड़कियों को ही भुगतना पड़ा। जब अपने ही परिवार के लिए विवाह के व्यापार की अहम वस्तु बनी। क्योंकि वह एक वस्तु है इसलिए उसकी कुछ इच्छाएँ नहीं हो सकतीं, फिर भी सामान में जान तो है। उसकी कुछ इच्छाएँ हैं और उन इच्छाओं को पूरा करने के लिए यदि स्त्री कोई कदम उठाती है तो संस्कारों के नाम पर पुरुष अंहकार को ठेस पहुँचती है। जिसे वह सलीम को पीट कर ठीक करना चाहते हैं, पर भूल जाते हैं कि अहंकार की तृष्णा कभी शांत नहीं होती। पंकज सुबीर ने कहानी की भाषा और उसका प्रवाह बेहद सामान्य रखा है, जिससे कि हर पाठक इससे जुड़ सके। प्रेम से ऊपर होती है इच्छाएँ, जब हम इस सच को स्वीकार करने ही वाले होते हैं, तभी लेखक प्रेम और त्याग का जीवन्त उदाहरण हमारे समक्ष रखता है, जिसमें नायिका अपने प्रेम के अंश को ज़िंदा रखने के लिए समाज से लड़ती है। लेखक ने प्रेम और त्याग एवं धोखे को एक भावुक रंग देकर कहानी का नयापन दिया है, जो विषम परिस्थितियों में अपने प्रेम के लिए एक स्त्री के आस्तित्व को तो दिखाती है और साथ ही इसमें पुरुष के दो विभिन्न व्यक्तित्वों से हमारा परिचय कराती है। पंकज सुबीर ने समाज की परम्पराओं के साथ पूरा न्याय करते हुए दिखाया कि कैसे एक तरफ यौवन की दहलीज़ पर सपनों की डोर को पकड़ते हुए क्षितिज को पाने की उमंग एक आम स्त्री को त्याग की मूर्ति बनने पर विवश कर देती है। वहीं दूसरी ओर युवक अपनी महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत होकर अपने प्रेम को भुला देता है पर प्रेम ऐसा शाश्वत सच है, जिसकी निशानियों को मिटाना आसान नहीं होता। 'अप्रैल की एक उदास शाम' में प्रेम में बदले की भावना आते भी देर नहीं लगती। जब नायिका अपने ही प्रेमी के पिता से विवाह कर लेती है तब यह समझना मुश्किल

हो जाता है कि वह सज़ा किसे दे रही है ? स्वयं को या अपने अधूरे प्रेम को ? हमेशा से ही स्त्री एक मज़बूत भावना से स्वयं के होने का अहसास कराती है। नायिका द्वारा अपने अतीत के पन्नों को एक अजनबी के सामने रख देना सच में एक साहसी कदम है। लेखक अपने पात्रों के बीच अपनेपन का भी बाँध बनाने में सफल रहा है। नायिका के पति का पाठकों के साथ सीधे तौर पर कुछ परिचय नहीं होता फिर भी वह पाठकों के बीच एक आदर के भाव को पाने में सफल रहता है। एक ऐसी नायिका को हमारे समक्ष खड़े कर देता है जिसके लिए प्रेम से बड़ा कुछ नहीं। प्रेम का ऐसा मार्मिक चित्रण हमें भीतर तक झकझोर देता है।

लेखक की कलम तभी सफल हो जाती है, जब उसका हर पात्र पाठकों में अपना स्थान बनाने में सफल रहे। अगली कहानी 'सुबह अब होती है' के माध्यम से लेखक ने बताया है कि समाज नियमों की एक सुंदर कड़ी है। कहानी ने हमें सोचने पर विवश कर दिया है कि आख़िर जीवन में क्या नियम इतने ज़रूरी हैं कि आपको अपने हिसाब से चलाने लगें। इंसान को पता ही नहीं चलता कि कब वह अपने ही बनाए नियमों का ग़ुलाम बन गया एवं अपने ही जीवन की बागडोर उसने नियमों को दे दी और ख़ुद कठपुतली की तरह उसके इशारों पर नाचने लगा। इस आनन-फानन में हम कब अपनों से दूर होकर उनके लिए एक सिरदर्द बन जाते हैं, हमें ख़ुद पता नहीं चलता। हमारे अपने हमसे दूर होना चाहते हैं। एक आम परिवार को केंद्र बिंदु बना बुना गया रिश्तों का ताना–बाना, जहाँ नायिका स्वयं के अंतर्द्वंद्व से भागना नहीं चाहती, बल्कि ऐसे इन्सान की तलाश करती है, जिसे वह अपना किया गया रोष खुलकर बता सके। कहानी के नायक को भी समझ में आता है कि सच वह नहीं जो दिखाया जा रहा है। यह उस नायक की दूरदर्शिता को दर्शाता है। इसमें संकेतात्मक भाव से लेखक ने यह भी बताया है कि काम के प्रति लगन किसी पद को प्राप्त करके ही नहीं आती। अंत में जब नायक को सब सच पता चलता है तो उसके भीतर भी एक द्वंद्व चलता है। क्या वह भी उसी कश्ती पर सवार है ? कहीं वह अनजाने में अपनी पत्नी के साथ वही अन्याय तो नहीं कर रहा ?

यह कहानी हमें सोचने पर मजबूर करती है कि जीवन को जीने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण समय पर मिलने वाला अपनापन ही रिश्तों की नींव है। कहानी में प्रेम कहीं नहीं दिखता। दिखता है तो आत्मा के उपर एक मांस का लोथड़ा जो कायदे-कानून और नियमों को जीते-जीते कब का मर चुका है। उम्र के उस पड़ाव पर आकर जब नायिका अपने पति का अंत करती है तो वह भगवान् के आस्तित्व को भी स्वीकार करने से मना कर देती है। इस अत्यंत असाधारण कहानी में इस बात का सांकेतिक वर्णन है कि कब तक नियमों को ज़िंदा रखने के लिए समाज में ज़िंदा लाशों का निर्माण होता रहेगा ? इसी क्रम को आगे बढ़ाती हुई कहानी है 'चौपड़े की चुड़ैलें' यह हमारे समाज का वह आईना है जिसे हम देखना ही नहीं चाहते, क्योंकि हम जानते हैं कि इसकी परतें खुलीं तो हम ख़ुद ही बेपर्दा हो जाएँगे। भीतर तक झकझोर देने वाली कहानी है। जिसमें अंत तक पता नहीं चलता कि खलनायक कौन है ? हमारा समाज, हमारी सोच या फिर हम ख़ुद। इस कहानी को पढ़ने के बाद अनुभव होता है कि हालात से बड़ा खलनायक आज तक कोई दूसरा नहीं हुआ। तीन स्त्रियाँ जो हालात के हाथों मजबूर होकर अपना जीवन निर्वाह कर रही हैं, लेकिन पुरुष के आगमन से दबी इच्छाएँ फिर से मन को डावाडोल करती हैं, पर क्या उनकी मात्र शारीरिक ज़रूरतें। शायद नहीं, मानसिक सुकून के आगे शरीर कभी अपनी प्रभुता नहीं जमा पाया। जिन्हें हम शायद स्वीकार नहीं करते। तीन नायिकाओं ने समय पर हो रहे हर बदलाव को सकारात्मकता से स्वीकारा भी और उसे भरपूर जीया भी। यह कहना बिलकुल ग़लत नहीं होगा कि यह कहानी किताब की मूल आत्मा है।

परत दर परत समाज को ख़ुद से ही रू-ब-रू कराती संग्रह की अगली कहानी 'इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ।' यह कटाक्ष सब पर है जो स्वयं को सीना ठोककर भारतीय कहते हैं, लेकिन हमारे ही हाथों हमने भारत को लगभग ख़त्म सा कर दिया है। हिन्दू–मुस्लिम में बटवारा करते हुए हम हर बार 1947 को दोहराते हैं। तब भी किसी ने पूछ कर पाकिस्तान नहीं बनाया। बस कुछ स्वयं को बेहद समझदार समझने वालों ने अपने आप ही फ़ैसला ले लिया और आज भी ऐसा ही कर रहे हैं। दीवाली को मात्र हिन्दुओं का त्यौहार बना दिया। मुस्लिम से पूछा गया कि क्या तुम भी रोशनी चाहते हो, जो हमारी आत्मा को भी रोशन कर दे। न चाहते हुए भी कुछ मुस्लिम ख़ौफ़ और नफ़रत के अन्धकार में रहने को मजबूर हैं, पर सौहार्द्रता की उम्मीद सामने वाले से ही करते हैं। हैरानी है पर इस प्रश्न के साथ धर्मनिरपेक्षता पर भी प्रश्नचिह्न उठाती कहानी भीतर तक झकझोर देती है।

यह कहानी आजकल की धर्मनिरपेक्षता पर कटाक्ष करती है, कि किससे पूछकर दो भाइयों को मात्र धर्म के नाम पर अलग रहने पर विवश किया गया ? क्यों किसी ने नहीं पूछा कि आम आदमी क्या चाहता है ? पाठक इस उधेड़बुन को आज के न्यूज़ चैनल के पैनल में बैठे बुद्धिजीवियों के चेहरे पर साफ़ अनुभव कर सकते हैं, पर शाब्दिक रूप देने की हिम्मत कहानी के लेखक ने की है। जिसने हमारे ही प्रश्न हमारे समक्ष लाकर रख दिए। बुद्धिजीवियों और न्यूज़ चैनल की बात हो और बलात्कार जैसी घटना का ज़िक्र न हो तो यह आज के समाचारों और कथित पुरुष समाज के साथ अन्याय होगा, क्योंकि पुरुषों को तो लगता है, किसी भी स्त्री को पसंद करना या उसका शोषण करना यह उनके लिए आम बात है। स्त्री का जन्म ही इसलिए हुआ है कि वह इस शोषण को चुपचाप स्वीकार करे, पर रेपिश्क कहानी ने नायिका के द्वारा मात्र साहस का परिचय ही नहीं दिया बल्कि सच को स्वीकार करने का साहस भी दिखाया है। उसे अपने ऊपर हो रहे मानसिक एवं शारीरिक अत्याचारों से आज़ादी पाने के लिए किसी पुरुष की ज़रूरत नहीं है। यदि वह संसार की रचना में सहायक हो सकती है, तो अपने लिए उसके स्वयं का आत्मविश्वास ही काफी है।

रेपिश्क में स्त्री को एक सामान समझने वाला यह समाज कभी स्वीकार नहीं करता कि सामान साँस नहीं लेता पर स्त्रियाँ लेती है। आज भी पुरुष अपने खोखले आस्तित्व को पूरा करने में स्त्री का ही सहारा ढूँढ़ता है। वह स्त्री की न नहीं सुन पाता। इसमें उसे अपना ढोंग दिखाई नहीं देता, पर वह हाँ भी तभी तक चाहता है जब तक उसका मन हो कि स्त्री उसके साथ रहे। वह दुःख- सुख के बंधन को स्त्री के माथे ही मढ़ना चाहता है। उसके द्वारा किया गया बलात्कार उसकी जीत का परिणाम नहीं बल्कि उसके मर्द होने के झूठे दम्भ का परिणाम ही है। अब हास्यापद बात यह है कि उसे स्वयं को यह महसूस कराने के लिए कि वह पुरुष है, इसके लिए भी स्त्री की आवश्यकता है। अब कोई पूछे कि भाई स्वयं पर ही क्यों शक है तुम्हें ? पुरुष के इस अंतर्द्वंद्व को और स्त्री के स्वयं पर विश्वास को चित्रित करती यह कहानी हर समय की कहानी है। इसे हम समय में बाँध नहीं सकते कि आज ऐसा हो रहा है, कल तो नहीं था, शायद कल न हो पर बीते कल के मरुस्थल में आज भी हम पुरुषत्व को पाने की लालसा के पदचिह्न आसानी से देख सकते है।

आज के परिवेश को केंद्रबिंदु बनाकर लेखक ने कालचक्र के पहिये को घुमाया है। समर्थ भाषाशैली में स्त्री का स्वयं एवं समाज से द्वंद्व को बख़ूबी से प्रस्तुत किया गया है। हम इस कहानी की उधेड़बुन में होते ही हैं कि लेखक को पाठक की इस कशमकश का पता चल जाता है और वह एक परिपक्व शब्दों के जादूगर होने का प्रमाण देता है। अपनी अगली कहानी 'धकीकभोमेग' के माध्यम से हँसी का छोटा फुहारा हमारे होठों पर रख देता है। धकीकभोमेग शीर्षक पढ़कर सोचते है कि आख़िर यह क्या बला है,पर यकीन कीजिए कहानी के अंत में हँसी आती है। जब चोरों को मोर पड़ जाते है। लक्ष्मी के पाँव नहीं होते। इस बात को सार्थक करती यह रचना बयान करती है कि आप से बढ़कर भी कोई है जो बस समय का इंतज़ार कर रहा है, कि कब लोहा गर्म हो और वह आपके सपनों पर हथौड़ा बजाकर चलता बने। जितना शीर्षक को समझने में समय लगता है उतना ही आज तक इस बात को समझने में समय लगता है कि आख़िर मनुष्य मात्र स्वयं को ही तीसमार ख़ाँ क्यों समझता है ?

यदि हम यह कहें कि शीर्षक कठिन है तो पाठक यह भी समझें कि ज़िंदगी को समझना कौन सा आसान है ? कठिन शीर्षक के साथ बेहद सरल भाषा शैली की एक अच्छी रचना है। औरतों की दुनिया मध्यमवर्गीय घरों के ताने-बाने को मिला कर बुना भावनाओं का चित्र जिससे हम आज तक अनजान थे या फिर स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। बेहद सुन्दरता से लेखक ने यह बताया है कि रिश्तों से ज़्यादा कोई चीज़ महत्त्वपूर्ण नहीं होती और एक औरत में इतनी ताक़त होती है कि टूटी साँसें जोड़ दें, तो फिर टूटे घर और रिश्तों को जोड़ना तो उसकी बहुत सारी ख़ूबियों में से एक है।

इस कहानी में लेखक ने स्त्रियों के एक अलग ही पक्ष को पाठकों के समक्ष रखा है। जिस पर बहुत कम लिखा गया है। परिवारों में यदि कोई मतभेद होते हैं, तो बिना कारण जाने ही इस का श्रेय स्त्रियों को दे दिया जाता है, क्योंकि अमूमन यह देखा गया है कि घरों में मतभेद का कारण स्त्री को मान लिया जाता है। यह पुरुष प्रधान समाज का ही एक नज़रिया है, जहाँ कुछ भी ग़लत हो तो वह स्त्री द्वारा ही किया जाता है। माँ-बाप को शादी के बाद घर से निकाल दिया तो बहू ख़राब है और अगर माता-पिता ने शादी में कम खर्चा किया तो लड़की को ताने, और अगर ज़्यादा खर्चा कर दिया तो ज़रूर लड़की में कुछ दोष होगा।

इस कहानी ने इस भ्राँति को मज़बूती से तोड़ा और स्त्री को ऐसे पुल की तरह बताया जो जोड़ने में विश्वास रखती है तोड़ने में नहीं। समाज की संकुचित सोच पर कटाक्ष करती यह कहानी मध्यम वर्गीय परिवेश में बुनी गई साधारण सी दिखने वाली एक असाधारण सन्देश देती हुई बेहतरीन रचना है।

हम भावनाओं की नाव में सवार हो चुके हैं और लेखक इस बात को पहचानता है, तभी वह अपनी बेहतरीन कहानियों में से एक कहानी चाबी हमारे समक्ष रखता है, जिसमें पिता की उधेड़बुन को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जहाँ वह यह स्वीकार ही नहीं कर पाता कि अब वह अकेला है, लेकिन उसके इस कठिन समय में उसके पड़ोसी भावनात्मक सहारा देते हैं। माँ की ममता पर तो इतना लिखा गया है कि माँ का नाम लें तो शब्दों का एक खज़ाना हमारे सामने आ जाता है। यह ग़लत नहीं है माँ है ही ऐसी जिनके बारे में लिखना भगवान् को नमन करने जैसा है। बस इस सब में हम पिता के प्रेम को बताना ही भूल गए। परिवार की अहम कड़ी को समाज ने दरकिनार कर दिया। एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें परिवार के पुरुष ने अपना कहे जाने वाले अपने बच्चों को खो दिया था। पहले अपनी पत्नी को खो चुका नायक अपने बच्चों में अपना जीवन जी रहे थे, पर आघात तब लगता है जब नायक अपने बच्चों को खो देता है। इस सच को स्वीकार नहीं कर पाता कि वह अब अकेला है। लेकिन मानवता की मिसाल बने एक पड़ोसी दंपति उनके इस दुःख को कम तो नहीं कर पाते पर उनकी सहायता अपनेपन से करते है। समाज में यदि अमानवता है तो मानवता की भी कोई कमी नहीं है। यह कहानी इस बात का सटीक उदाहरण है। बेहद भावुक और संवेदनशील कहानी, बेहद सरल तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

इस कहानी को पढ़कर आँसू इसलिए नहीं आते कि कहानी भावुक है बल्कि इसलिए भी आते हैं कि लेखक आज के युग में मरती जा रही मानवता को सुन्दरता से ज़िंदा रखने में कामयाब हुआ है।

चौपड़े की चुड़ैलें कहानी संग्रह उस बगिया की तरह है जिसमें हर तरह के फूल में अपनी अलग ही खुश्बू है। पंकज सुबीर ने उस कस्तूरी को बाहर लाने का रास्ता दिखाया है, जो है तो हमारे ही भीतर, बस हम अनजान बन रहे थे। इस कहानी संग्रह ने हमें स्वयं से परिचय कराना चाहा है। आशा है कि हम इस कस्तूरी को न केवल महसूस करेंगे बल्कि इसकी ख़ुशबू से मानवीय मूल्यों को भी नया स्वरूप देंगे।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

नक़्क़ाशीदार केबिनेट

समीक्षक : मधूलिका श्रीवास्तव

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

मधूलिका श्रीवास्तव
ई- 101/17 शिवाजी नगर
भोपाल (मप्र) 462016
मोबाइल- 9425007686
ईमेल- shrivastavmadhulika@gmail.com

"नक़्क़ाशीदार केबिनेट" सुधा ओम ढींगरा का एक नारी संघर्ष पर आधारित उपन्यास है। उपन्यास की शुरूआत सितम्बर के महीने में तटीय प्रदेश में आई प्राकृतिक विपदा-बर्फ़ीले अंधड़, बारिश के चक्रवात और बवंडर तथा सौ मील रफ़्तार के प्रभंजन की गंभीर स्मृतियों से होती है। उन्होंने हेरीकेन और टॉरनेडो तूफ़ान से होने वाली तबाही और उससे संघर्ष का बहुत ही सटीक चित्रण किया है। देखा जाए तो यह संघर्ष मानों उपन्यास में आने वाली नारियों के संघर्ष का प्रतीक है। प्राकृतिक आपदा की भयावहता और आपदा प्रबंधन के स्थानीय प्रयासों का वर्णन करने के बाद सुधा ओम ढींगरा एक दूसरी कथा की ओर मुड़ती हैं। अमेरिका के डॉ. सम्पदा और डॉ. सार्थक तथा भारत की सोनल, उसका परिवार और मित्र, नक़्क़ाशीदार केबिनेट में दोनों की कथाएँ परस्पर जुड़ी हैं।

उनका यह उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' मूल रूप में पंजाब के एक अच्छे खाते-पीते परिवार और उस परिवेश के बनते-बिगड़ते रिश्तों की कहानी है, जिसमें नारी संघर्ष को बड़े प्रभावशाली ढंग से उकेरा है। सोनल और मीनल के संघर्ष की कहानी बहुत मर्मस्पर्शी है। इस संघर्ष में सोनल जैसी लड़की का साहस, धैर्य हमारे हृदय को छू लेता है। इसके साथ ही पंजाब से विदेश में लड़कियों के विवाह के चक्रव्यूह को लेखिका ने बड़ी सच्चाई से उतारा है। नशाखोरी, आतंकवाद और खालिस्तान जैसी समस्याओं और संवेदनाओं के मध्य गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह जैसे महान् गुरुओं के हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बलिदान की कहानी उपन्यास को रोचक बनाती है। ऑपरेशन ब्लू स्टार और तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का भी उपन्यास में वर्णन है।

तूफ़ान आने के पहले प्रकृति का रुदन लेखिका के प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम को दर्शाता है उनका कहना कि "प्रभंजन और चक्रवात का शोर दर्दनाक और पीड़ा से लिप्त था वह आवाज़ लोगों की नहीं थी बल्कि यह आवाज़ तो मानों वरुण और पवन का चक्रवात, सृष्टि को नष्ट करने से पहले का रुदन था, क्रंदन था। मानव तो बहुत ही क्रूर प्राणी है वह स्वयं ही अपनों को नष्ट करके भी गर्व से कह देता है कि यह विनाश मैंने किया है। किंतु प्रकृति तो मनुष्य से अधिक संवेदनशील है। मैंने उसे तबाही लाने से पहले तड़पते देखा है।" एक विध्वंसक नज़ारे का सटीक चित्रण है

मानव के मन में क्षणभंगुरता का एहसास किस तरह जन्म लेता है, इसका भी बहुत सुंदर वर्णन है कि कैसे पल में प्रकृति अपना तांडव दिखा जाती है और मानव को उसके जीवन का लेखा-जोखा याद दिला देती है। ऐसे ही प्रकृति और मानव से तालमेल बिठाते वर्णन हमारे मन में अनेक प्रश्न खड़े करते हैं कि हम इस क्षणभंगुर जीवन में किस तरह माया मोह में पड़े हैं, एक वैराग्य का भाव सा जगाता है।

डॉक्टर सार्थक और संपदा तूफ़ान से हुई तबाही को समेटने में लग जाते हैं और स्वयं की जोड़ी हुई पुरानी वस्तुओं के नष्ट होने पर दुखी होते हैं और वहीं एक नक़्क़ाशीदार केबिनेट जो कि रोज़-वुड से बना मध्ययुगीन कला का सुन्दर नमूना है, क्षतिग्रस्त होकर पानी में औंधा पड़ा होता है। उसमें वर्षों की यादें थीं, उसमें पानी भर जाता है उसे खोलते ही उसमें रखा सामान बाहर आ गिरता है जो कि बर्बाद हो चुका होता है बरसों के सहेजे दस्तावेज़ नष्ट हो चुके होते हैं! संपदा रो पड़ती है।

इंसानी प्रवृत्ति सच में निराली है भौतिक सुख और वस्तुएँ छिन जाने का उसे दुख होता है "जीवन", ईश्वर का वरदान, जो उसे मिला है उसकी कदर नहीं होती। मानव मन का सुंदर चित्रण है, जैसे किसी ने कहा भी है कि "मिल जाए तो मिट्टी है खो जाए तो सोना है" बिल्कुल यही एहसास लेखिका ने कराया है ! इसी ऊहापोह में एक काले रंग की डायरी मिलती है और यादों का पिटारा खुल जाता है, स्मृतियों में बसी कहानी वर्तमान से अतीत की ओर चली जाती है! और अतीत के पन्ने खुलने लगते हैं। एक भारतीय पंजाबी लड़की सोनल के जीवन का संघर्ष परत दर परत उस डायरी में लिखा होता है। वह संपदा के जीवन में अमेरिका की स्वयंसेवी

संस्था के माध्यम से संपर्क में आती है और उसके जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। जिसकी डायरी संपदा ने सहेजी तो थी पर कभी पढ़ी नहीं थी। और अब तूफ़ान से संघर्ष करते हुए संपदा के हाथ नारी के संघर्ष की अनोखी कहानी लगती है। उस संघर्ष को लेखिका ने अपनी कलम के जादू से जीवंत कर दिया है।

उस डायरी में सोनल ने अपने जीवन में आए उतार-चढ़ाव और पंजाब के बिगड़ते हालात, मानवीय संवेदनाएँ, क्रूरता और वहशीपन का सटीक चित्रण किया है। सोनल लिखती है कि मेरे पिता दो भाई थे जिनमें मंगल ऐयाश प्रवृति का था, जिसकी शादी वे यह सोच कर कर देते हैं कि शादी के बाद शायद वह सुधर जाए ! यह एक आम सोच है भले ही माँ-बाप उसे 20-30 साल तक अपने साथ रख कर बिगड़ने से रोक नहीं सके पर वह कल की आई लड़की से एक नाउम्मीद सी उम्मीद कैसे पाल लेते हैं कि शादी हुई नहीं कि पल में उनका बिगड़ा नवाब सुधर जाएगा... लड़की का जीवन तबाह कर देते हैं और लड़की के माँ-बाप गंगा नहा लेते हैं, पर यहाँ पासा पलट गया, मंगल की पत्नी मंगला अपने निकम्में आवारा और निखट्टू भाई को भी अपने साथ ले आती है और एक महाभारत रच देती है। वह नशे की आदी थी, घर पर ही मंगल और भाई के साथ शराब पीते हुए सोनल की बड़ी बहन मीनल उन्हें देख लेती है, तब बाऊजी उन्हें बेदखल कर देते हैं और उन्हें खेत में रहने जाना पड़ता है। तब उसने बदला लेने की धमकी दी थी और एक दिन खेतों में दुष्कर्म की हुई मीनल की लाश मिली।

उसके बाद समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और पुलिस की लापरवाही का विस्तृत वर्णन है कि किस तरह पुलिस, गुंडों और बदमाशों का साथ देती है यहाँ पर लेखिका ने पत्रकारों पर भी तंज़ कसा है कि आजकल के पत्रकार सत्ता के आगे झुके हुए हैं और वे वही लिखते हैं जो उनसे लिखवाया जाता है। यहाँ पैसा बोलता है। जो विरुद्ध खड़ा होता है उसे जान से हाथ धोना पड़ता है। भ्रष्ट तंत्र सुधा जी के प्रतिपाद्य में प्रमुख है। क्या पुलिस कर्मी, क्या पुलिस अधिकारी सब मंगल चाचा के यहाँ बिके हुए हैं। उनके अड्डे पर आकर शराब पीते हैं, नशा करते हैं, नाचते गाते हैं। इन्हें तो कोई भी ख़रीद सकता है। दुष्कर्म और हत्या की शिकार मीनल की लाश की तब तक सुध नहीं ली जाती, जब तक सारा गाँव धरना नहीं देता और मीनल के दोस्त पम्मी ने जब पंजाब के हर अख़बार में पुलिस की धज्जियाँ उड़ाई तब पुलिस हरकत में आई, कई लोग पकड़े गए। जिसमें मंगला का भाई और उसके दोस्त भी थे।

मीनल की हत्या से बाऊजी और पिताजी में बोलचाल बंद हो गई थी, तब बाऊ जी वकील को बुलाकर मंगल और मंगला के पिता को भी बंद करवा देते हैं। इस पर मंगला का पिता कहता है कि "मुझे सब पता है कि तुम्हारे उस गुप्त कमरे के बारे में जिसमें तुमने ख़ज़ाना दबा कर रखा है।"

सोनल के पूर्वज बहुत बड़े जमींदार और महाराजा रणजीत सिंह के तोषखाने की देखभाल करने वाले खानदान से होने के कारण अपार धन दौलत के मालिक थे। मंगल के ससुराल वालों की नज़र उस पैसे पर थी। मंगला के पिता की बात से बाऊ जी वगैरह बहुत डर जाते हैं क्योंकि उनके पूर्वजों ने तोषखाने की रक्षा के चलते काफी धन हड़प लिया था, जो बाद में डकैतों के हाथ भी लगा पर वह अकूत था। धीरे-धीरे तीसरी पीढ़ी आने तक भी अपार धन था। इस डर के कारण बाऊ जी ने वह धन सरकारी ख़ज़ाने में जमा करवा दिया था। जिसका पता किसी को नहीं था। मंगला ने मंगल के जेल जाने के बाद बदला लिया और सोनल के बाऊ जी, पिता और पम्मी की हत्या करवा दी।

यहाँ पर लेखिका ने उस समय के हालात का बड़ा गंभीर विश्लेषण किया है कि भारतीय गाँवों के बड़े ज़मींदारों का जीवन भले ही बाहर से बहुत आकर्षक लगे, पर अंदर से खानदानी झगड़ों, शराब, नशे, धोखाधड़ी ने उसे खोखला कर रखा है। यह एक कठोर सत्य है।

बाऊ जी, पिता जी और पम्मी की हत्या के बाद घर में सोनल अपनी माँ के साथ अकेली रह जाती है तब उसके नाना और मामा सुहानूभूति की सीढ़ी चढ़ कर उनके घर पर कब्ज़ा कर लेते हैं। पम्मी के मित्र सुक्खी ने सोनल की मदद करनी चाही पर नाना और मामा का शिकंजा बहुत कसा हुआ था। वह पुलिस में होने के बावजूद कुछ नहीं कर पाया और अमेरिका से आए एक डॉक्टर बलदेव से सोनल की शादी हो गई।

बलदेव का असली नाम सुलेमान था। वह शादी के नाम पर युवतियों को विदेश लाता था और उन्हें वेश्यावृति में धकेल अगली शादी में जुट जाता था। नाना और मामा के षड्यंत्रों और दुराभिसंधियों का शिकार होकर सोनल शादी के जाल में फँस बलदेव के साथ अमेरिका पहुँच जाती है।

यहीं से सोनल के जीवन में संघर्ष की बाढ़ आ गई। डॉ. बलदेव सोनल के मामा से मिला हुआ था वह तो सोनल को बेच कर पैसा कमाना चाहता था और उसकी जायदाद चाहता था, पर सोनल ने पहली रात ही अपने पति और उसके भाइयों की बातें सुन लीं और वह मौका देखकर भाग निकलती है। वह अंधाधुंध भागते जहाँ पहुँचती है वह एक बुज़ुर्ग अमेरिकी दंपति का घर होता है। वे उसे पनाह देते हैं। यहाँ पर लेखिका ने भारतीय संस्कृति और अमेरिकन संस्कृति के अंतर का बहुत सुंदर खाका खींचा है। सोनल ने लिखा है कि एक बूढ़े दंपति को अकेले आत्मनिर्भर आत्म सम्मान के साथ जीते हुए देखना अजीब लगा, पूछने पर वे कहने लगे, "जब तक हमारा शरीर साथ देता है तो बच्चों को क्यों परेशान करें फिर तो उन्हें ही देखना है।" यह भारतीय संस्कृति से बिल्कुल भिन्न था, अपेक्षाओं से परे बुज़ुर्गों की सोच का सांस्कृतिक अंतर था तो दूसरा अंतर कि दोनों दंपति मिलकर हर काम करते हैं जो कि भारत में आज भी कुछ अजूबा सा ही है। उन अमेरिकन दंपति के साथ ही वहाँ के लोगों के सेवा भाव से अभिभूत सोनल कहती है, "भारत में मेरे अपने नाते रिश्तेदार पड़ोसी गाँव वाले ताने-तिश्नों की भट्टी जलाकर सब उस पर अपने हाथ सेंक रहे थे और मैं अमेरिका में भय से पल-पल की मौत मर रही थी ! कैसी होती है यह मौत , इसे

सिर्फ तो भुक्तभोगी ही जान सकता है मैंने जी है ऐसी मौत !"

लेखिका डायरी पढ़ते-पढ़ते भी तूफ़ान की विभीषिका को भी नहीं भूलतीं। ऐसी विध्वंसक त्रासदी में डॉक्टर संपदा के घर पर लूट उसे ही नहीं हमें भी आश्चर्यचकित कर देती है। अमेरिका जैसे सुसमृद्ध, सर्वश्रेष्ठ, शिष्ट व विकसित देश में भी लूटपाट को स्वीकारना मुश्किल लग रहा था। प्रकृति के आक्रोश के बाद भी मानव के मन में घृणित विचारधारा का उत्पन्न होना लेखिका के मन के साथ ही हमारे मन को भी उधेड़ रहा था , कि हमारा तो ग़रीब देश है जीवन की आपाधापी में लूट खसूट सामान्य बात है पर अमेरिका ?

इस घटना का उल्लेख करते हुए लेखिका ने उस भयंकर त्रासदी के समय भी मनुष्य की प्रवृत्ति का मूल्याँकन किया है। जो कि लेखिका की गहरी मानवीय संवेदना को उजागर करता है।

डॉक्टर बलदेव के बारे में भारत में डीएसपी सुखवंत (सुक्खी) ने काफी छानबीन की तब पता चला कि वह चालबाज़ था तथा सब कुछ जाली था। सोनल और उसकी शादी का कोई रिकॉर्ड नहीं था। वीज़ा के लिए जो प्रमाण पत्र दिए गए थे, वे सब बाद में रिश्वत देकर मिटा दिए गए थे। पर एक फ़ोटोग्राफ़र के पास एक फ़ोटो मिला तब सुक्खी ने गाँव वालों को सब बताया और सोनल के नाना की भी पोल खोल दी और उनके षड्यंत्र व सोनल को बलदेव के हाथों बेच देने की बात भी बताई, तब गाँव वालों ने उसके ननिहाल वालों को खदेड़ दिया और वे जान बचा कर ग़ायब हो गए। इसके बाद गाँव वालों की मदद से सुक्खी ने काफी सबूत इकट्ठे किए।

उस अमेरिकन दंपति और स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद से सोनल डॉक्टर बलदेव को पकड़वाने में कटिबद्ध हो जाती है। भारत से सुक्खी भी उसकी मदद के लिए अमेरिका आ जाता है। इधर अमेरिका में भी बलदेव की खोज में पुलिस का पूरा महकमा लगा था, पर वह बहुत चालाक था। उसी छानबीन में उन्हें सोनल का ग्रीन कार्ड मिल गया और पुलिस जो थोड़ी बहुत सुस्त पड़ी थी, पुन: हरकत में आ गई। सुक्खी भी भारतीय पुलिस की हैसियत से उनसे जुड़ गया था पर असफलता ही हाथ लगती रही।

लगातार संघर्ष के बाद भी हल कुछ नहीं निकलता। सुक्खी भारत में इस्तीफा दे कर सोनल के साथ कॉलेज में पढ़ाई करने लगता है। पर सोनल की लगन सच्ची थी कि बलदेव को पकड़वाना ही है। कॉलेज जाते हुए सोनल और सुक्खी को लगा कि कोई लगातार उनका पीछा कर रहा है, इसकी सूचना उन्होंने पुलिस को दी। उधर डनीस आंटी भी टाउनहाउस के आसपास टहलते हुए आरोपी लड़कों में से एक को पहचान चुकी थी। पुलिस की सक्रियता और चतुराई से आख़िर बलदेव और उसका गिरोह पकड़ा गया। वह इसी तरह पंजाब से भोली-भाली लड़कियों विदेशों में बेचता था। वह सोनल के नाना और मामा के हीरों के लालच में इतनी समझदार, पढ़ी-लिखी और मज़बूत इरादों वाली लड़की के चक्कर में पहली बार आया था और पकड़ा गया।

उसके बाद सुक्खी और सोनल शादी करके पेरिस जाते हैं। हिंदुस्तान में भी वे स्कूल कॉलेज आदि खोलकर जीवन की एक सुखद राह पर चल पड़ते हैं। और इस तरह एक नारी के जीवन के उतार-चढ़ाव और भारत और अमेरिका के बीच का सांस्कृतिक, सामाजिक और प्रशासनिक अंतर को दर्शाती एक मार्मिक कहानी का सुखद अंत होता है...।

लेखिका ने बड़े ही सहज तरीके से ग्राम्य जीवन का रहन-सहन और विदेश के रहन-सहन दोनों की ही यहाँ चर्चा की है। अपनों से बिछुड़ने, देश, माँ-बाप से बिछुड़ने की पीड़ा और पल-पल सालने वाला अकेलापन विशेषत: चित्रित है। प्रवासी जीवन का अकेलापन घर-परिवार, नौकरी-समाजसेवा में व्यस्त सम्पदा भी महसूस कर रही है और अपनी पढ़ाई तथा षड्यंत्रकारी बलदेव को पुलिस के हवाले करने का लक्ष्य लेकर जीने वाली सोनल भी। उपन्यास के अंत में केबिनेट की दरार से सम्पदा को वर्षों पुराना अपना एक अंतर्देशीय पत्र मिलता है, जिसे माँ को लिखा तो गया था, पर कभी पोस्ट नहीं किया गया। पराये देश का सन्नाटा जो उससे झेला नहीं जाता, का मार्मिक चित्रण है ! जहाँ न मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारों की पावन ध्वनियाँ है, न अड़ोसी-पड़ोसी की आत्मीयता, न बच्चों की चहल-पहल। एक अजीब सा सूनापन लेखिका के हृदय को सदैव कचोटता है

इस उपन्यास में स्त्री जीवन का संघर्ष जितना विकट है, सशक्तिकरण की चाह उतनी ही प्रबल है। यह संघर्ष मीनल की बलि लेता है, जबकि सोनल अपने साहस और धैर्य से पराये देश में नितांत अकेली होने पर भी हिम्मत नहीं हारती, न बलदेव के चक्रव्यूह में धँसती है, न ही भारत वापिस आती है और न सुक्खी से शादी कर आराम से जीवन व्यतीत करती है। वह एक ओर उच्चतम शिक्षा लेती है तो दूसरी ओर बलदेव का भंडाफोड़ कर उसे हिरासत में पहुँचा, उसके गैंग का पर्दाफ़ाश कर न जाने कितनी युवतियों की इस मानव तस्करी से रक्षा करती है। पेरिस में नौकरी करते हुए भी वह भारतीय युवतियों के शोषण के विरुद्ध अपना अभियान ज़िंदा रखती है।

उपन्यास की भाषा में पंजाबी और अँग्रेज़ी का दोनों का समावेश है। यहाँ पाश की काव्यात्मक पंक्तियाँ भी हैं और बौद्धिक चिंतन भी- "जीवन का युद्ध हो या देशों का युद्ध, राजनीति की शतरंज हो या धर्म का मैदान, दो ही प्रवृतियाँ आमने-सामने होती हैं, कौरव-पांडव, देवता-असुर। विदुर प्रवृति तो इन दो पाटों की चक्की में पीस दी जाती है। भूमंडलीकरण से पूर्व भी पूरे विश्व में मानवी जातियाँ, प्रजातियाँ दो ही थी-अच्छी या बुरी।" यह चिंतन सुधा जी के गद्य को गरिमा और गहराई देता है, धार और आकर्षण देता है, पाठक को बाँधने में जादुई करिश्मा देता है और उत्सुकता को जगाते रखता है।

अंत में मैं यही कहूँगी कि सुधा जी ने भारत और अमेरिका जैसे विपरीत मानसिकता वाले देशों का बड़ी गहराई से अध्ययन किया है और उसका तुलनात्मक विश्लेषण बहुत सटीक किया है। उन्हें एक बहुत बढ़िया उपन्यास के लिए बहुत-बहुत साधुवाद व शुभकामनाएँ।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

अम्बपाली - एक उत्तरगाथा

समीक्षक : अभिषेक मुखर्जी
लेखक : गीताश्री
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

अभिषेक मुखर्जी
मोबाइल- 8902226567

"आप तो वैशाली के इतिहास में सदा के लिए दर्ज हो चुकी हैं आर्या, जिसके घर तथागत भोजन करने आए... आपने एक गणतंत्र को अपनी शर्तों पर चलाया। आप तो हम सबसे ज़्यादा सशक्त, स्वतंत्र, और मुक्त स्त्री थीं। आप वहाँ रहकर भी मुक्त हो सकती थीं, फिर भी आपने संघ की शरण ली, कोई बात तो होगी।"

हाँ, कोई बात तो अवश्य होगी जिसके कारण वैशाली की नगरवधू, अप्रतिम सौंदर्य की स्वामिनी, अक्षुण्ण यौवना, जनपद कल्याणी अम्बपाली ने बौद्धसंघ में प्रवेश किया, प्रव्रज्या ली और थेरी आम्रपाली बनकर ही शेष जीवन बिताया। इन सब कारणों को बहुत अच्छे से दर्शाया है गीताश्री ने अपने उपन्यास 'अम्बपाली- एक उत्तरगाथा' में। यह एक अत्यंत सशक्त बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास है... ऐतिहासिक उपन्यास होते हुए भी इसका कथानक, इसकी विषय वस्तु और इसमें वर्णित घटनाएँ वर्तमान परिवेश को देखते हुए बहुत ही प्रासंगिक है।

अम्बपाली पर कई पुस्तकें लिखी जा चुकी है... मैंने हिन्दी (वैशाली की नगरवधू) और बाँग्ला दोनों भाषाओं में ही आम्रपाली के बारे में पढ़ा है, पर उन सभी पुस्तकों में आम्रपाली की कथा का समापन उनकी प्रव्रज्या लेने और संघप्रवेश के साथ ही हो जाता है, जैसे मानों अम्बा की कथा वहीं थम सी गई हो, मानों उसके पास अब और कुछ कहने, सोचने या करने को ही नहीं है। गीताश्री ने पहली बार थेरी आम्रपाली, भिक्षुणी अम्बपाली की वर्णना की है, अम्बा की उत्तरगाथा लिखी है... एक बौद्ध थेरी के रूप में अम्बा क्या सोचती है, अपने अतीत, अपने भविष्य के बारे में, अपने देश वैशाली के बारे में, अपने अतीत के प्रेमप्रसंगों पर, साथ ही अपनी जैसी दूसरी थेरियों के बारे में।

अम्बपाली की उत्तरगाथा शायद ही कहीं लिखी गई हो, पर एक प्रश्न मन में सदैव जागता था आम्रपाली के विषय में, कि क्या संघ में प्रवेश करते ही वह अपने अतीत से पूर्ण रूप से कट गई, एक झटके में ही विलग हो गई अपने विलास बहुल जीवन से? क्या चीवर धारण करते ही उस लास्यमयी, लावण्यमयी स्त्री का मन पूर्ण रूप से बदल गया ? क्या बिम्बिसार का बाहुपाश, उसकी एक झलक पाने को नागरिकों का वह उन्माद... क्या कभी न स्मरण हुआ होगा उसे ?

लेखिका ने बहुत अच्छे से थेरी आम्रपाली की मनोदशा को दर्शाया है... केवल अम्बा की ही नहीं वरन दूसरी थेरियों की व्यथा को भी सामने रखा है।

इस पुस्तक में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अध्याय है - संघ में स्त्री प्रवेश को लेकर बुद्ध और अम्बपाली के मध्य हुए तर्क का।

लेखिका ने इस अध्याय में सच में कमाल कर दिया है, जब वह अम्बा से कहलवाती हैं- "जब आप वर्णभेद नहीं मानते, सबको एक सामान मानते हैं, कोई जन्म से नीच नहीं होता है, तो फिर आप नारियों का निषेध कैसे कर सकते हैं ? स्त्रियाँ भी मनुष्य योनि में पैदा होती हैं, फिर आपका धर्म सनातन धर्म से कैसे अलग, जहाँ स्त्रियों और शूद्रों को वेद पढ़ने की मनाही है, क्यों, भगवन् क्यों ? जाति की तरह लिंग भी किसी व्यक्ति द्वारा दु:ख से छुटकारा पाने के लक्ष्य में बाधा नहीं हो सकता... आप इस पर विचार क्यों नहीं करते ? "

सच में बुद्ध को आम्रपाली के समक्ष हार माननी पड़ी थी। हाँ, यह बात अवश्य है कि उन्होंने अनमने ही इस प्रस्ताव को स्वीकार किया था , वह भी अपने प्रिय शिष्य आनंद के हठ करने पर।

परन्तु अंतत: जीत तो अम्बपाली की ही हुई थी। क्योंकि उसने न केवल बौद्ध संघ के द्वार अपने लिए खुलवाए थे अपितु उस समय की सभी मुक्तिकामी स्त्रियों का मार्ग सरल कर दिया था, बुद्ध के परिवार की स्त्रियों का भी।

वृद्धा राजनर्तकी, पुष्पगंधा अम्बपाली से कहती हैं, "भगवान् बुद्ध तो वैशाली में पधार चुके हैं अम्बा, किन्तु संघ में भिक्षुणियों के लिए प्रवेश की अनुमति नहीं है। अधिकांश स्त्रियाँ, उनके परिवार की भी सर पटककर रह गईं। तुम कुछ कर सको अम्बा तो उठो, जाओ... उन्हें पराजित करने का काल आ गया है।हमें मुक्ति चाहिए... "

इन पंक्तियों द्वारा लेखिका ने अम्बपाली के असाधारण व्यक्तित्व, क्षमता और समाज में ख़ासकर स्त्रियों में उनकी ग्रहण योग्यता को बहुत अच्छे से दर्शाया है। उन स्त्रियों का यह विश्वास है कि देवी अम्बपाली ही भगवान् बुद्ध को तर्क में परास्त कर सकती हैं।

वह आम्रपाली ही थी जिसने बौद्ध संघ के प्रवेश द्वार को अपनी जैसी स्त्रियों के लिए उन्मुक्त करवाया था। इस प्रसंग पर यदि विचार करें तो मैं आम्रपाली को भी बुद्ध के समकक्ष मानता हूँ। गौतम से बुद्ध बनने की यात्रा पूर्ण कर, उन्होंने न केवल स्वयं को मुक्त व आलोकित किया वरन् समस्त मानवजाति के जीवन को प्रकाशित किया। अम्बपाली ने भी उसी प्रकार संघ के द्वार को उन्मुक्त करवाकर न केवल अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया, वरन् उस समय की समस्त स्त्री जाति के लिए भी मुक्ति का पथ अनवरुद्ध किया।

उपन्यास में वैशाली गणराज्य की शासन व्यवस्था के बारे में भी विस्तार से लिखा गया है। राजा की वास्तविक क्षमता, गण व्यवस्था व संचालन, नागरिकों की स्थिति... इन सब विषयों पर सटीक जानकारी मिलती है। यह गाथा केवल अम्बपाली की ही नहीं अपितु उस कालखंड की कथा भी है।

वैशाली गणराज्य ने तो एक किशोरी की असाधारण सुंदरता से मुग्ध हो उसे सर्वजनभोग्या, सार्वजनिक बना दिया था, नगरवधू बना दी गई थी वह लड़की, परन्तु उसने अपनी मातृभूमि के लिए अपने लौकिक प्रेम को न्योछावर कर दिया। वह चाहती तो अनायास ही बिम्बिसार के साथ चल सकती थी, संभवत: वह मगध की अधीश्वरी बन जाती, वैशाली बिम्बिसार को रोक नहीं पाता, परंतु उसने ऐसा नहीं किया। अपनी जन्मभूमि की पराधीनता उसे स्वीकार नहीं थी, भीषण रक्तपात भी उसे काम्य नहीं था। अत: उसने अपने प्रेम ही भुला दिया। बिम्बिसार के अंश को, उसके पुत्र को अवश्य मगध पहुँचा दिया... अपने प्रत्येक कर्त्तव्य का पालन किया पर वैशाली की गरिमा को भूलुंठित न होने दिया

उसने अपने प्रेमी, मगध सम्राट बिम्बिसार से कहा- "वैशाली को पता है की मगध उसका शत्रु राष्ट्र है, यह संबंध किसी को स्वीकार्य न होगा। न मुझे, न वैशाली को... यहाँ गृहयुद्ध छिड़ जाएग। मैं नियमों से बंधी हूँ, विवश हूँ... आप लौट जाएँ मगधपति। वैशाली पर आधिपत्य ज़माने का आपका स्वप्न अधूरा रह जाएगा...।"

बिम्बिसार को तो लौटा दिया परन्तु उसके बीज को धारण कर, उसे भूमिष्ट कर, पल्लवित कर बिम्बिसार को सौंप भी दिया।

लोकनिंदा की परवाह न करते हुए, उपन्यास की अम्बपाली कहती है, "हत्यारी होने से अच्छा है कुँवारी माँ होने का कलंक ढोना। सामाजिक नियमों से हृदय के संबंध संचालित नहीं होते... कुँवारापन सामाजिक मान्यता है। तो मैं कहाँ रही कुँवारी... बिना प्रेम मैंने शरीर सुख लिया और दिया है... ये अलग बात है कि लोग मेरी पसंद के रहे.... चयन मेरा रहा। मैं अपने शरीर की स्वामिनी हूँ। लेकिन शरीर के अलावा मैं एक हृदय भी तो हूँ।"

अम्बपाली ने मगध नरेश अजातशत्रु की सेना को वैशाली को तहस-नहस करते देखा तो स्वयं भी युद्धभूमि पर उतर पड़ी और अंतिम चेष्टा की "अपनी आँखों के सामने वह अपनी प्रिय जन्मभूमि को शत्रुओं को विजित नहीं करने देगी। आवश्यकता पड़ने पर युद्धभूमि में स्वयं तलवार लेकर उतरेगी। अम्बपाली युद्ध की पोशाक पहनकर उनके बीच उनका उत्साह बढ़ाने आई... अम्बा ने इतना ललकारा और वैशाली-पुत्री चलना का हवाला दिया, जिसे तड़प-तड़प कर मरने के लिए उसके पुत्रक अजातशत्रु ने छोड़ दिया था। फिर भी वृज्जियों का रक्त नहीं खौला।"

उपन्यास में वर्णित बौद्ध भिक्षुणियों की मार्मिक कहानियाँ (थेरी गाथाएँ), इस पुस्तक का एक बहुत ही मज़बूत पक्ष है। अम्बपाली अन्य थेरियों से आग्रह करती हैं कि वे सब अपनी अपनी जीवनियाँ लिखें, अपने अतीत को भाषा दें, वाणी दें और भिक्षुणी संघ में आने का कारण स्पष्ट करें। "अपनी कथा ख़ुद कहो थेरियों ! जो भुगता है उस सबको लिपिबद्ध कर डालो। स्त्रियों को इतिहास हमेशा ओझल रखता है। संघ में वैसे भी हमारे अधिकार कम हैं... भिक्षुओं के प्रति नियम उतने कड़े नहीं है... हम स्त्रियों से ख़तरा हर युग में , हर समाज को, हर धर्म को रहा है।"

उपन्यास के अंतिम दो अध्याय ('स्वप्न अनुष्ठान' और 'बुद्ध का स्मृति स्थल') बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए बहुत ही प्रासंगिक है। इन दो अध्यायों में लेखिका ने न केवल आम्रपाली के भिक्षुणी जीवन के स्वप्नों को, उनकी इच्छाओं को बहुत विस्तार और सुंदरता से दर्शाया है बल्कि थेरी आम्रपाली के वैशाली आगमन से शासक वर्ग में आए बदलाव को, उनके द्वारा रचे षड्यंत्रों और दुरभिसंधियों को भी बहुत अच्छे से दर्शाया है।

गणतंत्र का नष्ट होना और साम्राज्यवाद की जड़ें मज़बूत होना एक राष्ट्र के लिए कितना घातक हो सकता है, यह बहुत अच्छे से दिखाया गया है।

यह एक नवीन प्रयोग भी है, क्योंकि शायद ही किसी साहित्यकार ने भिक्षुणी आम्रपाली की इच्छा अभिलाषा व स्वप्नों के बारे में सोचा होगा। आम्रपाली को केवल यौवन के उल्लास और उन्माद का पर्याय ही माना गया है, जहाँ यौवन ढलान पर आया वहीं उनकी कहानी का भी अंत कर दिया जाता- एक चीवर धारी भिक्षुणी के रूप में। किन्तु उस वीतयौवना चीवरधारिणी के भी कुछ सपने हो सकते हैं, अपने, देश और जाति के भविष्य के

लिए कुछ परिकल्पनाएँ हो सकती हैं, यह शायद ही किसी साहित्यकार ने इतने विस्तार से सोचा होगा। लेखिका के इस नए प्रयोग के लिए उनको बहुत साधुवाद।

इन अध्यायों में यह भी प्रकट होता है कि अम्बपाली भले ही अब भिक्षुणी हो गई हों, सांसारिक मोह माया से मुक्त हो गई हों, परंतु उन्होंने अपने देश को नहीं भुलाया, अपनी माटी का ऋण वह चुकाना चाहती थीं... थेरी आम्रपाली अपनी वैशाली को कभी न भूल पाई, और न ही वैशाली के जनसाधारण से मुँह फेर पायी। जनकल्याण और सद्धर्म प्रसार हेतु वह तथागत के भस्मावशेष को लेकर वैशाली में एक स्तूप बनवाना चाहती थीं। "वैशाली भगवान् की अतिप्रिय नगरी थी... मेरी इच्छा है की स्मृति को सदा के लिए सहेज लिया जाए। ये हम वैशालिकों का दायित्व भी है। मेरी बात सभी नागरिकों तक पहुँचे। यथासंभव नागरिक सहयोग करें। जन सहयोग के बिना स्वप्न अनुष्ठान पूरा नहीं हो सकता।"

उधर आम्रपाली के वैशाली आगमन से शासक वर्षकार चिंतित हो उठता है और अपनी राजनीतिक चालें चलना आरम्भ करता है। वह वैशाली का नाम परिवर्तन करने का प्रस्ताव रखता है। वैशाली अब मगधपुरा के नाम से जानी जाएगी। यह प्रसंग सच में आज भी कितना प्रासंगिक है और इसी प्रसंग पर लेखिका ने भिक्षुणी और संसारत्यागिनी थेरी आम्रपाली से कहलवाया है "साम्राज्य विस्तार की आकांक्षी राजसत्ताएँ अपनी अक्षमताओं से नागरिकों का ध्यान हटाने के लिए ऐसे बेढब निर्णय लेती हैं। नागरिकों के उत्थान से इसका कोई सरोकार नहीं। नागरिकों का दायित्व होता है ऐसे षड्यंत्रों की पहचान करना... अहिंसक मार्ग पर चलकर हम इस निर्णय को अमान्य कर सकते हैं। आप सब नागरिकों तक पहुँचा दे कि वैशाली हमारे हृदय में बसेगी...।"

कौन कहेगा कि यह ढाई हज़ार वर्ष पुरानी आम्रपाली है ? यह आम्रपाली तो आज भी बहुत प्रासंगिक है। ऐसी वाणी, ऐसी प्रतिभा की क्या आज भी आवश्यकता नहीं है ?

आम्रपाली आचार्य दिव्य की सहायता से तथागत के भस्मावशेष प्राप्त करती हैं और जनसहयोग से स्तूप का कार्य सुचारू रूप से चल पड़ता है। उपन्यास का अंत बेहद इंगितपूर्ण है। अम्बपाली का बाल्य सखा, उसका प्रथम प्रेम, मदन कुमार ने उसकी सहायता की थी स्तूप के लिए उपयुक्त और सटीक स्थान चयन करने में। भिक्षाटन पर निकली थेरियाँ जब मदन कुमार के कुटी पर पहुँची तो 'झोंपड़े की काष्ठ -किवाड़ लगभग अधखुली पड़ी थी। अंदर से अर्गला नहीं लगी हुई थी।' पुकारने पर भी कोई बाहर नहीं आया... किवाड़ के पास की मिट्टी खरोंची हुई थी। ऐसा लगता था किसी ने खरोंची थी। उसके पास पैरों के घसीटने के निशाँ थे। मानों किसी को यहाँ से घसीटकर ले जाया गया हो।

अर्थात् उस वृद्ध मदन कुमार को आम्रपाली की सहायता करने का बहुत बड़ा दण्ड दिया गया था।

यह घटना तो आज भी बहुत प्रासंगिक है।

आम्रपाली, काँपते हाथों से अपने बचपन के सखा की आख़िरी निशानी -एक पुरानी बाँसुरी, उठा लेती है और अपने भिक्षा पात्र के ऊपर रख , कुटी से बाहर निकल जाती है।

अम्बपाली को वैशाली गणराज्य ने नगरवधू तो बना दिया था परन्तु वैशाली की वह जनपदकल्याणी अपनी शर्तों पर ही आजीवन चलती रहीं। भरी सभा में उसने घोषणा की थी "सर्वप्रथम मैं चाहती हूँ कि वैशाली का सप्तखण्डीय पुराना महल और मेरे भार के जितना स्वर्ण मुझे दिया जाए। मेरी राजकीय मर्यादा बनी रहे। मेरे साथ किसी प्रकार का राजकीय या सामंती हस्तक्षेप नहीं चलेगा। अपना मोल मैं स्वयं निर्धारित करूँगी। मैं अपने इच्छित पुरुष से प्रेम करने को स्वतंत्र रहूँगी। मैं प्रत्येक पूर्णिमा की रात को नृत्य प्रदर्शन करूँगी जिसमें वैशाली के सभी निवासी उपस्थित हो सकेंगे।"

अर्थात् अम्बपाली सार्वजनिक होते हुए भी जनसाधारण की पहुँच से बहुत दूर थी। इस अध्याय को भी लेखिका ने बहुत अच्छे से प्रस्तुत किया है।

वैशाली की जनपदकल्याणी की मनोदशा को दर्शाते हुए लेखिका ने कुछ असाधारण सुन्दर पंक्तियाँ लिखी हैं - "जब-जब मन का साथी मिला, प्रेम किया तभी सर्वस्व न्योछावर किया। प्रेम हर अनैतिक संबंध को नैतिक बना देता है। प्रेम न हो तो वैवाहिक संबंध भी अनैतिक हो सकता है। समाज भले ही इस सत्य को मानने से इंकार कर दे।"

क्या आज का समाज भी इस सत्य को मान पाएगा ? यह पंक्तियाँ ढाई हज़ार वर्ष पहले की आम्रपाली की ही नहीं हैं, आज के युग के साधारण व्यक्ति की भी हो सकती हैं।

अपने उत्तराधिकारी के चयन के समय नगरवधू अम्बपाली ने सर्वगुणसम्पन्ना दासी पुत्री, काम्या, को ही अपना उत्तराधिकारी माना क्योंकि वह सामंतों के कुल गौरव और प्रतिष्ठा पर प्रहार करना चाहती थी जिन्होंने उसे सार्वजनिक बनाया और वह यह भी चाहती थी कि सामंत वर्ग जाति और धर्म के ऊपर कला को महत्त्व दें। "सामंतों... तुमने मुझे चुना था... तुम्हारे लिए मैं चुनती हूँ... नष्ट कर दूँगी कुल का घमण्ड... आर्य पुत्रों, लड़ मरोगे आपस में और एक दिवस राज करेंगी दासियाँ...।"

उपन्यास की भाषा बहुत ही प्रांजल है, उस समयकाल के बिल्कुल उपयुक्त... तत्सम शब्दों का आधिक्य इस रचना को और भी पठनीय बनाता है। केवल एक आध स्थान पर मुझे थोड़ा अटपटा लगा। हालाँकि मैं न तो भाषाविद हूँ और न ही साहित्यविद् (शब्द 'अपील' , पृष्ठ 93).... पर इससे पुस्तक के रचनात्मक सौंदर्य पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

उपन्यास अत्यंत पठनीय और रोचक है और कहानी ऐतिहासिक होते हुए भी आज की परिस्थिति में बहुत ही प्रासंगिक है। पाठक समझ पाएँगे कि लेखिका ने गहन अध्ययन किया है इसे लिखने में। लेखिका ने पुस्तक की भूमिका भी बहुत रोचक बनाई है.... अम्बारा गाँव एवं आम्रपाली पंचायत का विवरण पढ़ कर बहुत अच्छा लगा। उन्होंने अपनी कुलदेवी 'जीत परमेश्वरी' का भी उल्लेख किया है जो वास्तव में बौद्ध देवी मानी जाती हैं। इस उपन्यास को पढ़ कर बहुत जानकारी भी मिली।

000

इन दिनों जो मैंने पढ़ा

इन दिनों जो मैंने पढ़ा

काला सोना, हमेशा देर कर देता हूँ मैं, उमेदा- एक योद्धा नर्तकी

समीक्षक : सुधा ओम ढींगरा

लेखक : रेनू यादव, पंकज सुबीर, आकाश माथुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, राजपाल एण्ड संस, शिवना प्रकाशन

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

काला सोना
रेनू यादव

रेनू यादव का कहानी संग्रह 'काला सोना' पढ़ा। नरेन्द्र पुण्डरीक ने नई धार में लिखा है- समकालीन हिन्दी कहानी को जिन युवा रचनाकारों ने नई धार देकर अपनी पहचान दर्ज कराई है, उनमें एक नाम रेनू यादव का भी है। कहानियों में रेनू यादव के पात्रों का जीवन आप से आप धमा-चौकड़ी करता, उतरता हुआ दिखाई देता है। कहानियों में पात्रों का बेलाग कहन पाठकों को अंत तक बाँधे रहता है।

कहानी संग्रह 'काला सोना'की सभी कहानियाँ ग्रामीण परिवेश में रची-बसी, वहीं की धूल-मिट्टी में लोटती, जड़ों से जुड़ीं और आँचलिक भाषा में बुनी-गुथी गई हैं। लेखिका ने समर्पण में लिखा है-"अपनी जन्मभूमि तिलौली गाँव को जो छूट कर भी नहीं छूटता, मुझमें अब भी साँसें लेता है..." सच में सभी कहानियों के पात्र ग्रामीण वातावरण में साँस लेते, गाँव की उबड़-खाबड़ धरती पर पाँव धरते, अन्धविश्वास, रूढ़ियों, परम्पराओं, ढकोसलों, रीति-रिवाज़ों, पाखंड, जादू-टोना और अज्ञानता से लड़ते तथा जूझते पाठक को अपने साथ बहा ले जाते हैं। कई तरह के शोषण की शिकार महिला पात्र जब कहानी के अंत में समाज की सोच और समझ को एक नई धारा की ओर मोड़ने के प्रयास में चट्टान-सी खड़ी होती हैं तो चमत्कृत कर देती हैं।

देह व्यापार, समलैंगिकता, अम्लघात, महामारी, नौटंकी आदि भिन्न-भिन्न तरह के कथानक लिए 'काला सोना' में बारह कहानियाँ हैं।

नरेन्द्र पुण्डरीक लिखते हैं-'वसुधा, चऊकवँ रौड़, टोनहिन, अमरपाली, खुखड़ी, मुँहझौंसी यह कहानी के शीर्षक नहीं हैं, ये छटपटाती हुई स्त्रियाँ हैं। जिनमें उनकी पीड़ा और संघर्ष के स्वर सुनाई देते हैं।' पीड़ा और दर्द तो पूरे संग्रह में बिखरा पड़ा है। आँचलिक भाषा की भरमार और कहानियाँ पढ़ते हुए पात्रों की वेदना से आँखों में उतरी नमी के कारण मैंने रुक-रुक कर कहानियाँ पढ़ीं। मेरे जैसे कई पाठक, जिनकी उस भाषा से पहचान और परिचय कम है, इस संग्रह को एक ही बैठक में नहीं पढ़ पाएँगे। परिवेश वर्णन और लोक भाषा के शब्दों के लिए शब्दकोश की ज़रूरत पड़ती है। हाँ, जो पाठक उस ग्रामीण परिवेश और भाषा के करीब हैं, बहुत रुचि से पढ़ेंगे।

नचनिया, काला सोना, वसुधा, मुखाग्नि, छोछक, कोपभवन, टोनहिन, अमरपाली, चऊकवँ रौड़, डर, खुखड़ी और मुँहझौंसी बारह कहानियाँ हैं इस संग्रह में।

कहानियों में विवरण और चित्रण आँखों के सामने पूरा दृश्य उभार देते हैं। 'डर' कहानी में

महामारी से उत्पन्न डर को इतना यथार्थपरक चित्रित किया गया है, कि पात्र सुधीर के सपने सचमुच डराने लगते हैं। नचनिया कहानी में नाचने वालियों की नौटंकी का दृश्य बख़ूबी उभरा है। एक हिस्से का वर्णन देखें-

सोनपरी उसकी बाँहों में कसाव से पूरी तरह छटपटाने लगी। जल्दी ही रेगिस्तान में आँसुओं की बारिश से मन और भी छनछना गया। दोनों के आँसू अपनी-अपनी बेबसी में एक होकर निकलने लगे। आग की बरसात दोनों तरफ़ थी; लेकिन अपने-अपने मौसम के लिए। शहरी बाबू ने बेक़ाबू होते हुए फिर से दोहराया, "मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूँ सोनपरी..." 'सोनपरी... नाम ने राजन को झटका दिया और वह एकाएक शहरी बाबू से अलग हो गया। शहरी बाबू चौंक गया और उसके आँसू पोंछने के लिए आगे बढ़ा पर राजन ने हाथ से रुकने का इशारा करते हुए अपने आँसू ख़ुद पोंछे। अपने सीने से आँचल हटाकर ब्लाउज़ से सॉफ़्ट गेंद निकाल उसके हाथ में थमा दी। शहरी बाबू बिलकुल भौचक्क होकर जड़ बना अपनी सोनपरी को देखता रह गया। आँसुओं से ही मेकअप के धुलने के बाद सोनपरी के चेहरे से कोई मर्द जागता हुआ सा लगा। अब विवशता शहरी बाबू की आँखों में थी औरउनके क़दम स्वत: ही पीछे की ओर हटने लगे...

इस पूरी कहानी में गाँव की नचनियों का जो चित्र उभारा है, देखते बनता है।

लेखिका की लोक शब्दों पर बड़ी गहरी पकड़ है। मुझे इस संग्रह की महिला पात्र बहुत पसंद आईं। गाँव की हैं, सरल, सादा हैं। पीड़ित हैं और कई तरह के अत्याचार सहती हैं। मानसिक और शारीरिक शोषण का मुकाबला करते हुए अंत में जिस मज़बूती से समाज और उसके ठेकेदारों का सामना करती हैं, रेनू जी की पीठ थपथपाने को मन करता है, जिन्होंने ऐसे पात्र रचे।

142 पृष्ठों का यह कहानी संग्रह 'काला सोना' शिवना प्रकाशन, सीहोर से प्रकाशित होकर आया है और यह अमेज़ॉन पर उपलब्ध है।

000

हमेशा देर कर देता हूँ मैं
पंकज सुबीर

पंकज सुबीर के कहानी संग्रह की पहली ही कहानी है 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं'। इसी कहानी पर किताब का शीर्षक है। इस कहानी को पढ़कर ऐसा महसूस हुआ कि जीवन में कभी किसी ने किसी बात के लिए देर तो ज़रूर की होगी, अनजाने में या यूँ ही... मुनीर नियाज़ी की नज़्म को ख़ूबसूरत कहानी में पिरोया गया है।

पंकज सुबीर की लेखनी का सबसे बड़ा गुण है क़िस्सागोई। सभी कहानियाँ बेहतरीन क़िस्सागोई का नमूना हैं और भाषा तो कमाल की है ही, जो कहन शैली को और भी निखार देती है। पंकज की क़िस्सागोई में नानी-दादी की कहानी कहने की कला है। इस संग्रह की दस कहानियाँ इस कला का बेहतरीन नमूना है।

पहली कहानी के आरम्भ में लगता है कि लेखक बाज़ारवाद, कार्पोरेटवर्ड और प्राइवेट कंपनियों के शोषण की बात करेगा। पर अचानक कहानी गाँव में पहुँचती है और लम्बी चाची की कहानी शुरू हो जाती है। लम्बी चाची की कहानी में ऐसा स्त्री-विमर्श है, जिसकी समाज और साहित्य में खुलकर चर्चा नहीं होती; क्योंकि उसमें भी पुरुष के अहम् पर चोट लगती है। कहानी के एक पात्र ने लम्बी चाची की मानसिकता और शारीरिक ज़रूरत की चाह को परिपक्व और सुंदर शब्दों में बता कर उस स्त्री को अत्यंत गरिमा प्रदान कर दी है, जिसने कभी पुरुष का सुख नहीं लिया हो। अक्सर समाज स्त्री की इस इच्छा को पाप-पुण्य में तोलने लगता है। चाहे पुरुष नपुंसक हो पर स्त्री से अपेक्षा की जाती है, वह उसी पुरुष के साथ बिना किसी इच्छा के पूरा जीवन काट दे। पंकज सुबीर स्त्री मन के मनोविशेषज्ञ और चितेरे हैं, स्त्री के मन की अतृप्त इच्छाओं, कुंठाओं और चाहत की गाँठों का जिस ख़ूबसूरती से चित्रित करते हैं, वह चित्रण एक संवेदनशील हृदय ही कर सकता है।

दूसरी कहानी 'बेताल का जीवन कितना एकाकी' बुढ़ापे के अकेलेपन की अनोखी कहानी है। बढ़ती उम्र के अकेलेपन पर हर रोज़ कुछ पढ़ने को मिलता है, पर यह कहानी लम्बे समय तक याद की जाने वाली कहानी है....

मर... नासपीटी.... एक ऐसी मानसिक गाँठ को लेकर लिखी गई कहानी है जो ऊपरी सतह पर नज़र नहीं आती, कहानी में गहरे उतर कर पकड़ी जा सकती है। मुस्लिम परिवारों में कज़न्स की ही आपस में शादी होती है। अगर कोई कज़न एक दूसरे को चाहते हैं पर शादी किसी और कज़न से हो जाती है और मिलना-जुलना, आमना-सामना होता रहता है। भीतर छुपी चाहतों की क्रिया-प्रतिक्रिया को बख़ूबी कुशलता से बुना है। ऐसे संबंधों के परिणामों पर पाकिस्तानी टीवी सीरियल भी बहुत आ रहे हैं पर लेखक ने इस समस्या पर जो प्रयोग किया है वह काबिले-तारीफ़ है। इस कहानी का अंत बेहद चौंकाने वाला है।

क़ैद पानी एक ऐसी कहानी है, जिसने मेरे भीतर स्त्री विमर्श और स्त्री जागरण को लेकर कई प्रश्न पैदा कर दिए। हालाँकि लेखक ने महिला सशक्ति, सत्ता की ताक़त और पुरुष सत्ता के झूठे अहम् का बड़ा यथार्थपरक चित्रण किया है। मैंने अपने निजी अनुभवों से भी जाना है, ज़रूरी नहीं कि पढ़ी-लिखी महिला ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है, बल्कि, अनपढ़ महिलाएँ अपने भीतर की शक्ति और अधिकारों के प्रति अधिक सचेत होती हैं। कहानी के अंत में स्त्रियाँ

हथौड़े और कुदाल से ऐसी क्रांति लाती हैं, जिसमें पानी ही नहीं वे अपने अस्तित्व और होंद को भी आज़ाद करवाती हैं।

वास्को-डी-गामा और नील नदी प्रेम की असफलता और उसके वर्षों बाद फिर मिलन तथा अंतत: जीवन के बंधनों से मुक्त अनंत प्रेण सुख में विलीन होने की कहानी है; जो लेखक के शिल्प कौशल से पाठक को याद रहने वाली कहानी है। धर्म की आड़ में सत्ता स्थापित्य का सच्चा और उचित चित्रण चर्च-ए-गुम कहानी में है।

इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी? एक कालजयी कहानी है। पंकज सुबीर की कहन शैली, शोध और भाषा का बेहतरीन नमूना है। यह वह कहानी है जो लेखक रोज़-रोज़ नहीं लिख सकता। इस कहानी में कहन प्रतिभा का रूप चरम पर मिलता है। कहानी शुरू ही नानी और नवासी की बातचीत से होती है और नानी का बड़बड़ाना और नवासी का प्रश्न पूछने से ही कहानी की शुरूआत होती है। बस धीरे-धीरे कहानी उसी शैली में बढ़ती है जिसका ज़िक्र मैं पहले कर चुकी हूँ।

इसमें एक हवेली है और उसके साथ जुड़ा है एक लम्बा चौड़ा पुराना इतिहास। इतिहास में वर्णित सत्ता द्वारा किया गया लोगों का शोषण और उसके दुष्परिणामों को लेकर कही गई कहानी एक यादगार कहानी बन गई है। पंकज सुबीर के लेखन की ख़ासियत है कि वे पात्रों को धीरे-धीरे स्वरूप में लाते हैं, फिर जब वे अपने पूरे फ़ॉर्म में आ जाते हैं तो पाठक को चौंका देते हैं, क्योंकि कहानी अकल्पनीय रूप धर लेती है। यह कहानी भी पंकज सुबीर की उन कहानियों में शुमार होती है जो यादगार कहानियाँ कही जाती हैं।

खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ़ भावान्तर, मूंडवे वालों का जलवा , पत्थर की होदें और अगन फूल भी पठनीय कहानियाँ हैं।

पंकज सुबीर की दस कहानियों का यह संग्रह 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' राजपाल एण्ड सन्ज़ ने प्रकाशित किया है और अमेज़ॉन पर उपलब्ध है।

000

उमेदा - एक योद्धा नर्तकी
आकाश माथुर

छुटपन से मुझे इतिहास में बहुत रुचि रही है। इतिहास की किताबें पढ़ना अच्छा लगता है और साथ ही ऐतिहासिक उपन्यास और कहानियाँ भी। जब कभी पढ़ने की किताबों का चुनाव करना होता है तो मेरे हाथ अपने-आप ऐतिहासिक उपन्यासों और कहानियों की ओर बढ़ जाते हैं। पिछले दिनों किताबों का एक बड़ा-सा पैकेज हमारे सीहोर ऑफ़िस से मुझे मिला। आकाश माथुर का उपन्यास उमेदा, एक योद्धा नर्तकी शीर्षक पढ़ते ही उसे अलग कर लिया और समय मिलते ही पढ़ना शुरू कर दिया। सच कहूँ तो भूल ही गई कि मैं उपन्यास पढ़ रही हूँ। ऐसा लगा कि मैं उस युग में ही घूम रही हूँ और वह महिला जो क्षितिज को कहानी सुना रही है, उसे नहीं मुझे ही अपनी कथा सुना रही है। बेहद ख़ूबसूरती से उमेदा की कहानी कही गई है। मुझे इस उपन्यास के कहन का प्रयोग बहुत पसंद आया। यह सच है देश की आज़ादी के लिए असंख्य जानें कुरबान हुईं। सामने तो कुछेक नाम ही आए हैं। गुमनाम चेहरे, गुमनाम व्यक्तित्व, गुमनाम पात्र आज़ादी की लड़ाई में गुम हो गए। उमेदा उनमें से एक है।

आकाश माथुर का यह पहला उपन्यास है और वह भी ऐतिहासिक उपन्यास। ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय तथ्यों की सही जानकारी लेना बहुत ज़रूरी होता है। तभी उपन्यास की सार्थकता है। आकाश माथुर ने ख़ूब शोध के बाद यह उपन्यास लिखा है और विषय पर उनका अध्ययन भी नज़र आता है। लेखक ने उपन्यास को इतना रोचक बनाया है, कहीं भी पाठक ऊबता नहीं है। कई ऐतिहासिक उपन्यासों में विवरण इतना विस्तृत कर दिया जाता है कि, पढ़ते-पढ़ते अरुचि पैदा हो जाती है।

उपन्यास में लेखक ने तथ्यों को, उस समय के विवरण और परिवेश को रोचक प्रसंगों के साथ जोड़ कर दिया है, जिससे प्रसंग और भी ख़ूबसूरत हो गए हैं। उमेदा 1824 के विद्रोह की नायिका है। उस समय के महलों की नक़्क़ाशी, कपड़ों गहनों की बनावट और उन पर कारीगरी, उत्सवों, शादी ब्याह का माहौल और रीति-रिवाज़ों का बेहद कलात्मक वर्णन किया है। लेखन के कौशल और भाषा की सुंदरता ने उपन्यास को पठनीय बना दिया है।

राजदरबार की एक नर्तकी जो 1857 की क्रांति से 33 वर्ष पहले की क्रांति का हिस्सा थी, एक योद्धा थी, जिसकी समाधि तक की सुध नहीं ली जाती। इतिहास और लोगों ने बस कुँवर चैनसिंह, बहादुर खाँ, हिम्मत ख़ाँ को याद रखा पर उनकी साथी, सलाहकार योद्धा राजनर्तकी को भुला दिया; क्योंकि वह स्त्री थी। मैं बहुत दुखी होती हूँ जब इतिहासकार वीरांगनाओं के साथ न्याय नहीं करते।

लेखक ने बड़ी सतर्कता और कुशलता से उपन्यास का ताना-बाना बुना है; जिससे उपन्यास कुँवर चैन सिंह का नहीं बल्कि उमेदा का बना है। लेखक ने कल्पना पर यह उपन्यास न लिख कर पूरी रिसर्च के साथ लिखा है। समाधि एक महिला का रूप धर उमेदा की कहानी बताती है, लेखक का यह प्रयोग पाठक को बाँध लेता है। उपन्यास की कहानी नहीं बताऊँगी, चाहती हूँ कि इस उपन्यास को पढ़ा जाए। लेखक आकाश माथुर पेशे से पत्रकार हैं, उपन्यास में उनकी खोजी प्रवृत्ति ने रंग जमाया है। उपन्यास शिवना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। लेखक और प्रकाशक दोनों को बधाई! उमेदा एक सार्थक और पठनीय उपन्यास है।

000

केंद्र में पुस्तक

अंजू शर्मा

डॉ. रेनू यादव

अदिति सिंह भदौरिया

(उपन्यास)

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

समीक्षक : अंजू शर्मा, डॉ. रेनू यादव, अदिति सिंह भदौरिया

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

अंजू शर्मा
41-ए, आनंद नगर, इंद्रलोक मेट्रो स्टेशन के सामने, नई दिल्ली 110035
मोबाइल- 885175628

डॉ. रेनू यादव
भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना एक्सप्रेस-वे, ग्रेटर नोएडा- 201312 (उ.प्र.)
मोबाइल- 9810703368

अदिति सिंह भदौरिया
साहिल, सिद्धिविनायक टॉवर, फ़्लैट नं. 404, ब्लॉक- ए, बंगाली चौराहा, मयंक वाटर पार्क के पास, बिछोली मरदाना, इन्दौर, मप्र 452016
मोबाइल- 8959361111

तीन स्त्रियों के जीवन से जुड़ी मार्मिक डायरी

अंजू शर्मा

जब हम कहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण है तो हम साहित्य की सार्वभौमिकता पर भी बात कर रहे होते हैं जो उसका विशिष्ट गुण है। जब लेखन अपने समय को दर्ज करते हुए एक बड़े वर्ग का सत्य बन जाए तो वह सार्थकता को प्राप्त करता है। एक बड़े विद्वान का कथन है कि दुनिया में केवल दस ही विषय हैं जिन पर कथा लेखन आधारित होता है। लेखक घूम फिरकर उन्हीं विषयों पर लिखते हैं। किंतु जैसे-जैसे समय बदल रहा है, लेखन की चुनौतियाँ भी बढ़ रही हैं।

पिछले कुछ वर्षों में समय इतनी तेज़ी से बदला है कि आज हमारे पास विषयों की बहुलता और विविधता लगातार सामने आई है। विशेषकर कोरोना के विश्वव्यापी प्रकोप के बाद परिस्थितियाँ बदल गई हैं। लेखकों के सामने भी यह समय नई चुनौती के रूप में सामने आया है, ज़रूरत है तो केवल संवेदनशील मन और सजग दृष्टि की। ऐसा नहीं है कि हमारे समय के लेखक इससे जूझ नहीं रहे, पर शुरूआती दौर में जिस तरह इस आपदा को हर पहलू से जाने समझे बिना और इसके हर वर्ग पर दुष्परिणामों पर विचार किये बिना, इसे टाइमपास और छुट्टी समय मानकर रचनाएँ लिखी गईं, उसने इस विश्व आपदा की संजीदगी और कारुणिकता दोनों के ह्रास की स्थिति पैदा कर दी।

लेकिन समय बीतने के साथ कुछ बहुत अच्छी रचनाएँ भी इस विषय की मार्मिकता पर एक गंभीर प्रतिक्रिया के रूप में सामने आई हैं, उन्ही में एक है हमारे समय की महत्त्वपूर्ण और वरिष्ठ लेखिका सुधा ओम ढींगरा का उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र'। सुधा जी अमेरिका में प्रवास करती हैं और प्रवासी लेखन में उनका नाम अग्रणी पंक्ति में हैं। उनकी कलम से बहुत सी संवेदनशील कहानियाँ निकली हैं, जो लगभग 6-7 चर्चित कहानी संग्रहों में संकलित हैं और 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' के बाद यह उनका दूसरा उपन्यास है जो शिवना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है और इस समय लगातार चर्चा में बना हुआ है।

अमूमन प्रवासी लेखन को लेकर एक भ्रान्ति सामने आती है कि यह मूलत: अतीत विमोह या

नॉस्टेल्जिया से जुड़ा होता है लेकिन पिछले कुछ समय में सुधा ओम ढींगरा, तेजेन्द्र शर्मा जैसे प्रवासी कथाकारों के लेखन ने इस भ्रामक अवधारणा को लगातार ध्वस्त किया है क्योंकि इनके लेखन में विषय आधारित विविधता और इनकी साहित्यिक सक्रियता लगभग चकित कर देने का सामर्थ्य रखती है।

'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' भी ऐसा ही उपन्यास है जो 2020 में पूरे विश्व को अपनी चपेट ले लेनेवाले हाहाकारी समय से शुरू होता है, आगे चलकर इसका दायरा और विस्तृत होता है और यह प्रवासी स्त्रियों के जीवन से जुड़ी कई मौलिक और संवेदनशील समस्याओं पर विस्तार से अपनी बात रखता है। कथा के केंद्र में चिकित्सा के क्षेत्र से जुड़ा हुआ भार्गव परिवार है इनमें वरिष्ठ दंपति डॉ. रवि भार्गव और उनकी पत्नी डॉ. लता भार्गव के बीच कोरोना के फैलने की ख़बर और उसके जनमानस पर प्रभाव से यह कहानी शुरू होती है। डॉ. लता एक मनोचिकित्सक हैं और कॉउंसलिंग करती हैं और डॉ. रवि एक चिकित्सक, पर दोनों अपने पेशे से सेवानिवृत्ति ले चुकने के बावजूद इस आपदा के समय में अपनी ज़रूरत और कर्त्तव्य को महसूस करते हैं। ऐसे में डॉ. रवि वापस लौटने का निर्णय करते हैं। अपने परिवार की चिंता के बावजूद वे कोविड से लड़ने की मुहिम में शामिल होते हैं, वहीं डॉ. लता इस आपदा के समय की विभीषिका से मानसिक स्तर पर जूझते हुए अपनी पुरानी डायरी खोलकर उन स्त्रियों की केस हिस्ट्री याद करती हैं जिनसे वे किसी समय बतौर मनोचिकित्सक जुड़ी थीं।

उपरोक्त उपन्यास में ऐसी ही तीन महिलाओं की मार्मिक आपबीती है, जिसे एक मनोचिकित्सक यानी डॉ. लता के दृष्टिकोण से दर्ज किया गया है। यहाँ ग़ौरतलब है कि डॉ. लता काउंसलर होने के साथ एक लेखिका भी हैं। इसलिए यह केवल एक डॉक्टरी ब्यौरों से दर्ज डायरी न होकर एक संवेदनशील लेखिका की डायरी है जहाँ उन घटनाओं की मार्मिकता मन को छू लेती है, द्रवित करती है, जो उन तीन एनआरआई स्त्रियों के साथ घटीं, जो अपने ही परिजनों या मित्रों के धोखे का शिकार बनकर इस अवस्था में पहुँच गईं।

पहली स्त्री है डॉली (सभी स्त्रियों को चिकित्सीय गोपनीयता के मद्देनज़र उनके व्यक्तित्व के आधार पर काल्पनिक नाम दिए गए हैं), जो भारत के एक शहर में अपने ससुराल पक्ष के कई पुरुषों के बलात्कार और वीभत्स शारीरिक हिंसा का शिकार होकर विदेश पहुँचती है। यह कहानी केवल उसकी बुरी दशा की कहानी नहीं अपितु उसके साहस, जिजीविषा की कहानी है जो अपनी लड़ाई ही नहीं लड़ती बल्कि अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने जीवन की दिशा बदलने को कृतसंकल्प है और ऐसा करती भी है।

दूसरी कहानी एक स्त्री सायरा की कहानी है जो अपनी बेस्ट फ्रेंड के धोखे और साज़िश का शिकार होती है और एक व्यक्ति के एसिड अटैक से अपनी ज़िंदगी के सबसे बुरे वक्त से गुज़रती है। तीसरी स्त्री रानी अपने ही पति द्वारा शारीरिक और मानसिक हिंसा का शिकार होकर विरोध जताने की हिम्मत जुटाती है। इन सभी जटिल किंतु यादगार कहानियों को डायरी से निकालकर इनकी केस हिस्ट्री को उपन्यास में दर्ज करते समय लेखिका ने बहुत बारीक डिटेलिंग का सहारा लेकर बहुत ही प्रामाणिक जानकारी और ब्यौरों को सँजोकर एक मार्मिक दास्तान में बदल लिया है, जिससे पाठक स्वत: ही जुड़कर कब उसका हिस्सा हो जाता है, वह स्वयं भी जान नहीं पाता। इन तमाम डायरियों के बीच डॉ. लता और डॉ. रवि के माध्यम से कोविड की त्रासदी से जुड़ी तमाम बातें और गतिविधियाँ भी प्रकाश में आती रहती हैं।

विशेष बात यह है कि ये तीनों कहानियाँ जहाँ एक ओर मनोविज्ञान की अबूझ और जटिलतम दुनिया का एक सरल और भावुक पक्ष सामने रखती हैं, वहीं स्त्रियों के जीवन से जुड़े अपराध पर भी कड़े सवाल उठाती हैं। तीनों ही कहानियाँ जिस तरह सकारात्मक अंत की ओर बढ़ते हुए स्त्री की अदम्य जिजीविषा और जूझने की शक्ति से परिचित कराती है, वह भी इस उपन्यास का मुख्य तत्व कहा जा सकता है। डॉ. लता का उन तीनों से मानसिक और भावनात्मक तौर पर जुड़कर उनकी समस्याओं के सिरे को सुलझाने में मदद करना भी बहुत प्रभावित करता है। एक और बात बहुत प्रभाव डालती है, वह है प्रशासन और कानून का उन स्त्रियों के साथ खड़े होना, वरना हमारे यहाँ तो बलात्कार या एसिड अटैक की शिकार पीड़िता के आत्महत्या तक पहुँच जाने की भूमिका हमारा समाज और कभी कभी पुलिस और कानून ख़ुद तैयार कर देता है।

इस उपन्यास की भाषा बहुत सरल और सुगम्य है। मेडिकल विषय की जटिलता के बावजूद बहुत ही आसान भाषा शैली में साहित्यिक पाठकों को ध्यान में रखकर इसका लिखा जाना एक अन्य प्लस पॉइंट है। आप कोरोना, उसे लेकर चिकित्सा जगत् का पक्ष, तीन स्त्रियों के जीवन से जुड़ी मार्मिक डायरी और सुंदर सरल भाषा शिल्प के लिये इस उपन्यास को पढ़कर निराश नहीं होंगे। बल्कि किसी तौर पर विषय आधारित तथ्यात्मक जानकारी से यकीनी तौर पर आप समृद्ध होंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

सुधा जी को इस उपन्यास के लिये हार्दिक बधाई इस उम्मीद के साथ कि अभी यह उपन्यास ऐसे ही चर्चा के केंद्र में बना रहेगा।

000

चेतन से अचेतन की ओर पदयात्रा

डॉ. रेनू यादव

कोरोना काल की छाप लगभग सभी देशों में एक-सी रही है। विकासशील देश भारत में कोरोना की पहली लहर के कहर ने मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग के तबके को सबसे अधिक प्रभावित किया तो दूसरी लहर ने किसी भी तबके को अछूता नहीं छोड़ा। जाति-धर्म, ऊँच-नीच के सारे राग-द्वेष को भूला कर इस कोरोना ने समस्त मानव-जाति को समानता के स्तर पर ला खड़ा कर दिया। किंतु इसमें भी सामाजिक संरचना के पारिवारिक ढाँचे में आर्थिक-स्थिति एकमात्र ऐसा अंतर रहा है जिससे मौत और ज़िंदगी का सारा खेल एक झटके में बदल जाने की नियति से बेबस रहे हैं। ऐसा नहीं है कि पूँजीपति प्रभावित नहीं हुए, बिल्कुल हुए हैं किंतु पूँजी की वजह से उन्हें सारे नियम कानून तोड़कर सुविधाएँ मुहैया

होने में आसानी हो जाती रही है, ग़रीबों के तो राम आधार...।

समय-समय पर विश्व अनेक महामारियों, जैसे कि ब्लैक डेथ, पीला बुखार, हैज़ा, इन्फ्लुएंजा फ्लू, स्पैनिश फ्लू, पोलियो, एड्स, इबोला और कोविड-19 के चपेट में आता रहा है और महामारियों ने प्रकृति की महत्ता को बिन कुछ कहे ही समझा दिया है तथा यह भी समझा दिया कि रेखाओं में बँटा विश्व एक ही अदृश्य सत्ता के नियंत्रण में है। सुधा ओम ढींगरा द्वारा सृजित उपन्यास 'दृश्य से अदृश्य का सफ़र' में विकसित देश अमेरिका की कहानी है। इस उपन्यास की कुछ घटनाओं को पढ़ते हुए प्रतीत होता है कि यही स्थिति तो भारत में भी रही है, जैसे कि अस्पतालों में डॉक्टरों की कमी, मरीज़ों की बेहाल स्थिति, आम जनता की परेशानियाँ एवं सरकार की भूमिका। अमेरिकी राजनीतिज्ञों की उनके अपने देश में राजनीतिक भूमिका पढ़ते हुए भारत के राजनेताओं के रवैये से हम ख़ुद को अलगा नहीं पाते- "टीवी के सब समाचार चैनलों के समाचार वाचक न्यूयॉर्क, कैलिफ़ोर्निया, टेक्सास, अमेरिका के कई राज्यों और पूरे विश्व के अलग-अलग देशों में मरने वालों की संख्या बता रहे थे। मरीज़ बढ़ गए थे और अस्पतालों के पास उतने मरीज़ों के लिए बेड नहीं थे। अराजकता की स्थिति सँभालने के लिए राज्यों की सरकारें जुटी हुई थीं पर इन्तज़ाम करने के लिए लोकतांत्रिक ढाँचा आड़े आ रहा था और न्यूयॉर्क का मेयर मदद की दुहाई बार-बार दे रहा था। वह अपोज़िट पार्टी का है और रूलिंग पार्टी अपने राज्यों को मदद पहुँचा रही थी। न्यूयॉर्क को इग्नोर किया जा रहा था। ज़िंदगी और मौत के समय भी राजनीति अपना खेल खेल रही थी।

दृश्य से अदृश्य का सफ़र – सुधा ओम ढ़ींगरा पृ. 24-25

व्यक्त से अव्यक्त अथवा चेतन से अचेतन की ओर इंगित करता यह उपन्यास एक मनोवैज्ञानिक के नज़रिए से लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास की प्रथम नायक एवं नायिका डॉ. रवि और डॉ. लता रिटायर्ड होकर भी रिटायर्ड नहीं हो पाते बल्कि आपातकाल में उन्हें अपनी सेवाएँ पुन: देनी पड़ती हैं, इंफेक्शियस डिज़ीज़िस के डॉक्टर रवि पुन: हॉस्पिटल में सेवाएँ देने चले जाते हैं और डॉ. लता घर से ही काउंसलिंग एवं समाज-सेवा का कार्य करती हैं, वे ज़रूरतमंदों की मेडिकल मॉस्क, मॉस्क के ऊपर पहनने वाला शील्ड्स, डिब्बा बंद भोजन का इंतज़ाम करवा कर सहायता करती हैं। उसी बीच कोरोना की कथा गौण हो जाती है और डायरी के माध्यम से स्त्री-शोषण की कथा उभरती है, जो कि सुधा ढींगरा के उपन्यासों में तथा कुछ कहानियों का अपना पैटर्न है। शुरूआती कथा का मुद्दा मध्य में जाकर किसी अन्य मुद्दे की कथा में बदल जाता है और वह 'अन्य' ही 'प्रमुख मुद्दा' होता है। यह सुधा ढींगरा की क़िस्सागोई का अपना तरीका है और यह तरीका ऐसा लगता है जैसे कि हम याद करते हैं कि बचपन में हमारी दादी या नानी किस तरह से और कौन-कौन सी कहानियाँ सुनाया करती थीं। जब वे कहानियाँ याद आती हैं, तब याद आता है कि कितना तो दर्द भरा रहता था उन कहानियों में... कोई भाई इज़्ज़त की ख़ातिर अपनी बहन का सर काटकर तालाब में फेंक देता था और उस लड़की का प्रेमी अपनी प्रेमिका को ढूँढ़ते हुए तालाब में कमल के फूल के रूप पाता था, तो कोई माँ अपनी सौतेली सात बेटियों को डेहरी में ता देती थी, तो कोई पति सतित्व की परीक्षा लेने की ख़ातिर खौलते तेल में पत्नी को कूदने के लिए विवश करता था आदि...

कुछ इसी तरह की तीन कहानियाँ हैं डॉ. लता की डायरी में, जो उनके पेशेंट्स की केस हिस्ट्री होती है। उस केस हिस्ट्री को जानने के बाद मन में बस एक ही ख़याल आता है 'लखिया बाबुल मोरे काहे को ब्याहे बिदेश...'

पेशेंट एमरली एवं प्रतिभा सिंह के बहाने डायरी की खोज से निकली डॉली पार्टन, सायरा और रानी तीनों ही स्त्रियाँ पूँजीपतियों के षड्यंत्रों का वह मोहरा हैं, जिनके चमकदार उजास दृश्य के भीतर अँधकार भरी गहरी खाई है। डॉली पार्टन और रानी जैसी लड़कियों के माँ-बाप प्राय: अपनी बेटियों को उनके उज्ज्वल भविष्य की ख़ातिर उजास के चकाचौंध में चौंधिया कर उन्हें अँधकार के गर्त में धकेल देते हैं। जहाँ उनका पूरा जीवन ज़हरीले नाग के फेन को साफ करने में बीत जाता है। यह निश्चित है कि फेन साफ़ करते-करते ख़ुद में भी ज़हर फैल जाने का ख़तरा होगा ही। डॉली पार्टन का अपने ही जेठ और दो देवरों द्वारा बलात्कार होना अथवा परंपरा के नाम पर रानी को सजा-धजा कर गुड़िया बनाकर उसे निष्क्रिय बनाने की कोशिश पितृसत्ता का ज़हरीला फेन ही तो है। डाली के पति मिस्टर हुड्डा का ग़लतफ़हमी में उससे नफ़रत करना तथा रानी के पढ़े-लिखे इज़्ज़तदार रूढ़िवादी पति के दोहरे चरित्र से स्पष्ट होता है कि मात्र शिक्षित हो जाने तथा विदेश में नौकरी कर लेने से उनकी जड़ों में गहरी धँसी पुरुष वर्चवस्ववादी मानसिकता में परिवर्तन आना संभव नहीं। यह उपन्यास इस बात की ओर इंगित करता है कि विदेशों में प्रवासियों की पूँजी का चमचमाता शीश महल मृगमरीचिका भी हो सकता है। दूर के ढोल सुहावने ही लगते हैं, उन्हें नज़दीक से सुनने की ज़रूरत है।

सायरा की कहानी हाशिए पर खड़ी स्त्री का वर्चस्ववादी सत्ता के केंद्र में घुसपैठ की कहानी है और घुसपैठिए को साम-दाम-दंड-भेद से बाहर करने की कोशिश में एक स्त्री के ही कंधों पर हाथ रखकर उन्हें एक-दूसरे के ख़िलाफ़ खड़ा किया जाता है, अथवा दूसरे नज़रिए से देखें, तो एक स्त्री (बेस्ट फ्रेंड) सत्ता में अपनी जगह बनाने के लिए, चाहे वह प्रेम की प्राप्ति की आकांक्षा से हो अथवा प्रेमी की पूँजी एवं स्टेटस में शामिल होने की महत्त्वाकांक्षा से हो आदि... षड्यंत्रों के माध्यम से वर्चस्ववादी सत्ता में अपना दबदबा बनाने वाली योग्य स्त्री (सायरा) को हाशिए पर धकेलने की न सिर्फ कोशिश करती है बल्कि आपराधिक प्रवृत्तियों में भी लिप्त हो जाती है। सत्ता की क्रूर राजनीति में सायरा जैसी मासूम तथा बुद्धिमान स्त्री बदले की भावना से अपराधियों को दंडित करने हेतु स्वयं भी आपराधिक मार्ग का चयन करने के लिए विवश हो जाती है। उसकी बेनूर ख़ाली आँखों की भाषा का परिवर्तन आत्मबोध एवं

अपराध बोध का ही परिणाम है।

ये तीनों कहानियाँ कोरोना काल से पहले की हैं किंतु कोरोना काल में पढ़ी जा रही हैं। इस उपन्यास में इन कहानियों पढ़ा जाना क्रूर कोरोना काल में स्त्री के साथ बढ़ते अपराधों को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत करना है। बीबीसी के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के महासचिव एंटोनियो गुटेरेश ने अप्रैल की शुरूआत में ही कहा था कि, "लॉकडाउन के दौरान दुनियाभर में घरेलू हिंसा के मामले में भयावह वृद्धि हुई है।"

लेखिका किसी एक कहानी पर इस उपन्यास को समाप्त कर सकती थीं, किंतु वह तीनों कहानियों को प्रस्तुत कर भारत से लेकर विदेश तक शोषण के लम्बे सफ़र को अलग-अलग रूपों में प्रकाश में ले आती हैं। स्त्री-शोषण के घिनौने सच को सामने ले आना तथा विदेश में ब्याह देने से बेटियों के सुखी होने के मापात्मक भ्रम को तोड़ना ही उनका उद्देश्य है। यदि यह उपन्यास पीड़िता की दृष्टि से लिखा गया होता, तो शायद संवेदना की गहराई कुछ और होती लेकिन यह उपन्यास एक मनोवैज्ञानिक के पेशेंट्स की केस हिस्ट्री है, इसलिए समस्त घटना-क्रम एक चिकित्सकीय दृष्टि से आता है। अपने मरीज़ों की काउंसलिंग करते-करते मनोवैज्ञानिक डॉ. लता दृश्य में घट रही घटनाओं के पीछे छिपे उन अदृश्य अवांछनीय कारकों तक पहुँचती हैं, जिन्होंने उन मरीज़ों के वर्तमान और भविष्य को नकारात्मक ऊर्जा के रूप में प्रभावित कर रखा है। इतनी नकारात्मकता के बाद भी इन स्त्रियों का एक मात्र स्वर उभर कर सामने आता है, जिसमें पीड़ा भी है और चाहत भी - "मैं जीना चाहती हूँ .... सपनों को साकार करना चाहती हूँ।"

दृश्य से अदृश्य का सफ़र – सुधा ओम ढींगरा, पृ. 59

प्रत्येक मनुष्य के अंदर एक सकारात्मक ऊर्जा है जिसे पहचानने की आवश्यकता होती है और डॉ. लता उसी सकारात्मक ऊर्जा से अपने मरीज़ों की पहचान करवाने में सहायता करती है। डॉ. लता के माध्यम से लेखिका लेखकीय सरोकारों को निभाते हुए कथा के बीच-बीच में पाठकों को भी बार-बार नकारात्मक ऊर्जाओं का विखंडन कर प्रकृति, जीव-जन्तु, तथा ब्रह्माण्ड में सकारात्मक ऊर्जा के आकर्षण की ओर खींचने का प्रयास करती है और कोरोना काल में नकारात्मक और सकारात्मक की बदलती परिभाषा के बीच सकारात्मक ऊर्जा को पहचानने एवं उसे शक्ति बनाने का संदेश देती हैं।

उपन्यास के कवर पेज पर समस्त कथा को जीवंत बनाती 'Timeless Journey' की अंतरा श्रीवास्तव की पेंटिंग फ्रॉयड के साइकोएनालिसिस का सूक्ष्म चित्रण है। अंतरा ने अचेतन, अर्धचेतन तथा चेतन मन के परतों में स्वप्न, कल्पना, भावों का अवगुंठन तथा दृष्टि को बहुत ही ख़ूबसूरती से आकार दिया गया है, जो इस उपन्यास का सार प्रतीत होता है। अंतत: यह उपन्यास मन के भीतर चलने वाली अदृश्य प्रक्रिया को दृश्य करती, वर्चस्ववादी सत्ता में दिए जा रहे अदृश्य संस्कारों का दृश्य परिणाम, अदृश्य सत्ता के वशीभूत दृश्य जगत् का संचालन तथा अदृश्य वायरस के कारण दृश्य जगत् में उथल-पुथल को अभिव्यक्त करता है, जो कि चेतन से अचेतन की ओर अर्थात् दृश्य से अदृश्य की ओर पदयात्रा है।

000

स्वयं की खोज का उपन्यास
अदिति सिंह भदौरिया

बचपन से लेकर आज तक हमें यही बताया गया है कि जीवन के दो ही सच हैं, पाप और पुण्य; लेकिन पाप क्या होता है और पुण्य क्या है? इसकी परिभाषा सबके लिए अलग है, पर किसी ने यह भी बताना उचित नहीं समझा कि जीवन के दो और भी सच हैं, सकारात्मक एवं नकारात्मक विचार, और यही वे दो केंद्र बिंदु हैं, जिन पर पाप और पुण्य की परिभाषा निर्भर करती है। दृश्य से अदृश्य का सफ़र उपन्यास, हमें अपने भीतर की दोनों ऊर्जाओं से परिचित ही नहीं करवाता, बल्कि हमारी सोच के बाँध को मज़बूत बनाकर हमारा परिचय जीवन के दो महत्त्वपूर्ण पहलुओं से करवाता है। इसी परिचय को शब्दों से बाँधा है लेखिका सुधा ओम ढींगरा ने और हम सब जानते है कि शब्दों की जादूगरी आसान काम नहीं है। कई बार लेखक को स्वयं से ही लड़ना पड़ता है, क्या लिखे और क्या छोड़े। पाठकों की नब्ज़ पकड़ना एक मंझे हुए लेखक की पहचान है और अपनी पहचान को सँभाल कर रखना एक कठिन कार्य, पर सुधा ओम ढींगरा ने इस कार्य को इतनी आसानी से कर दिया है, जैसे आँखें सपनों को सँजोए रखती हैं।

उपन्यास तीन पात्रों के संघर्ष की कहानी है। संघर्ष उनका स्वयं में अपने खोए हुए आस्तित्व को पाने का, लेकिन स्वयं से जीतना जितना मुश्किल होता है, उतना ही मुश्किल है यह स्वीकार करना कि संघर्ष हमारा स्वयं से ही है।

कोरोना काल के अकेलेपन में अपने ही अतीत के धागों की माला को ढूँढ़ते हुए शुरू हुई कुछ खोए पात्रों में कुछ नवीन पात्रों की यात्रा, जो रुकी हर स्त्री की अनकही आँखों की भाषा के गीलेपन में।

पात्र अभी पाठकों के अंतर्मन को छू ही रहे थे कि तभी समाज का घिनौना रूप सामने आ जाता है, जहाँ सुन्दरता से बड़ा अभिशाप और कुछ नहीं, नायिका पढ़ी-लिखी है और उसे स्वयं पर विश्वास भी है पर जब अपने से ज़्यादा किसी और पर भरोसा किया जाए, तो इंसान किस कदर टूट जाता है, सुधा ढींगरा ने इस दर्द को बख़ूबी बयान किया है।

अपने रूप के कारण किसी परिवार की साज़िश का शिकार होकर अपने ही पति के भाइयों से बलात्कार का शिकार होना मात्र शारीरिक कष्ट नहीं बल्कि मानसिक हत्या जैसा है, और फिर उसके बाद अपने वजूद की लड़ाई लड़ना कितना कठिन है, इसको बहुत सरल शब्दों में लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

लेखिका ने नायिका के संघर्ष की कहानी को बयान करने के साथ–साथ अपनी कलम के माध्यम से समाज में पुरुष सत्ता पर कटाक्ष कर हमें यह भी बताया है कि अब समय आ गया है जब दीवार के दूसरी तरफ भी हम देखें, जहाँ सब हमारी सोच के विपरीत है, इसके साथ ही नायिका के पति का पछतावा हर उस

पुरुष का पछतावा लगता है जो मात्र अपने रिश्तों को बचाने में कई बार अनजाने में अपनों की बलि दे देते है और नायिका की सास अपने डर से बाहर नहीं आ पाती और अपने जैसी दूसरी स्त्री के जीवन को नारकीय करने का अपराध कर देती है।

यहाँ सुधा ढींगरा ने यह प्रश्नचिह्न लगाया है कि कब तक एक स्त्री दूसरी स्त्री का सहारा न बनकर, उसकी बर्बादी का कारण बनती रहेगी? अभी पाठक पहली लड़की के संघर्ष को महसूस कर ही रहे होते है कि दूसरे पात्र की कहानी हमारी सोच को एक नई दिशा की ओर ले जाती है, जहाँ एक पिता जो स्वयं को आदर्शवादी बताने के चक्कर में अपनी ही बेटी को अहम् के अँधेरे कुएँ की ओर धकेल देता है और जब बेटी अहम् को त्याग कर आगे बढ़ती है, तो रास्ता टूटे हुए काँच की ज़मीन से होकर गुज़रता है। माँ के अन्दर की आवाज़ हर आने वाले अँधेरे को भाप लेती है, पर तब तक वक्त बहुत बदल चुका होता है और इसकी कीमत चुकानी पड़ती है एक झुलसी हुए आत्मा को जिसका मात्र शरीर ही नहीं जला बल्कि उसकी सोच अविश्वास की आग से जल जाती है। वह फिर उठती है अपने भरोसे पर बिना किसी को साथ लिए और अब जो वह बनती है वह मात्र एक डॉक्टर नहीं बल्कि एक सजग और संतुलित स्त्री भी, जिसे पता है कि उसे किस पर विश्वास करना है और अपने आत्मविश्वास को कैसे सँजो कर रखना है। इस पात्र से संवेदना होने लगती है साथ ही उसकी हिम्मत हमारे लिए मिसाल बनकर उभरती है, तभी उपन्यास का तीसरी पात्र हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

एक नज़र में तो ऐसा लगा जैसे आधुनिक देश में भी उसने अपनी संस्कृति को सँभाला हुआ है। दूसरे ही क्षण वह हमें स्वयं को भी न सँभाल पाने वाली छाया ही लगी। उसका दोष प्रेम करना ही था। वह चाहती तो सारे बँधन तोड़ सकती थी, पर उसके प्रेम ने रिश्तों की परीक्षा न लेकर स्वयं की परीक्षा लेना ज़्यादा उचित समझा। यह उसके भीतर की ताकत थी, सभी ने उससे वह ताक़त छीनकर कमज़ोर बना देना चाहा,वह यह भूल गए कि कमज़ोर सिर्फ एक स्त्री हुई थी, एक माँ कभी कमज़ोर हो ही नहीं सकती। जब बात उसकी ममता की और उसके बच्चों के सामने उसके आस्तित्व की हो, फिर वह असीम ऊर्जा के साथ हालातों का सामना करके न केवल स्वयं की पहचान ढूँढ़ लेती है बल्कि अपने बच्चों का सुरक्षाकवच भी बन जाती है।

मैं इन तीन पात्रों को नायिकाएँ ही कहूँगी, क्योंकि विपरीत परिस्थितियों में बिना किसी सहारे के अपने आत्मबल और सकारात्मक सोच ने ही इन्हें अपने हालातों से लड़ना सिखाया। दूसरों के लिए एक मिसाल बनकर सामने आने की क्षमता इन नायिकाओं के भीतर की ऊर्जा ही थी।

आज जब पूरा विश्व नकारात्मक ऊर्जा से घिरा हुआ है, ऐसे में उन्हीं हालातों से उपन्यास की शुरूआत करके सकारात्मकता से तीन नायिकाओं को प्रस्तुत करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, जिसे लेखिका ने बख़ूबी निभाया भी है और हमारे सामने यह बात भी रखी है कि हम सब जिस सकारात्मक कस्तूरी के पीछे भाग रहे हैं, वह हमारे भीतर है। देर है तो उसकी ख़ुशबू को पहचान कर अपने जीवन को सही दिशा देने की। बुरे हालात सबके साथ आते हैं लेकिन उन हालात में नकारात्मकता की आँधी में खोकर अपने आप से भी दूर होकर भटक जाना चाहते हैं या अपने भीतर की ऊर्जा का सही प्रयोग करते हुए एक मिसाल बनकर दूसरों के लिए प्रेरणा बनना चाहते हैं।

इस उपन्यास को मात्र मनोवैज्ञानिक तरीके से न देखा जाए, तो यह तीनों नायिकाएँ हमें अपने आस–पास दिखेंगी, शायद एक आध को अपने भीतर भी देख सकती हैं। जो चुप है इसलिए नहीं, कि वह कमज़ोर है बल्कि इसलिए क्योंकि वह स्वयं से परिचित ही नहीं है। यह उपन्यास हमारा स्वयं से परिचय कराने का एक माध्यम है। यह किसी एक की कलम नहीं, यह हम सबका दर्पण है; जिसे सुधा ढींगरा ने हमारे भीतर के चेहरे को देखने के लिए बनाया है, हमें उस आईने में अपने अक्स को ढूँढ़कर स्वयं को खोजना है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

केंद्र में पुस्तक

प्रकाश कान्त

दीपक गिरकर

अशोक अंजुम

(कहानी संग्रह)

हमेशा देर कर देता हूँ मैं

समीक्षक : प्रकाश कान्त, दीपक गिरकर, अशोक अंजुम

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली

प्रकाश कान्त
155, एलआईजी, मुखर्जी नगर,
देवास 455011 मप्र
मोबाइल- 9407416269

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036

अशोक अंजुम
अभिनव प्रयास, सड़क नं. 2, चंद्रविहार कॉलोनी, नगला डाल चंद, क्वारी बायपास,
अलीगढ़, 202001, उप्र
मोबाइल- 9258779744

विस्तृत कथा फलक की कहानियाँ

प्रकाश कान्त

पिछले दिनों पंकज सुबीर का उपन्यास आया था 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था।' जिसकी काफ़ी चर्चा हुई थी। उसके कथ्य और कथाकथन दोनों को लेकर बौद्धिक गलियारों में बहुत कुछ कहा-सुना गया था। वह उपन्यास सिर्फ़ ऐतिहासिक ही नहीं बल्कि राजनैतिक और सामाजिक विमर्श को भी नया विस्तार देता था। ख़ासकर मौजूदा माहौल को देखते हुए! यूँ भी पंकज सुबीर की अनेक रचनाएँ अपने समय की महत्त्वपूर्ण बहसों में गम्भीर हस्तक्षेप करनेवाली रही हैं। उपन्यास और कहानियाँ दोनों! इसे उनके पिछले दिनों आए कथा संग्रह 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' की कहानियाँ पढ़कर भी समझा जा सकता है।

पंकज सुबीर की अधिकांश कहानियों का फ़लक सामान्यत: काफ़ी विस्तृत रहता आया है। इतिहास, राजनीति, समाज, प्रशासन इत्यादि विविध क्षेत्रों तक उनकी अनेक रचनाओं के कथाफ़लक का विस्तार देखा जा सकता है। साथ ही, यह भी उल्लेखनीय है कि उनके यहाँ ग्रामीण और शहरी दोनों जीवन की रचनाएँ मिलती हैं। इसके अलावा,कई जगह वे विलुप्त होते छोटे-बड़े समुदायों का भी नोटिस लेते हैं। इस मायने में उनकी रचनाओं की कथाभूमि काफ़ी उर्वर रही है।

एक और विशेष बात, अपनी कथा रचनाओं में पंकज इतिहास और वर्तमान के सुलगते सवालों से बचकर नहीं निकल जाते बल्कि उनसे सीधी मुठभेड़ करते हैं। उनके उपन्यास ये वो सहर तो नहीं, अकाल में उत्सव और जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पर नाज़ था, ये तीनों तीन तरह के अलग-अलग उदाहरण हैं। पहले में अगर इतिहास के सवाल हैं, तो दूसरे में किसान की बदहाली और तन्त्र की धूर्त्तता और तीसरा तो ख़ैर तेज़ी से ध्रुवीकृत किये जा रहे समाज में असली मनुष्य की गम्भीर तलाश की कोशिश है ही! इनमें पंकज मूल प्रश्नों को एक सम्पूर्ण बहस की शक्ल देते हैं। सिर्फ़ छूकर नहीं निकल जाते, उनकी तह तक जाते हैं। विवरणों के स्तर पर ही नहीं बल्कि

उनकी संगुफित अन्तर्संरचना तक! और ऐसा करते हुए वे एक संवेदनशील कथाकार के साथ-साथ प्रतिबद्ध अन्वेषक की भूमिका में भी नज़र आते हैं। उनकी ज़्यादातर रचनाएँ पूरी तैयारी के साथ लिखी गई होती हैं। विशेषकर अपने समय के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर केन्द्रित रचनाएँ! अपनी अन्तर्वस्तु से लेकर गठन और नेरेशन तक! इसके लिए वे अगर इतिहास तक जाते हैं तो लोककथा और जनश्रुतियों तक भी! यहाँ तक कि बालकथाओं की फंतासियों तक भी! उनके ताज़ा कथा संग्रह की कहानी 'बेताल का जीवन कितना एकाकी' को इस सिलसिले में पढ़ा जा सकता है। वहाँ उस पीढ़ी की वेदना है जिसने अपना सारा जीवन, संसाधन अपने बच्चों के कॅरियर बनाने में खर्च कर दिए और अन्त में वे ही बच्चे विदेशों में जाकर बस गए माँ-पिता को पीछे एकाकी जीवन जीने का अभिशाप ढोने के लिए या जीवन के उत्तरार्द्ध में अपनी जड़ों से कटकर बच्चों के पास शरणार्थियों की तरह आ कर रहने के लिए! यह इधर के भूमण्डलीकृत संसार के आम मध्यवर्गीय परिवारों का सामान्य लेकिन क्रूरतम सत्य है। जो संग्रह की इस कहानी में उभरता है। लेकिन, पंकज सीधे कहानी नहीं कहते। अगर कहते तो कहानी सपाट हो जाती। उसका मूल दंश नहीं उभरता। पंकज इसके लिए बाल कथाओं वाली वेताल-फेंटम की फेंटेसी का सहारा लेते हैं। कहानी के पात्र फेंटेसी के पात्रों में आवा-जाही करते हैं। और अन्ततः इससे वे सवाल अपनी पूरी यातना के साथ उभार पाते हैं जो कहानी उभारना चाहती थी।

पंकज फंतासी का उपयोग तो करते ही हैं साथ ही कई बार इतिहास कथाओं का भी फंतासी की तरह उपयोग करते हैं। यह सच है कि इतिहास के सच अपने सच होते हैं उनकी मरम्मत नहीं की जा सकती। वे जब एक फंतासी की शक्ल में किसी कथा में बदलते हैं तब कथा के अर्थ और संवेदना को अलग किस्म की गहराई मिल जाती है। 'वास्को-डी-गामा और नील नदी' को पढ़ते हुए इसे महसूस किया जा सकता है। मूल रूप से यह एक प्रेमकथा है। कॉलेज के दिनों में शुरू हुई लेकिन अधूरी रह गई। यूँ भी, अधिकांश प्रेमकथाएँ अपनी अपूर्णता-असफलता के चलते ही महान् रही हैं। और फिर प्रेमकथा में अगर हिन्दू-मुस्लिम जैसा धार्मिक मुद्दा भी दरपेश हो तो आम तौर पर असफलता के रूप में उसकी नियति एक तरह से शुरू होने के साथ ही तय हो जाती है। लेकिन, पंकज सुबीर की इस कहानी की प्रेमकथा बरसों स्थगित रहकर अचानक जीवन के उत्तरार्द्ध में सफल हो जाती है। हालाँकि, उसके बाद प्रेमी-प्रेमिका दोनों ही नहीं रहते। शहर के बाहर उनकी लाशें ही मिलती हैं। जिनमें से सिर्फ़ पुरुष की शिनाख़्त हो पाती। एक असफल रही प्रेम कथा को पंकज कहानी में इतिहास-भूगोल की सँकरी-उलझी गलियों से निकाल कर अन्ततः एक सफल कथा में बदल देते हैं। यूँ, हिन्दू-मुस्लिम प्रेम को लेकर पंकज सुबीर के यहाँ और भी कहानियाँ मिलती हैं। और लगभग हर कथा में उन्होंने प्रेम को केन्द्र में रखकर इन संबंधों को अलग-अलग कोणों से देखने का प्रयास किया है। लेकिन, इस कहानी में वे बिलकुल अलग तरह से नज़र आते हैं। अलग तरह की दार्शनिक मुद्रा में भी!

स्त्री की यौन कुण्ठा को लेकर और भी कहानियाँ लिखी गई हैं। पंकज के इस संग्रह की शीर्षक कहानी 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं' में एक विवाहित स्त्री की यौन कुण्ठा की ज़मीन पर समझने की कोशिश करते हैं। जिसमें एक यौन कुण्ठित विवाहिता है (लम्बी चाची) और एक युवा होता किशोर! चाची इसी किशोर के ज़रिये यौन सन्तुष्टि प्राप्त करने की असफल कोशिश करती है। किशोर भाग आता है। परिणामतः चाची एक दिन नदी में कूदकर आत्महत्या कर लेती है। लोग जिसे एक दुर्घटना मान लेते हैं। किशोर का मित्र इसके लिए किशोर को ज़िम्मेदार ठहराता है। स्वयं किशोर अपराध बोध का शिकार हो जाता है। उम्र के साथ कुछ अन्य प्रसंगों के चलते उसका यह बोध गहरा होता जाता है और निष्कर्षतः वह पाता है कि ऐसे मौक़ों पर वह हमेशा देर कर देता है। मुनीर नियाज़ी की नज़्म उसके इसी बोध को व्यक्त करने का माध्यम बनती है। 'पत्थर की हौदें और अगनफूल' पुरुष की यौन शिथिलता और उससे मुक्ति पाने के लिए लोकोपचार की शरण में जाने की कहानी है। दिलचस्प बात यह कि यहाँ यौन कुण्ठित कोई स्त्री नहीं बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त और उच्च पदों पर कार्य कर चुके पुरुष हैं।

प्रशासनिक धूर्त्तताओं और शासकीय योजनाओं में सामूहिक लूट इत्यादि को पंकज ने अपने उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में विस्तार से बताने का प्रयास किया था। इस संग्रह की दो कहानियाँ-'खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ़ भावान्तर' और 'चर्च-ए-गुम' एक तरह से थोड़ी अलग लेकिन इसी क्रम की कहानियाँ हैं। पहली जहाँ किसान के हित में शुरू की गई भावान्तर जैसी योजना में पटवारी जैसे सरकारी अमले और व्यापारी की मिलीभगत से किया जानेवाला भ्रष्टाचार है तो 'चर्च-ए-गुम' सरकारी अमले और स्थानीय निहित स्वार्थों द्वारा धर्म की आड़ में किये जानेवाले गोलमाल और चर्च की ज़मीन हथियाने की कहानी है। हालाँकि दोनों अलग-अलग तेवर की कहानियाँ हैं। लेकिन, उनका मन्तव्य लगभग एक ही है।

जैसा कि पहले कहा, पंकज की अनेक कहानियाँ बड़े फ़लक की कहानियाँ रही हैं। लगभग किसी लघु उपन्यास के फ़लक की! इस संग्रह की पहली कहानी 'हमेशा देर कर देता हूँ में' तो बड़े फ़लक की है ही अन्तिम कहानी 'इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी' भी है। ईसा मसीह के अन्तिम समय में कहे गए शब्द, 'हे ईश्वर् हे ईश्वर! तू ने क्यों मुझे छोड़ दिया' के आसपास बुनी गई एक बड़ी कथा! मूल कथा समय का भी काफ़ी बड़ा विस्तार लिये हुए है। इतिहास का भी! मूलकथा की जो पृष्ठभूमि है वह एक बड़ा कालखण्ड घेरती है। लेकिन, इसी से कथा के असली अभिप्रेत को गहरा भी करती है। कथा के सूत्र कई पीढ़ियों तक फैले हुए हैं। इस तरह की कथा कहने और उसे उसके असली त्रासद अन्त तक पहुँचाने के लिए कई सारे सूचनात्मक ब्यौरों के साथ एक विशेष प्रकार की क़िस्सागोई आवश्यक हुआ करती है जो यहाँ

है। शुभांगी के पिता की नानी हिन्दू-मुस्लिम दंगे की ज़मीन पर स्त्री की त्रासदी को जिस प्रकार से शुभांगी के सामने खोलती है उससे वह साम्प्रदायिक घृणा की आड़ में स्त्री के साथ किये जाने वाले दुराचार की सारी वीभत्सता को उघाड़कर रख देती है। मनुष्य समाज के सभ्यता के सारे झूठे दावों को भी!

ज़ाहिर है संग्रह की कहानियों में काफ़ी विविधता है। उनके पिछले कथा संग्रहों की कहानियों की तरह ही! यह विविधता उनके कथाकार को एक अलग पहचान देती है। अपने समय और समाज को लेकर एक पूरी तरह सजग कथाकार के रूप में भी! उनके यहाँ अगर रिश्तों के विघटन को लेकर 'मूँडवे वालों का जलवा' जैसी कहानी है तो पानी जैसी गम्भीर समस्या को लेकर 'क़ैद पानी' जैसी कहानी भी! पंकज अपनी जिस समर्थ भाषा के लिए जाने जाते हैं, वह इन कहानियों में भी मौजूद है। कथा कथन के अलग-अलग रंग तो ख़ैर हैं ही!

000

मानवीय जीवन की संवेदना

दीपक गिरकर

पंकज सुबीर कहानियों में नए-नए प्रयोग करते हैं और उनके इन नए प्रयोगों ने आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया है। पंकज सुबीर आज के समय के सशक्त कथाकार हैं। यह कहानी संग्रह कुल 10 कहानियों का पुष्पगुच्छ है। "हमेशा देर कर देता हूँ मैं" कहानी में कथाकार ने कहानी के नैरेटर, जो कि कहानी का मुख्य किरदार है, की भावदशा का कुशलतापूर्वक चित्रण किया है साथ ही उसकी मनोदशा संकेतात्मक रूप से सामने आई है। लेखक ने कहानी में किशोरवय के मनोभाव को उकेरा है। लम्बी चाची अपने पति से रिश्तों की गरमाहट की जगह ठंडापन महसूस करती है। कहानीकार ने इस कहानी में लम्बी चाची के माध्यम से एक नारी की संवेदनाओं की पराकाष्ठा, स्त्री के अंदर की फैंटेसी और उसके विचलन को, स्त्री मन की आकांक्षाओं को सहजता के साथ बख़ूबी चित्रित किया है। "तू जब पसीने में तरबतर नाच रहा था, तो ऐसा लग रहा था, जैसे तू बीतते आषाढ़ का बादल है.... काला-ऊदा बादल। वो पसीना नहीं था, बरसात की बूँदें थीं.... जाने कब से मैंने बादल-बरसात कुछ नहीं देखा, भोगा.... , मेरा आषाढ़ बरसों से आषाढ़ में ही रुका है.... सावन नहीं बना.... तुझे नाचते देखा तो लगा कि उन महकती हुई बूँदों में भिगो लूँ अपने आप को.... तू आसमान पर बादल बनकर नाचता रहे और मैं ज़मीन पर भीगूँ.... तेरी बूँदों में..... भीगूँ.... भीगूँ.... बस भीगूँ..... " (पृष्ठ 33) इस कहानी को पढ़ते हुए लम्बी चाची की मनोदशा का बख़ूबी अहसास होता है। कहानी में नाजायज़ रिश्तों से किशोर मन पर पड़ने वाले प्रभाव को दर्शाया गया है। कहानी में मुनीर नियाज़ी की नज़्म "हमेशा देर कर देता हूँ.... " कहानी के मुख्य किरदार मनीष के दर्द को, पीड़ा को, उसकी बेचैनी को सशक्त ढंग से उजागर करती है। "बेताल का जीवन कितना एकाकी" कहानी बुज़ुर्गों के एकाकीपन के दर्द को और आज की पीढ़ी के युवाओं के सूखेपन को बंया करती है। "हम लोग जो साठ से नब्बे के दशक के बीच पैदा हुए, हम बहुत मूर्ख हैं। इन तीस सालों में मूर्ख ही पैदा हुए हैं.... इमोशनल्स फ़ूल्स.... हम जड़ों से उखाड़ना नहीं चाहते। हमारी जड़ें जाने किस-किस प्रकार की मूर्खताओं में गड़ी रहती हैं, जिनको हम छोड़ना नहीं चाहते। नब्बे के बाद पैदा हुए तुम लोग हमारी तुलना में बहुत सुखी हो। तुम लोग इमोशनल नहीं हो, तुम लोग मूर्ख नहीं हो। तुम नॉस्टेल्जिक नहीं होते। तुम लोग अंदर से सूखे हुए हो। तुम लोग इन्सान, पशु, पक्षी, वस्तुएँ, जगहें.... किसी के साथ कभी अटैच नहीं होते हो, हर समय डिटैच मोड़ में रहते हो। हमें हमारे माँ-बाप ने पैदा किया था, तुम्हें एमएनसी और बाज़ार ने अपने लिए पैदा किया है। तुम्हें अंदर से सुखा दिया गया है।" (पृष्ठ 57) एकाकी जीवन व्यापन करते हुए वृद्ध लोगों का चेहरा पत्थर की मूर्ति की तरह भावहीन हो जाता है। धनंजय कुमार शर्मा की कहानी सुनकर संदीप को अपने पिता की याद आ जाती है। संदीप को अपने वृद्ध पिता के एकाकीपन का अहसास होता है। मर्म को छूती, संवेदना को जगाती इस कहानी का अंत सकारात्मक है। "मर.... नासपीटी.... !" कहानी एक बिलकुल अलग कथ्य और मिज़ाज की कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। कहानी में जीवन का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। कथाकार ने पात्रों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह से निरूपित किया है और उनके स्वभाव को भी रूपायित किया है। यह कहानी दो ममेरी-फ़ुफ़ेरी बहनों ज़रीफ़ा और हलीमा की कहानी है जो हमेशा आपस में झगड़ती रहती हैं लेकिन जब ज़रीफ़ा की बेटी रुख़साना कहीं चली जाती है और उसका पता नहीं चलता है तब हलीमा का व्यवहार ज़रीफ़ा के प्रति सकारात्मक हो जाता है। इस कहानी की शुरूआत ही कुछ इस तरह होती है – "अरी जा जा, बेहया, डोमनी ! सुबह-सुबह मेरे मुँह लग रही है। ख़ुदा इसको मौत भी नहीं दे रहा है। जाने कौन-सा अमरौती का पानी पी कर आई है, क़यामत तक मेरी छाती पर मूँग दलेगी करमजली।" ज़रीफ़ा ने गिन-गिन कर पाँच गालियाँ और कोसने डालकर आवाज़ को कर्कश होने तक तीखा करते हुए चिल्लाकर कहा। ज़रीफ़ा की आवाज़ पूरे मोहल्ले की शांति को भंग करते हुए गूँज उठी। (पृष्ठ 62)

"खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ़ भावांतर" कहानी प्रेमचंद की कहानियों की याद दिला देती है। भावांतर योजना सरकार द्वारा किसानों के हित में घोषित की लेकिन इसका लाभ किसानों को मिलने की जगह व्यापारियों को मिल रहा है। "मूंडवेवालों का जलवा" कहानी में कहानीकार ने ख़त्म होती मानवीय संवेदनाओं को सामने रखा है। "पत्थर की हौदे और अगन फूल" कहानी को पंकज सुबीर ने गहन शोध के पश्चात् लिखा है। यह एक संस्मरणात्मक कहानी है जिसमें पुरुषों की नपुंसकता को दूर करने का उपाय बताया गया है। "क़ैद पानी" कहानी में ग्रामीण जीवन की झलक है। यह कहानी गाँव की समस्या पर न केवल प्रकाश डालती है बल्कि उस समस्या का समाधान भी गाँव के लोगों द्वारा करवाती है। यह एक गाँव की साहसी नारी सुनीता की कहानी है जो कैलाश राठौर

जैसे दबंग व्यक्ति से संघर्ष का पहला कदम उठाती है। वह सजग है और ज्वलंत समस्याओं से मुठभेड़ करती दिखती है। पंकज सुबीर ने इस कहानी के माध्यम से सुनीता का चरित्र चित्रण बहुत ही सशक्त रूप से किया है। "वास्को-डी-गामा और नील नदी" नीलोफ़र और वासु कोहली की अमर प्रेम कहानी है। इस रचना में नायक और नायिका का अद्‌भुत वार्तालाप कहानी को लाज़वाब बना देता है। कहानी में मौलिक द्वंद्व है, नए कोण हैं। कथाकार ने कथानायक की मनोदशा और जटिल होती परिस्थितियों का सूक्ष्म चित्रण किया है। कथाकार ने इस कहानी का सृजन बहुत ही ख़ूबसूरती से और कलात्मकता के साथ किया है। इस पूरी कहानी में कहानीकार ने संकेतों का प्रयोग किया है। एक बानगी देखिए – वास्को-डी-गामा को याद आया कि वह नील नदी के डेल्टा तक जाना चाहता था। चाहता था बरसों पहले। मगर हर बार बस रुक जाता था। रोक दिया जाता था हर बार। हर बार लौट आता था। लौटा दिया जाता था। नील नदी चाहती थी यात्री बनकर मत आओ, समुद्र बनाकर आओ। नील नदी किसी पथिक की देह पर डेल्टा नहीं बनाएगी। वह समुद्र की देह पर ही डेल्टा बनाएगी। ऐसे समुद्र की देह पर जो नितांत उसका अपना होगा। उसी प्रकार, जिस प्रकार मेडिटेरेनियन सी उसका अपना है। चारों तरफ़ से ज़मीन से घिरा हुआ उसके हिस्से का एक छोटा सा समुद्र। हर नदी अपने हिस्से का समुद्र चाहती है। लेकिन वास्को-डी-गामा केवल यात्री की तरह नील नदी के डेल्टा तक पहुँचना चाहता था। नदी ने मना कर दिया। वास्को-डी-गामा कालीकट पहुँच गया। (पृष्ठ 149)

पंकज जी ने "चर्च-ए-गुम" कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। कहानी बहुत ही संयमित और सजीव तरीके से आगे बढ़ती है। चर्च की ज़मीन पर मथुरा प्रसाद चौबे मिठाई और फ़ास्ट फ़ूड की मथुरा स्वीट हाउस दुकान खोलकर अवैध क़ब्ज़ा कर लेते हैं। मथुरा प्रसाद के बाद मथुरा स्वीट हाउस को उनका बेटा राजेश चौबे चलाता है। जब राजेश चौबे को चर्च की ज़मीन पर अवैध क़ब्ज़ा करने का एसडीएम की ओर से नोटिस मिलता है, तब इस परेशानी से उबरने के लिए एसडीएम के मुख्य सहायक रमेश दुबे राजेश चौबे को एक युक्ति बताते हैं कि आप इसी दुकान के एक हिस्से में भगवान् शिव का भव्य मंदिर बनवा ले तो आपको इस ज़मीन से कोई बेदख़ल नहीं कर सकता है।

"मर.... नासपीटी.... !", "क़ैद पानी" और "चर्च-ए-गुम" कहानियों में भारतीय समाज के यथार्थवादी जीवन का सटीक वर्णन है। "इलोई ! इलोई ! लामा सबाख्तानी?" कहानी में कथाकार ने संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे हैं। कहानी पितृसत्ता और सामंती ठसक की सड़ाँध को उघाड़ने का काम करती है। कहानी में मरती जा रही संवेदना और मानवीय धूर्तता के दर्शन होते हैं। किस तरह अर्थ के पीछे दौड़ता समाज इंसानियत को भूला देता है। कहानी में समाज का नग्न सच दिखलाई पड़ता है। कहानी दो मासूम लड़कियों के दर्द से पाठक का हृदय चीर देती है।

कथाकार सामाजिक और परिवेशगत प्रवृत्तियों के प्रति बेहद सजग और जागरूक है। कहानियाँ पढ़ते हुए लगातार रोचकता बनी रहती है। संग्रह की कहानियाँ पढ़ते हुए यह महसूस होता है कि लेखक ने कहानियों के पात्रों को बहुत क़रीब से देखा है। कहानियों के पात्र कथाकार को उद्वेलित करते रहते हैं। पात्रों के नाम भी उनकी पृष्ठभूमि के साथ न्याय करते हैं। पंकज सुबीर अपनी कहानियों के किरदारों के मन में उतरते हैं और उनके मन में चलने वाले द्वंद्व के साथ कहानी का ताना बाना बुनते हैं। ये कहानियाँ अपनी भाषा और संवेदना में पाठक के अन्तर्मन को स्पर्श करने में सफल रही हैं। ये कहानियाँ मानव जीवन के विविध आयामों, अहसासों, मानवीय संवेदनाओं से गुज़रते हुए यथार्थपरक सत्य की पड़ताल करती हैं। इस संग्रह की सारी कहानियाँ काफ़ी दिलचस्प है और इस संग्रह में मानवीय जीवन की संवेदना को बड़े ही रोचक तरीक़े से चित्रित किया गया है। भाषा बेहद सहज और प्रभावी है। पंकज सुबीर हर कथा को अनूठे विन्यास में पिरोते हैं। पंकज सुबीर अपनी कहानियों के शिल्प में नए नए प्रयोग करके अपने कथा साहित्य के शिल्प में विविधता बनाए हुए हैं। कथा शिल्प की दृष्टि से पंकज सुबीर की कहानियाँ पढ़ते हुए कथाकार कमलेश्वर की याद आ जाती है। पंकज सुबीर की कहानियों में आम जनजीवन से जुड़े सर्वहारा पात्रों की उपस्थिति हैं और साथ ही ग्रामीण व क़स्बाई जनजीवन के चित्र दृश्यमान हैं। पंकज सुबीर की कहानियों को पाठक वर्षों तक नहीं भूल पाते हैं। संग्रह की सभी कहानियाँ पंकज सुबीर के परिपक्व और उम्दा लेखन की मिसाल हैं। हिन्दी साहित्य के कथा प्रेमी पाठकों के लिये यह कहानी संग्रह संग्रहणीय है।

000

गहरे चिंतन से जन्मी रोचक कहानियाँ
अशोक अंजुम

पंकज सुबीर को मैं करिश्माई कथाकार मानता हूँ जो मुझ जैसे पाठक को भी, जो अन्यत्र कहानी, उपन्यास पढ़ने के लिए समय की कमी का रोना रोता रहता है, हमेशा अपनी कहानियाँ पढ़ने के लिए तैयार पाते हैं। पंकज सुबीर की क़िस्सागोई का ऐसा तिलिस्म तारी हो जाता है कि किताब साथ-साथ लगी घूमती है- कॉलेज में, यात्रा में, पार्क में... जहाँ भी संभव हो। पहले किताब पूरी न कर पाने की बेचैनी और फिर कहानियों के कंटेंट से उत्पन्न मानसिक उथल-पुथल। इनकी कहानियाँ पढ़ने के बाद हम वैसे नहीं रहते, जैसे कि पढ़ने से पहले थे। किताब मिली- "हमेशा देर कर देता हूँ मैं", 10 नवीनतम कहानियों का गुलदस्ता। पंकज सुबीर की ख़ासियत यह भी है कि वह सतही तौर पर कहानी नहीं लिखते, वे कथानक पर पूरी शिद्‌दत के साथ शोध करते हैं। उसकी बारीक से बारीक परत पर गहरा मंथन होता है, और तब सामने आती है एक ऐसी कहानी जो दिल में गहरे उतर कर अपना साम्राज्य स्थापित करने की भरपूर सामर्थ्य रखती है।

मुनीर नियाज़ी की चर्चित नज़्म- 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं', पिछले दिनों यूट्यूब पर

सुनी थी। शीर्षक कहानी पढ़ने के बाद फिर कितनी ही बार और सुनी। कहानी में उकेरी गई नज़्म की बारीकियों पर फिर-फिर नज़र डाली। नियाज़ी साहब के साथ, सुनने वालों के हाव-भाव का बारीक विश्लेषण और फिर उस पर मन्नी और लम्बी चाची के साथ नज़्म का गुँथ जाना। संबंध न बनने के कारण दोनों के अपने-अपने अपराध बोध। लम्बी चाची का बंधान में डूबना और मन्नी का देर कर देने का मलाल, आसानी से मुझ जैसे पाठक को आगे नहीं बढ़ने देते, देर तक थामे रहते हैं।

दूसरी कहानी 'बेताल का जीवन कितना एकाकी' में है बूढ़े माँ-बाप के, औलाद होने के बावजूद एकाकी जीवन जीते रहने को अभिशप्त होने की व्यथा-कथा। बूढ़े और बेताल की समांतर कथा में बूढ़े का बार-बार बेताल में ट्रांसफॉर्म होना कथा में जिज्ञासा को बनाए रखने के साथ-साथ एक नए प्रयोग के रूप में हमारे सामने आता है। अंत में बूढ़े के चेहरे में संदीप को अपने पिता के चेहरे का नज़र आना कहानी को उसके निर्धारित ख़ूबसूरत पड़ाव तक पहुँचा देता है।

'मर नासपीटी' में ज़रीफा और हलीमा की तकरार कहानी का प्राणतत्व है। इनके बीच दी जाने वाली गालियों की मौलिकता, उनकी भाषा का सौन्दर्य कहानी में चार चाँद लगा देता है, यूँ कि बरबस ही पढ़ते-पढ़ते हँसी आ जाती है। लेखक द्वारा हिंदू होते हुए भी जिस तरह से मुस्लिम परिवारों का, और उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है वह निश्चित ही उसके विस्तृत अनुभव और लेखकीय फ़लक के वैराट्य का जीवंत प्रमाण है।

चौथी कहानी 'खोद-खोद मरे ऊँदरा, बैठे आन भुजंग उर्फ़ भावांतर' ग़रीब किसानों के शोषण का जीवंत दस्तावेज है। मध्य प्रदेश की भावांतर योजना के बंदरबाँट की बारीक बुनाई से तैयार यह कहानी लेखक के बहुचर्चित उपन्यास की याद दिलाती है। ग़रीब किसानों द्वारा की जाने वाली सोयाबीन की खेती पर गिद्ध-दृष्टि रखने वाले पटवारी, गल्ला व्यापारी, कारपोरेट जगत् का बहुत ही मार्मिक जीवन्त चित्रण इस कहानी में प्रस्तुत हुआ है।

'मूंडवेवालों का जलवा' कहानी छज्जूमल मूंडवेवालों के खानदान और फिर नई पीढ़ी के 'जलवे' की कहानी है। 'जलवा-पूजन' की सुस्वादु 'व्यंजन-गाथा' के द्वारा दिलोदिमाग़ को पंकज सुबीर रसरंजित कर देते हैं। छज्जूमल की 'जलवा-पूजन' के बीच होने वाली मृत्यु और उनके 'धन्य- धन्य बेटों' द्वारा उनकी मृत्यु को गुप्त रखकर जलवे को पूरे ज़ोर-शोर से संपन्न कराना और अंत में छज्जूमल की अंतिम-यात्रा से पुण्य लूटना रिश्तों के बाज़ारीकरण खोखलेपन के साथ सीधे हृदय में उतर जाता है।

'पत्थर की हौदें और अगन फूल' पीतांबर गुदेनिया और कलेक्टर राकेश सक्सेना की कहानी है। साथ ही डोडी गेस्ट हाउस का तिलिस्म कहानी में गुँथा है। और इसके साथ जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, वह है - 'पुरुषत्व' प्राप्त करने का 'अनूठा तंत्र', जिसका कहानी पढ़कर ही आनंद लिया जा सकता है।

'क़ैद पानी' में गाँव के दबंग कैलाश राठौर द्वारा सार्वजनिक उपयोग के पानी को बाड़ लगाकर अपनी फ़सलों के लिए क़ैद किये जाने की कथा है, साथ ही यह कथा गाँव के पुरुषों की कायरता के बीच महिला सशक्तिकरण का जीवन्त उदाहरण भी है। सुनीता अपने साहस द्वारा गाँव के पानी को कैसे मुक्ति दिलाने का उपक्रम करती है। कहानी अंतस पर गहरा प्रभाव छोड़ती है और मन में यह आता है कि काश देश के सभी जिलों के पास तरुण विश्वकर्मा जैसे जिलाधिकारी हों और उनकी ऊर्जा हमेशा बनी रहे।

'वास्कोडिगामा और नील नदी' में लेखक ने बहुत ही प्रतीकात्मक रूप से लगभग 35 साल के अंतराल के बाद मिले प्रेमी युगल के अतीत और वर्तमान को व्यक्त किया है। पंकज सुबीर की कहानियाँ कहीं-कहीं गद्य कविता का स्वरूप ले लेती हैं। आप आंतरिक संबंधों को जिस तरह प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करते हैं, कोई साधारण कहानीकार उस प्रसंग को बेहद उत्तेजक बनाकर भुनाने में कोई कसर न छोड़े।

'चर्च-ए-गुम' शहर के एक बहुत पुराने चर्च के 'मथुरा स्वीट हाउस' में विलय होने की कथा है। कहानी बताती है कि किस प्रकार अवैध को धर्म के नाम पर वैध किया जाता है। इस कहानी का अंत बिल्कुल उसी अंदाज़ में है, कि 'समझने वाले समझ गए हैं, ना समझे वो अनाड़ी है।'

'इलोई! इलोई! लामा सबाख्तानी?' किताब की आख़िरी कहानी है। यह कहानी है 'नज़रगंज' मोहल्ले की, साथ ही यह कहानी शुभांगी और उसकी नानी की भी है, बल्कि शुभांगी की कम नानी की ज़्यादा। यह कहानी है आबिदा, रज़िया और उनके साथ बर्बरता का व्यवहार करने वाले नानी के ससुर और उसके पति की, जो नानी की घुटन का हासिल बन कर रह जाती है।

पंकज सुबीर की कहानियाँ जितनी रोचक हैं, उतने ही रोचक उनके शीर्षक भी हैं जो कहानी के प्रति भरपूर जिज्ञासा का वातावरण तैयार कर देते हैं। ऐसे भरे-पूरे कथाकार की क़लम का अभिनंदन है। कहानी के पठन-पाठन में रुचि रखने वालों को "हमेशा देर कर देता हूँ मैं" के लिए देर नहीं करनी चाहिए, किताब मँगाएँ और इन बेहतरीन 10 कहानियों में डूब-डूब जाएँ।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

शिवना प्रकाशन पुस्तक विमोचन समारोह

आकाश माथुर

पंद्रह किताबों का किया गया विमोचन

सीहोर के क्रीसेंट क्लब एंड रिज़ॉर्ट में 4 जून को आयोजित सम्मान समारोह के दौरान शिवना प्रकाशन से प्रकाशित जुलाई के सेट की पंद्रह किताबों का विमोचन अतिथियों वरिष्ठ साहित्यकार द्वय ममता कालिया, संतोष चौबे, पर्यावरणविद् अमृता राय तथा फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा ने किया। आयोजन में पंकज पराशर के उपन्यास जलांजलि, गीताश्री के कहानी संग्रह मत्स्यगंधा, सूर्यबाला के कहानी संग्रह कथा सप्तक, मल्लिका सेन गुप्ता के बांग्ला उपन्यास सीतायन (हिन्दी अनुवाद सुशील कांति) का विमोचन किया गया। इसके साथ रश्मि भारद्वाज के संपादन में प्रकाशित संस्मरण संकलन प्रेम के पहले बसंत में, सुधा ओम ढींगरा के संपादन में प्रकाशित कविता संकलन मन की तुरपाई, अवधेश प्रताप सिंह की पुस्तक विधानमंडल पद्धति एवं प्रक्रिया, वंदना अवस्थी दुबे के संस्मरण नमन, शिवकुमार अर्चन के गीत संग्रह साधो दरस परस छूटे, अशोक अंजुम के ग़ज़ल संग्रह अशोक अंजुम की 101 ग़ज़लें, अनिता दुबे के कविता संग्रह अंकुरित होती है स्त्रियाँ, सपना सिंह के उपन्यास धर्महत्या, श्याम अविनाश के कविता संग्रह धीमेपन के क़रीब, सतेंद्र मित्तल के कहानी संग्रह सूरजपुरी से चौक के साथ ओमप्रकाश शर्मा के यात्रा संस्मरण नर्मदा के पथिक के संस्करण का विमोचन किया गया।

000

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, ज़िला सीहोर, मप्र 466001
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

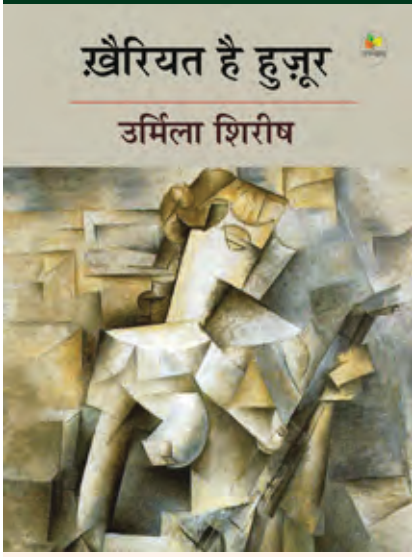

(उपन्यास)

ख़ैरियत है हुज़ूर

समीक्षक : डॉ. (सुश्री) शरद सिंह

लेखक : उर्मिला शिरीष

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

डॉ. (सुश्री) शरद सिंह
एम-111, शांतिविहार, रजाखेड़ी,
मकरोनिया, सागर (मप्र) - 470004
मोबाइल - 7987723900
ईमेल - drsharadsingh@gmail.com

उर्मिला शिरीष हिन्दी साहित्य जगत् की जानी-मानी वरिष्ठ लेखिका हैं। उनका कथा कौशल हिन्दी पाठक समुदाय को हमेशा आकर्षित करता है। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अभी सन 2022 में उनका उपन्यास "ख़ैरियत है हुज़ूर" प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास जगत् में उनकी ज़ोरदार दस्तक है। शिवना प्रकाशन से प्रकाशित यह उपन्यास कथातत्वों के एक अलग ही धरातल पर पाठकों को ले जाने में सक्षम है। वस्तुत: विमर्श के अनेक स्वरूप और अनेक आयाम इस समय हिन्दी साहित्य जगत् में उपस्थित हैं। फिर भी जब कोई लेखिका उपन्यास लिखती है तो उस में स्त्री विमर्श की अपेक्षा की जाती है। इसे पूर्वाग्रह करें या समसामयिक आग्रह किंतु यह भी सच है कि जब एक लेखिका पात्रों को रचती है तो स्त्री पात्र बहुत बारीकी से उसमें मुखर होते हैं। "ख़ैरियत है हुज़ूर" भी अपवाद नहीं है किंतु यह उपन्यास मात्र स्त्री विमर्श नहीं रचता है अपितु एक गहन समाज विमर्श भी रचता है। यह उपन्यास समूची व्यवस्था को खंगालता है और अपनी अंतरात्मा में झाँकने को विवश करता है। यह कठिन समय का दौर है जब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की चकाचैंध है, बाज़ारवाद से जन्मी अनेक लिप्साएँ हैं, धन कमाने की अंधी दौड़ है। ऐसा बहुत कुछ है आज के समय में जिनके बीच हम जी रहे हैं और उन्हें समझते हुए भी पूरी तरह से नहीं समझ पा रहे हैं। एक प्रकार का डिलेमा यानी भ्रम जो हमसे हमारी सच परखने की क्षमता धीरे-धीरे छीनता जा रहा है और इन सबसे भी ऊपर न्यायव्यवस्था की दीर्घकालीन प्रक्रिया।

उपन्यास की नायिका शुचिता प्रत्यक्षत: एक कामकाजी महिला है किन्तु भीतर से एक आम भारतीय गृहणी। वह अपने पति और बच्चों के साथ एक आम-सा जीवन जी रही है, जो रोज़मर्रा की आपाधापी में बंधा हुआ है। उसकी अपने पति की भाँति ढेर सारी आकांक्षाएँ नहीं हैं। उसे तो खीज आती है अपने पति संजीव की धन कमाने की ललक देख कर। उसे इस बात से भी चिढ़ है कि उसका पति डॉक्टरी की पढ़ाई पढ़ कर भी ऐसे लोगों की संगत में क्यों है जो मदिरापान के आदी हैं। धीरे-धीरे यह विषय पति-पत्नी के बीच झड़प का मुद्दा बनता जाता है। फिर भी यह कोई ऐसी परिस्थितियाँ नहीं कही जा सकती हैं, जो हर आठवें-दसवें भारतीय परिवार में न उत्पन्न होती हों। परंतु अचानक कुछ ऐसा घटित होता है जो शुचिता और संजीव के लगभग सामान्य जीवन की शांति को भंग कर देता है। उनकी दिनचर्या को छिन्न-भिन्न कर देता है और शुचिता के विश्वास की चूलों को हिला कर रख देता है। एक लंपट डॉक्टर के द्वारा उपन्यास की नायिका का रास्ता रोकने से शुरू हुआ कथानक तेज़ी से करवटें लेता हुआ इस तरह आगे बढ़ता है कि उपन्यास को पढ़ने वाला पाठक हर मोड़ पर चौंकता है। ठिठक कर विचार करता है। सोचता है कि अब आगे क्या होगा? इस उपन्यास की आधार घटना की वास्तविकता के बारे में लेखिका ने स्पष्ट नहीं किया है किंतु प्रत्येक चरण में व्यापम घोटाला जैसे घोटाले याद आने लगते हैं जिनमें नौकरी दिलाने के नाम पर छल-कपट होता है, यौन शोषण किया जाता है। मामला खुलने पर कई बार बड़ी मछलियाँ कानून के जाल से साफ़ बची रह जाती हैं, छोटी मछलियाँ फँस जाती हैं और कई बार ऐसा भी होता है कि कुछ निर्दोष उसकी चपेट में आ जाते हैं। घोटालों जैसे विषय पर इस तरह का यह पहला सशक्त उपन्यास कहा जा सकता है।

कथानक बिल्कुल नया है और उसका ट्रीटमेंट भी। मध्यमवर्गीय कामकाजी परिवार की स्त्री शुचिता (जिसका नाम आरंभ में पता नहीं चलता है) जो इस उपन्यास की नायिका है उस समय हतप्रभ रह जाती है जब उसके घर आर्थिक अन्वेषण ब्यूरो के अधिकारी आते हैं, वह घर की तलाशी लेते हैं और उसके पति को पूछताछ के लिए पकड़ कर अपने साथ ले जाते हैं। वह सपने में भी नहीं सोच सकती थी कि उसके घर पर कभी इस तरह का छापा पड़ सकता है। उसके समक्ष अनेक जटिल प्रश्न खड़े हो जाते हैं कि अब वह क्या करे? कहाँ जाए? कैसे अपने पति की मदद करे और उससे पुलिस के चंगुल से कैसे बचाए? इन सारे प्रश्नों का उत्तर उसके पास

नहीं है लेकिन उसके पास उसका साहस है। अपने पति पर अविश्वास नहीं करती है किंतु जब वह अपने ससुर के पास सहायता माँगने जाती है, तो उसे सबसे पहले अपने ससुर का विश्वास टूटता हुआ दिखाई देता है। उसका ससुर कहता है-''मुझे तो पहले ही लगता था कि इसके लक्षण ठीक नहीं हैं। उसकी ग़लत लोगों के साथ संगति है। रात के दो-दो, तीन-तीन बजे तक घर से बाहर रहना। मगर हमारी कौन सुनता है! वह सब जो उसके साथ आते थे.. मक्कार और बदमाश लोग फ़र्ज़ी काम करते थे। पता नहीं कहाँ-कहाँ तक उनका रैकेट होगा।''

जब पिता को ही अपने बेटे पर विश्वास न हो तो उससे सहायता की उम्मीद कैसे की जा सकती है? एक बार फिर वही प्रश्न के अब क्या किया जाए? पुलिस लगातार उसके पति को रोके हुए है, पूछताछ करने के लिए। इधर शुचिता अपने बच्चों की देखभाल करते हुए यह जानने को हाथ-पाँव मारती रहती है कि उसके पति को कब छोड़ा जाएगा? हर बार निराशा ही उसके हाथ लगती है। वकील, कानूनी दाँवपेंच में पैसा पानी की तरह बहाना पड़ता है।

बीच में एक लम्बा फ्लैशबैक है जो कथानक की नींव से परिचित कराता है। ऊपर से देखने में तो यह छात्र जीवन की एक आम भारतीय प्रेम कथा लगती है, जिसका विवाह के रूप में परंपरागत पटाक्षेप हो जाता है। लेकिन उस फ्लैशबैक में देशकाल से परिचित कराती दो घटनाओं की चर्चा है, जिनमें से एक है तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की उनके सुरक्षाकर्मियों द्वारा हत्या और दूसरी भोपाल में यूनियन कार्बाइड जो पेस्टिसाइड की अमेरिकन कंपनी थी, में गैस लीक होने के कारण बड़ी संख्या में जनहानि का होना। हर बड़ी घटना के साथ अनेक छोटी-छोटी अंतर्घटनाएँ भी जुड़ी होती हैं। कुछ साथ घटित होती है और कुछ आगे चलकर आकार लेती हैं। ऐसे ही एक घटना धीरे-धीरे आकार लेती गई वह थी गैस त्रासदी के मुआवजे के जोड़-तोड़ की घटना। बहुत ही कम शब्दों में और बहुत सटीक विवरण दिया है लेखिका उर्मिला शिरीष ने- ''जो भोपाल में उस रात नहीं भी थे वह भी अब गैस प्रभावित हो गए थे और अचानक ही भोपाल की जनसंख्या चार-पाँच लाख से बढ़कर पन्द्रह लाख हो गई थी। आने वाले समय में गैस राहत के नाम पर सैकड़ों धंधे शुरू हो गए और एक अस्पताल भी बन गया अब मज़दूर मिलना मुश्किल हो गए थे।''

फ़र्ज़ी सर्टीफिकेट्स बनाने का बाज़ार हमेशा गर्म रहता है, चाहे वह झूठे गैसत्रासदी पीड़ित का हो अथवा नौकरी पाने के लिए योग्यता का झूठा सर्टीफिकेट। शुचिता को नहीं पता कि उसका पति सचमुच अपराधी है अथवा नहीं। यह बात और है कि सारी दुनिया यहाँ तक कि उसके पति के सगे रिश्तेदार भी उसे अपराधी ठहरा रहे थे। शुचिता को उसकी कमियाँ उसकी बुराइयाँ भी याद आती हैं कि वह किस तरह से शराब पीकर आता था, दोनों में किस तरह से झड़प होती थी। फिर भी वह अपने पति को यूँ अकेला तो नहीं छोड़ सकती थी। जो कुछ भी संभव हो पा रहा था, वह दौड़-धूप कर रही थी। घर के माहौल और उसकी परिस्थितियों का विवरण देते हुए लेखिका ने लिखा है- 'घर में जैसे मातम पसर गया था। मृत्यु से भी ज़्यादा मारक मातम। दोनों बच्चे माँ की परेशानी से परेशान थे। दुखी थे। उदास थे। चुप थे। अब वह एकदम अकेली थी। सब ग़ायब थे। राकेश अन्य रिश्तेदार सब का आना-जाना बंद था। कोई अपना नाम ख़राब नहीं करना चाहता था। हाँ, जेल में कब कौन मिलने जाएगा, यह तय किया जा रहा था। जेल के नियमानुसार सप्ताह में एक बार मिल सकते थे।'

तमाम संघर्ष के दौरान मर्मांतक पीड़ा का वह पल भी आता है जब शुचिता अपने पति की केस फाईल की कॉपी वकील से माँग कर पढ़ती है और उसमें पति पर लगाए गए आर्थिक अपराधों के साथ ही यौन शोषण का आरोप अपनी आँखों से पढ़ती है। यदि कोई पुरुष होता तो अपनी पत्नी की ऐसी यौन-संलिप्तता के बाद उससे किनारा कर लेता किन्तु एक स्त्री, वह भी पत्नी तमाम अविश्वास के बावजूद स्थितियों को हर दृष्टि से समझने की कोशिश करती है। वह सत्यता जानने के लिए कथित पीड़िता से मिलना भी मंज़ूर करती है। जहाँ उसके आगे कई नए पन्ने खुल कर सामने आते दिखाई देते हैं।

उपन्यास में केन्द्रीय जेल के आंतरिक वातावरण का बख़ूबी वर्णन है जो चेतावनी देता है कि कोई भी अपराध करने से पहले सोच लें कि जेल की दुनिया कितनी कठोर और संवेदनहीन है। बाज़ार का प्रभाव वहाँ भी है। यदि आपकी जेब में पैसा है तो वहाँ भी आपको सुविधाएँ मुहैया हो जाएँगी और नहीं है तो वहाँ भी आप दलित-शोषित ज़िंदगी गुज़ारने पर मजबूर रहेंगे। यदि जेल की दुनिया में कदम नहीं रखना चाहते हैं तो सावधान रहें, सतर्क रहें। लेकिन कई बार यह चेतावनी भी बेकार साबित होती है जब कोई व्यक्ति अचानक दूसरों की दुर्भावनाओं का शिकार हो जाता है और न चाहते हुए भी उस दुनिया में जा पहुँचता है जो अपराधियों की दुनिया कहलाती है। एक गहन द्वंद्व और अंतर्द्वंद्व, साथ ही संघर्ष की कड़ी परीक्षाएँ।

सत्ताईस साल, चार माह, अठारह दिन के बाद घटनाक्रम उस निष्कर्ष पर पहुँचता है जहाँ उसे आरंभ के कुछ सप्ताह में ही पहुँच जाना चाहिए था। न्याय व्यवस्था की दीर्घकालिक प्रक्रिया जहाँ दोषियों को दंड तक पहुँचाती है वहीं निर्दोषों को भी सज़ा सुनाए जाने से पहले ही लम्बे दंड का भागी बना देती है।

यह उपन्यास अनेक ऐसे ज्वलंत प्रश्न अपने पीछे छोड़ जाता है जो मानस को झकझोरने वाले हैं। उपन्यास का विन्यास कसा हुआ है। पात्र हर कदम पर सामने खड़े दिखाई देते हैं। उपन्यास की भाषा इतनी सरल और सहज है कि किसी भी बौद्धिक स्तर के पाठक से संवाद कर सकती है। सबसे महत्त्वपूर्ण है इसका कथानक जो व्यापम जैसी अनेक घटनाओं के पर्दे के पीछे के परिदृश्य से जोड़ता है, जिस पर सनसनी फैलाने वाला इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी चर्चा नहीं करता है। इसके लिए लेखिका उर्मिला शिरीष बधाई की पात्र हैं। सकल समाज से सरोकारित इस उपन्यास को अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

(यात्रा संस्मरण)

कुछ इधर ज़िन्दगी, कुछ उधर ज़िंदगी

समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : गीताश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली- 110048,
मोबाइल- 9868182835

मनुष्य घुमक्कड़ प्राणी है, सृष्टि भले एक चक्कर-वृत्त में बँधी सदियों से अपने सफ़र पर चल रही है। उसी सृष्टि का अंश मनुष्य भी अपने स्थान से कहीं भी, किसी ओर निकल कर, अपनी जीवन यात्रा को अनेक स्तरों पर, अनेक पहलुओं से पूर्ण करने की आशा में बँधा अपने जन्म काल से ही चल रहा है। इसका कारण यह है कि प्रकृति की गतिशीलता ने ही मनुष्य को गति दी है। अपनी इस गति से ही उसने दुनिया के अनेक कोनों तक पहुँच को संभव कर लिया। नदी, झरने, समुद्र की गहराई क्या पहाड़ों की चोटियों भी मनुष्य के कदमों को वहाँ तक पहुँचने में रोक नहीं पाई। तभी तो मालूम होता है कि यह प्रकृति कितनी विहंगम परिदृश्य से भरी है और मनुष्य की पहुँच से कुछ भी बाकी नहीं रहा। प्रकृति के अलावा, मनुष्यों और देशों ने अपने - अपने ढंग से इस धरती को बेहद सुंदर बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

यात्रा वृत्तांत या संस्मरण साहित्य का हिस्सा रहे। हर कोई जब स्वयं घूम नहीं पाता, तब ऐसे यात्रियों के संस्मरणों व वृत्तांतों से उसे दुनिया को देखने, जानने और समझने का अवसर मिलता है। पहले-पहल घूमने वालों की संख्या कम रहती थी परन्तु अब हमारे देशवासी भी नए-नए स्थान देखने में उत्सुक रहते हैं और ख़ूब घूमते-फिरते हैं, न केवल अपने ही देश में बल्कि विदेशों का चक्कर लगाने में भी पीछे नहीं रहे।

अब देखे, घूमना भी कई किस्म का हो गया है, किसी भी टूरिस्ट कंपनी के साथ अपनी जेब व समय अनुसार का पैकेज बुक करवाएँ और पाँच-सात दिन में भले दुनिया के तीन देश घूम आएँ। या परिवार या दोस्तों के साथ ख़ुद ही एक-दो स्थान देखने का कार्यक्रम बना लिया जाए। ऐसा भी है, कई लोग कुछ निश्चित करके नहीं निकलते, घर से बाहर कहीं घूमने या नया कुछ जानने की इच्छा से बस निकल पड़ते हैं। दो-चार जोड़ी कपड़े, ज़रूरत भर का सामान और मन की यह आवाज़ सुनकर कि 'हज़ारों मील लंबे रास्ते तुझको पुकारें .... '। पहले दो घूमने के तरीके सैर-सपाटा, कुछ दिनों रूटीन से बदलाव के रूप में जाने जा सकते हैं... जाने से पहले ढेर सारी खरीददारी, घूमने के स्थानों पर ढ़ेर सारी खरीददारी, अब इसमें पहले के मुकाबले फ़ोटो खींचना और सेल्फी लेना और अधिक बढ़ गया है। कुछ प्रसिद्ध स्थानों को देख लेना, कुछ थोड़ा बहुत जान लेना, जिसमें से बहुत कम समझ में आना। वहाँ के प्रसिद्ध नाम, स्थान, बुत, संग्रहालय नदी, समुद्र कुछ याद रह जाते, अक्सर मुश्किल नाम पल्ले नहीं पड़ते या याद नहीं रहते। ऐसे सैर-सपाटों और पर्यटन का साहित्य से दूर-दूर तक कुछ लेना-देना नहीं है।

साहित्य में जगह तभी बनती है, जब कोई घुमक्कड़ी करें और हर स्थान को जानने की उत्सुकता रखें। जो ज्ञान, जानकारी व वैचारिक परिपक्वता वह स्वयं महसूस करें, उसे दूसरों को बताने का मन भी बनाएँ। तब सामने आते हैं यात्रा संस्मरण या कहीं-किसी देश-स्थान का यात्रा वृत्तांत। अपने द्वारा देखे-सुने स्थानों को लेखक ही अपने पाठकों को अपनी कलम से दिखा सकता है, उन्हें अपने साथ घुमा सकता है और स्वयं के अनुभवों को जोड़ कर, किसी भी देश व स्थान की सभ्यता-संस्कृति, वैचारिक आदान-प्रदान जैसी गंभीर बातों के साथ, कुछ छोटे-मोटे किस्सों द्वारा वहाँ की जीवन शैली, परंपराओं व भविष्य की ओर बढ़ाते कदमों की आहट का हवाला देकर, अपने पाठकों के साथ भी न्याय करता है और अपनी लेखनी का सही इस्तेमाल भी करता है। वैसे आजकल वीडियो व्लॉग का ज़माना आ गया है। यूट्यूब पर आपको ऐसे अनेकों टूरिस्ट मिल जाएँगे जो आपको 10-12 मिनट के व्लॉग में काफी कुछ दिखा-घुमा देते हैं। नई-नई जानकारियाँ साझा करते, कई बार खट्टे-मीठे किस्से भी बता देते हैं। मगर यह यात्रा संस्मरण व वृत्तांत तो उन लोगों की भूख शांत करने के लिए हैं, जिन्हें कुछ पढ़े बिना रात को नींद नहीं आती। (मोबाइल और सोशल नेटवर्किंग के दौर में अभी भी ऐसे प्राणी आपको मिल ही जाएँगे।)

ऐसे प्राणियों व पाठकों के लिए गीताश्री का यात्रा संस्मरण 'कुछ इधर ज़िंदगी, कुछ उधर ज़िंदगी' उपहारस्वरूप प्रतीत होता है। इस पुस्तक में लेखिका देस खंड और परदेस खंड के विभिन्न स्थानों की सैर करवाती है। देस खंड में खज्जियार, राजस्थान, केरल, झारखंड, कुशीनगर, मणिपुर, पटनी टॉप और गोवा जैसे चिर-परिचित राज्यों के जाने-अनजाने अनेक

स्थानों से परिचय करवाते हुए हर बार कुछ नई जानकारी देती है। वह खज्जियार के सुकून भरे दिनों में किसी अपरिचित साहनी से मुलाकात और उसकी कहानी जान कर परेशान होती रही। राजस्थान में उसने देश के एकमात्र उस मंदिर से परिचय करवाया, जहाँ कृष्ण के साथ मीराबाई की मूर्ति लगी हुई है। नहीं तो हर जगह राधा का ही वर्चस्व छाया हुआ है। केरल में वह कोंडुगलूर से पचास किलोमीटर दूर स्थित अथिरापल्ली के घने जंगलों में विराट् झरने के पास लाकर हमें बताती है कि यही वह प्रसिद्ध झरना है, जिसे पार करने का सपना 'बाहुबली' देखता है। जो सच में ही अत्यन्त विराट है, जिसे किसी दैवीय शक्ति द्वारा ही पार किया जा सकता है। वही केरल में चट्टयामंगलम में स्थित घने जंगलों से घिरी ऊँची पहाड़ी पर राजीव अंचल द्वारा निर्मित 'जटायु अर्थस सेंटर' है, जो भारत का पहला समर्पित पक्षी शिल्प है और महिला सुरक्षा व सम्मान को समर्पित है। यहाँ धार्मिकता भी प्रबल है। झारखंड में वह देश के एकमात्र एंग्लो-इंडियन गाँव या क़स्बे 'मैकलुस्कीगंज' के बारे में बताती है, जो इसी नाम से अभी भी अपनी पुरानी पहचान के साथ जीवित है। मणिपुर में 'इमा' कहने पर आपको भारत के एकमात्र स्त्री बाज़ार 'इमा कैथल' में ढेर सारी छूट मिल जाएगी। वहाँ सारी दुकानदारी केवल स्त्रियों ही करती है। वह अपनी विवाहित बेटी को अपनी दुकानदारी सौंपती आई हैं। पटनी टॉप में वह बकरवाल जाति को चित्रित करने के लिए लगाई गई चित्रकला कार्यशाला को चित्रकारों के विविध प्रकार के बनाए गए चित्रों से अधिक उनके विचारों की विभिन्नता को कई पहलुओं से वर्णित करती है। गोवा में धड़ल्ले से चल रहे मसाज पार्लर और नशे-ऐश के लिए आई विदेशी युवतियों के धंधों और सभी की पुलिस मिलीभगत का भंडा फोड़ती है।

विदेशी खंड में एशिया और यूरोप के अनेक देशों में फुकेत, बाली द्वीप, श्रीलंका, सीरिया, दक्षिणी कोरिया, प्राग, भूटान, स्पेन, ईरान, ब्रसेल्स और तिब्बत की सैर करवाती है। फुकेत में रात के समय के जीवन की झलक दिखाती है, जहाँ थर्डजेंडरों का नृत्य अलकजार बेहद लोकप्रिय है। वैसे भी सेक्स टूरिज़्म के लिए सबसे बदनाम फुकेत ही है। बाली द्वीप के नाम के बारे में फैली भ्रांति को दूर करते वहाँ के निवासियों के लिए ओपेन एयर थियेटर में किया जाने वाला रामायण का मंचन ही पर्यटन के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध शौ है। वह ऐसा देश है, जहाँ बहुत मुस्लिम आबादी के बावजूद हिंदुत्व के गौरव को सँभाल करके रखा गया है। मंदिर हालाँकि श्रीलंका में भी बहुत हैं परन्तु वह उसे अधिक पसंद नहीं आया। शायद वहाँ ऐसी श्रद्धा भावना देखने को नहीं मिलती, जैसी कि बाली द्वीप में देखने को मिलती है।

सीरिया में एक ओर वह अनजाना नाम जेनोबिया की महारानी के प्रचलित किस्से को बताती है, वहीं इस्त्राइल के गोलन क्षेत्र के 5 गाँवों में रहने वाले सीरियाई लोगों की परेशानी और उनकी इसराइली लोगों की आपसी नफ़रत और कलह के कारणों पर भी रोशनी डालती है। दक्षिण कोरिया का भारत के अयोध्या से प्राचीन रिश्ते की कई परतें खोलते हुए वहाँ की मशहूर राजकुमारी हुह ह्नवांग ओक का वर्णन करती है। वहाँ के लोग आज भी इस बात में यकीन करते हैं कि वे सभी राजकुमारी हुह के महान् वंशज हैं, जो अयोध्या से थी। इसके साथ ही बौद्ध धर्म के जिंकवांसा मठ में रात रहने और उनकी दिनचर्या को देखने को पर्यटन से जोड़ दिया है। प्राग में वह काफ्का के घर और संगहलय को देख कर बेहद अभिभूत महसूस करती है। भूटान वैसे तो सारी दुनिया से एकदम निराला और अलग है, परन्तु वहाँ के युवाओं में बालीवुड की फिल्मों का काफी क्रेज़ है। वह पहला तंबाकू मुक्त देश भी है। स्पेन में वह पिकासो की विश्व प्रसिद्ध पेंटिंग 'गुएरनिका' का वर्णन युद्ध की विभीषिका के रूप में करती है। वह बताती है कि बार्सिलोना के पिकासो म्यूज़ियम में उसकी 4250 कलाकृतियाँ सहेज कर रखी गई हैं। ईरान जैसे कट्टर इस्लामिक देश में जहाँ हाफिज़ की शायरी के आज भी दीवाने हैं, वहाँ भी भारतीय फिल्में फारसी में डब होकर अच्छा कारोबार करती हैं। ब्रसेल्स में चौराहे में खड़ी पेशाब करते लड़के की मूर्ति की व्याख्या अनेक प्रकार से की जाती है। यह मूर्ति अनेक बार चोरी भी हुई। इस मूर्ति को 17वीं शताब्दी में जेरोम डुक्सोश्नो ने बनाया। 2016 में वहाँ हुए एक आतंकी हमले के बाद इस मूत्र को आतंकवाद पर पेशाब का प्रतीक माना गया। यह ऐसा देश है, जहाँ स्त्रियाँ संतानमुक्त होने लगी हैं। वे इसे अपनी आज़ादी से जीने का अधिकार मानने लगी हैं। तिब्बत के ल्हासा तक ट्रेन से जाने तक का सफ़र अद्भुत था। दो दिन और दो रात का वह सफ़र, दुनिया के सबसे ऊँचाई वाले स्थान का है, जो स्वर्ग जाने सा प्रतीत होता है। जिसके माध्यम से चीन सारी दुनिया को तिब्बत की तरक्की को दिखाना और पर्यटकों से अपने लिए वाहवाही सुनना चाहता है, वहीं तिब्बियों के लिए भारत भी किसी तीर्थ स्थल से कम नहीं। वहाँ लगातार अंग्रेज़ी में बात करने वाले पत्रकारों को चीनी गाइड हिन्दी में बात करने को कहते रहे कि शायद वह अपनी भाषा में कहीं चीन की बुराई न कर दें। वे एकदम सतर्क रहते, उनसे अधिक सतर्क भारतीय पत्रकारों की टोली रहती। वैसे भी भारतीयों को अपने ही देश में हिन्दी में बात करना पसंद नहीं, बाहर के देशों में जाकर वे ऐसी दकियानूसी बातें कैसे कर सकते हैं? हाँ, इसके लिए चीनी लोगों का हैरान होना समझ में आता है।

कुल मिलाकर, गीताश्री ने अपने अनेक पत्रकारिता दौरों के देसी-परदेसी किस्सों को बहुत चटपटे अंदाज़ में पेश किया है, जिसमें हँसी की फुलझड़ियाँ और भावुकता भी शामिल हैं। उस के यात्रा संस्मरण क़िस्सों सा जादू बिखरते हैं और कहानियों सा आनंद देते हैं।

इस पुस्तक से ऐसी कई नई जानकारियाँ मिलती है, जिनके बारे में मुझे भी काफी कुछ मालूम नहीं था। लेखिका की यात्राएँ बोर नहीं करती, बल्कि कहीं-कहीं गुदगुदाती प्रतीत भी होती है। कामना है कि लेखिका ऐसे अनेक दौरों पर जाएँ और पाठकों के लिए झोली भर ऐसी गुदगुदाहटें लेकर आती रहें...।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

भाप के घर में शीशे की लड़की

समीक्षक : रमेश शर्मा

लेखक : बाबुषा कोहली

प्रकाशक : के.एल. पचोरी प्रकाशन, गाजियाबाद

रमेश शर्मा
92, श्रीकुंज कालोनी, बोईरदादर,
रायगढ़ (छत्तीसगढ़) 496001
मोबाइल- 7722975017
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

बाबुषा कोहली की किताब 'भाप के घर में शीशे की लड़की' पढ़ते हुए कई बार लगा कि निजी जीवन के अनुभवों को ही प्रतिछवियों में मैं देख पा रहा हूँ। मेरी जगह कोई और भी पाठक होता तो संभव है उसे भी इसी किस्म के अनुभव होते। बाबुषा के पास आम जन जीवन /निजी जीवन में घटित घटनाओं को देख पाने की एक विरल दृष्टि है, जो अमूमन बहुत कम लोगों के पास होती है। विजन की अद्वितीयता एक रचनाकार को दूसरे रचनाकारों से अलग रखते हुए उसे एक नई पहचान देती है। बाबुषा की इस किताब में जो कुछ भी है बहुत साधारण होते हुए भी एक असाधारण दृष्टि के साथ इस रूप में सामने आती है कि एक पाठक के रूप में हम अपने आप को अंतर संबंधित करने लगते हैं। किताब में संग्रहित गद्य में दृष्टि की अद्वितीयता के साथ-साथ जो भाषायी सौंदर्य और सूफ़ियाना अंदाज़ में व्यक्त हुई गद्य का जो लालित्य है वह अप्रतिम है। एक अच्छी कवियत्री और अप्रतिम गद्य लेखिका होने के साथ-साथ बाबुषा पेशे से एक अध्यापिका भी हैं। अपने मित्रों ,अपने विद्यार्थियों के साथ समय बिताते हुए बतौर रचनाकार और अध्यापिका के रूप में उनके दैनिक जीवन के जो अनुभव हैं और उन अनुभवों से उपजी जो विचार शृंखलाएँ हैं उस शृंखला को अलग-अलग खंडों में हम इस किताब में पढ़ते हैं। इन खंडों को 'सा रे ग म प' के नामकरण के साथ इस तरह लयबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है कि इन्हें पढ़ते हुए विचार और भाषा के सांगीतिक अनुभवों से हम गुज़रने लगते हैं।

'सा' खंड के अंतर्गत प्रार्थना शीर्षक नामक गद्य के अंश में वे लिखती हैं -

व्यवहार में छद्म का नाश हो /शक्ति की लोलुपता का लोप हो /विचारों का पाखंड खंड खंड हो /दार्शनिक स्वप्न दर्शी हों /पृथ्वी एक बड़े घास के मैदान में बदल जाए /बच्चों का राज हो /खेल हों /धुन हो /झगड़े हों /कट्टीसें हों /सीखें हों /झप्पी हो /नदियाँ हों /पेड़ हों /पहाड़ हों परिंदे हों।

रचनाकार की इस प्रार्थना के भीतर वैचारिक होकर उतरिए तो दुनिया को नए सिरे से सिरजने की एक दृष्टि मिलती है। आज यह दृष्टि कहीं खो गई है और यह दुनिया उस दिशा में भाग रही है जिधर अँधेरा घना होता जा रहा है।

दैनिक जीवन की जो आम गतिविधियाँ हैं, उसके बहाने बाबुषा ने जीवन के फैक्ट्स को उसके सत्य दर्शन के साथ इस किताब में बड़ी सहजता से सामने रख दिया है। नवमी कक्षा में अंग्रेज़ी विषय के बच्चों को विलियम वड्र्सवर्थ की कविता 'अ स्लम्बर डिड माय स्प्रिट सील' पढ़ाते हुए शिक्षक और बच्चों सहित समूची कक्षा के जो गहरे अनुभव हैं , 'कविता के लोक में प्रवेश के पहले' नामक खंड में व्यक्त हुए हैं। किसी प्रिय को खो देने के बाद ही जीवन में मृत्यु का भय आता है। उसके पहले एक गहरी नींद मनुष्य की आत्मा को इस तरह बाँधे रखती है कि आदमी मृत्यु जैसे सत्य को स्वीकार करने की स्थिति में ही नहीं होता। कविता के भावों को लेकर कक्षा में शिक्षिका के साथ बच्चों के जो संवाद हैं बहुत अलहदा और रोचक हैं -

करन पूछता है, हम क्यों दुखी होते हैं, जब लोग मर जाते हैं? स्वप्न ने बताया कि अब हम दोबारा उन्हें देख नहीं सकेंगे, इसलिए। क्या हम किसी से घृणा कर सकते हैं, जब यह जान लें कि एक दिन हर कोई इस दोबारा न देखे जाने की जद में चला जाएगा? मुझे इस सवाल का मौक़ा मिल गया। ज्योति की आँखों से सितारे टूटने लगे। सबने उसकी सुबक सुनी। क्लास किसी जादू से जगमगा गई।

आगे बाबुशा लिखती हैं - नवमी जमात के बच्चे जीवन की सबसे बुनियादी बातें कर रहे हैं। वे अनिवार्य प्रश्नों और अस्थायित्व को समझ रहे हैं। बच्चे जीवन को आँख खोल कर देख रहे हैं। इतना कुछ घट रहा है जिसे बयान करना मुश्किल है। इतने प्रश्न आ रहे हैं , इतनी बातें हो रही हैं, जीवन पन्ने दर पन्ने खुल रहा है। खिड़की पर बैठी चिड़िया के पंख की फड़फड़ाहट और पन्नों में वड्र्सवर्थ के श्वास की फड़फड़ाहट मिल गए हैं। शिक्षक पीछे छूट जाता है, विद्यार्थी भी छूट जाते हैं। अब केवल फड़फड़ाहट का जादू बचा है। इस जादू में हर शै डूब गई है। इस क्षण कुछ भी निष्प्राण नहीं है। दरवाज़े, खिड़की, ब्लैकबोर्ड,फ़र्श, अर्श, सबमें धड़क है। इस क्षण

की कोई तस्वीर संभव नहीं। देखने की चेष्टा करती हूँ अदृश्य में रची सम्मोहक पेंटिंग को। दृश्य को देख लेना देखने की क्रिया भर है। अदृश्य को देख पाना 'देखना' है। अपलक छूट जाती हूँ। दृश्य को देखकर कविता लिखी जा सकती है। ऐसी कविताओं को पढ़ते और पढ़ाते हुए अदृश्य की उँगली पकड़ना ही होता है। कविताएँ पढ़कर, लिखकर कविता पढ़ाना एकदम नहीं आ पाता। ज्ञान से अधिक असहाय संसार में कुछ नहीं।

ऐसी कविताओं में प्रवेश करने से पहले फूलों से प्रार्थना करती हूँ, मुझे अपनी सुगंध का बल दें।

वुड्सवर्थ की आठ पंक्ति की इस कविता के बहाने बाबुषा जीवन दर्शन का एक समूचा संचार रख देती हैं।

इसी खंड में बच्चों के साथ कक्षा के जो अनुभव हैं उन अनुभवों में 'चल कहीं दूर निकल जाएँ', 'द ज्योग्रफिक लेसन', 'एक दिन तुम जान जाओगी' , 'मेरा स्वप्न है' , 'लेन्चो बचा रहे' ... इत्यादि डायरी अंश की टिप्पणियाँ न केवल रोचक हैं बल्कि इन्हें पढ़ते हुए भीतर से जिस पाठकीय आनंद का अनुभव होना चाहिए वैसा ही अनुभव हमें मिलता है। समूचा गद्य कोई रोचक कविता पढ़ने जैसा आनंद देने लगे तो उसकी पठनीयता यूँ भी बढ़ जाती है।

सारेगामापा के 'सा' खण्ड में जहाँ कि संगीत का सुर लगना आरंभ होता है और आगे सुर को एक मुकम्मल गति मिलती जाती है , इस डायरी अंश के सा खण्ड में भी कुछ इसी किस्म के सुर ध्वनित होते हैं। 'वे फरवरी के दिन थे' यह अंश हमें आल्हादित कर देता है।

इसे गद्य का अविष्कार ही कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। मशहूर पाश्चात्य लेखकों की कविताओं, कहानियों, और वक्तव्यों को लेकर गद्य के माध्यम से बड़ी साफगोई और रोचकता के साथ गंभीर विमर्श की ओर पाठकों को ले जाने का जो लेखकीय उद्यम है वह किसी कारीगर की कला साधना का एहसास कराता है। पाठकों की अपनी सीमाएँ हैं कि वह कला को देखकर उस पर मुग्ध हो जाएँ या उससे आगे जाकर उस पर चिंतन मनन करें। इस कला साधना में जीवन के गहरे राज़ छुपे हुए हैं जिसे देखना सबके बस की बात नहीं। फिर भी उसे देखने का आग्रह इस संग्रह की टिप्पणियों में ज़रूर विद्यमान है।

रे खंड में 'मैं पानी की तरफ हूँ', तुम खाली समय में क्या करती हो, खिलना और लिखना इत्यादि टिप्पणियों को भी पढ़िए तो लगता है जैसे सहज रूप में हमें कोई जीवन के गहरे अर्थ में डुबो रहा है। जीवन की दिनचर्या में जिन वैचारिक दर्शनों से वाबस्ता होते हुए भी हम एक उदासीनता में अलग थलग होते हैं उनके प्रति एक राग पैदा करने की चेतनता यहाँ मौजूद है। यह राग पैदा हो तो जीवन की गाड़ी जो कि गाहे बगाहे पटरी से उतरती रहती है उसका उतरना बंद हो। 'मैं पानी की तरफ हूँ' में 'द फायर सरमन'/बुद्ध का अग्नि प्रवचन के प्रसंग में बाबुषा वह सब कुछ कह जाती हैं जो हमें जीवन में होने वाली अचेतन अवस्था की सामान्य ग़लतियों के प्रति सचेत करता है।

ग खंड में 'फ्रेंड्स कंट्रीमेन एंड रोमन्स', हेंसी जा चुके थे , 'छूटना' , 'बी लाइक वाटर माय फ्रेंड' इत्यादि टिप्पणियाँ भी न केवल रोचक हैं बल्कि गंभीर विमर्श के द्वार खोलती हैं। छूटना टिप्पणी में अन्तोव चेखव की कथा शर्त के जिक्र के बहाने जीवन के दो पक्ष मृत्यु दंड और एकान्तिक कारावास पर एक तुलनात्मक विमर्श है कि इनमें कौन सा पक्ष मनुष्य के लिए ज़्यादा कठिन है। दोनों ही पक्षों को लेकर लोगों के जीवन में अपने अपने तर्क हो सकते हैं। पर इस टिप्पणी को पढ़िए और गंभीरता से सोचिए तो दोनों ही पक्ष एक दूसरे पर भारी पड़ते हुए दिखाई देते हैं। जीवन में बहुत कुछ ऐसा है जो अनिर्णित है।

'म' खंड के अंतर्गत संग्रह के शीर्षक वाली टिप्पणी 'भाप के घर में शीशे की लड़की' पर चर्चा न हो तो बात अधूरी रह जाएगी। इस टिप्पणी में मारा नामक एक असुर का ज़िक्र है जिसने भगवान् तथागत पर उस समय हमला किया जब सम्बोधि की पूर्व संध्या वे गहरे ध्यान में थे।

यहाँ बाबुषा सुर और असुर का ज़िक्र करते हुए लिखती हैं कि जो भी सुर में लीन हुआ असुर उसका सुर बिगाड़ने चला आता है। यह दुनिया की रीत ही है जहाँ मारा नामक असुर आदमी के जीवन में अन्दर बाहर सब तरफ विद्यमान है। वे आगे लिखती हैं... तथागत ने अपने दाएँ हाथ की मध्यमा से धरती को स्पर्श किया और सम्पूर्ण पृथ्वी में क्षण भर को भूडोल आ गया। मारा किसी सूखे पत्ते की भाँति उड़कर अन्तरिक्ष में विलीन हो गया। बाबुषा कहती हैं यह कोई चमत्कार नहीं बल्कि दुनिया की समस्त कलाओं, जीवन सूत्रों की तरह यह घटना भी गूढ़ सांकेतिकता का प्रतीक है किन्तु केवल उसके लिए ही जिसमें इस क्षण भंगुर जीवन के सार को बूझने की प्रचंड जिज्ञासा हो।

मनुष्य और उसके जीवन के सार को बूझने की उसकी प्रचंड जिज्ञासा के बीच मारा की तरह कई असुर हैं जिनके बारे में बाबुषा इस टिप्पणी में शोधपरक ज़िक्र करती हैं। मनुष्य की आत्म दुर्बलता सबसे बड़ा असुर है जो उस गूढ़ सांकेतिकता तक पहुँचने में अनगिनत रूकावटें उत्पन्न करता है। इस विमर्श के केंद्र में स्वयं को एक शीशे की लड़की से तुलना करते हुए जीवन की तुलना एक भाप के घर से वे करती हैं जहाँ एक धुँधलका छाया हुआ है।

यह धुँधलका तभी छँटेगा जब एक दिन उस लड़की की आत्मिक दुर्बलताएँ दूर होंगी।

तथागत-मारा के इस प्रसंग के बहाने बाबुषा एक सवाल भी छोड़ जाती हैं कि संगीत, साहित्य एवं इस तरह की तमाम कला साधनाओं के बावजूद मनुष्य आत्मिक रूप से दुर्बल क्यों रह जाता है? उसके जीवन से मारा जैसा असुर दूर क्यों नहीं हो पाता?

ये सवाल पाठकों को चिंतन मनन की दुनिया की ओर ले जाते हैं। फिर से यह कहने में मुझे कोई हर्ज नहीं कि यह संग्रह रोचक शैली और शब्दों की सांगीतिक धुनों के साथ हमें विमर्श की शोधपरक वैचारिक दुनिया की ओर ले जाता है। उस दुनिया में आनंद की अनुभूति भी है और गूढ़ सांकेतिकता को समझने बूझने का एक अवसर भी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

शह और मात

समीक्षक : डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : मंजूश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली- 110048,
मोबाइल- 9868182835

'शह और मात' मंजूश्री का दूसरा कहानी संग्रह है परन्तु वह लम्बे अर्से से हिन्दी साहित्य से जुड़ी हैं। उनकी कहानियाँ देश की विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं और वह स्वयं 'कथाबिंब' पत्रिका के संपादन से जुड़ी हुई हैं। इस संग्रह में कुल 12 कहानियाँ हैं, जो आज के संदर्भ से वास्ता रखती हैं।

बिना लगाम की तेज़ रफ्तार ने हमारे दैनिक जीवन को अनेक जटिलताओं से भर दिया है। जीवन की आवश्यक आवश्यकताएँ पहले भी महत्त्वपूर्ण थीं, परन्तु अब सभी के द्वारा सब कुछ लपकने और हड़पने की होड़ ने समाज का संतुलन बिगाड़ कर रख दिया है। अभी मानों सब जगह शतरंजी बिसात बसी हो, जिसमें ज़रूरी नहीं, अच्छा खिलाड़ी बाजी मार ले जाए, इसमें चालाक, चुस्त बल्कि लंपट, जुगाड़ियों के लिए जीतने के अवसर अधिक दिखाई देते हैं। परन्तु किसी की बेईमानी और चालाकी, किसी न किसी योग्य, शरीफ आदमी का हक छीनेगी, उसका नुकसान तो करेगी ही, यह बात पक्की है। क्योंकि जब साधन व संसाधन सीमित होंगे और बराबरी की नीयत नहीं होगी तो ज़ाहिर सी बात है कि एक के पास बड़ा हिस्सा जाने पर, दूसरे को कम हिस्सा ही मिलेगा। कोई-कोई इस कम हिस्से को बार-बार स्वीकार करते हुए, इसे अपनी क़िस्मत मान लेता है या वह असंतोष व परेशानी से घिरने लगता है या फिर विरोध करने पर उतारू होने पर वह अपराधिक प्रवृत्ति की ओर बढ़ने लगता है। इसी कारण समाज में आपाधापी मची हुई है, अंधेरगर्दी का माहौल बना हुआ है, जिसका जो दाँव लगता है, वह छीनने-झपटी करने पर तुला है। परिणामस्वरूप इसका प्रभाव एक ओर समाज पर पड़ता है, दूसरी ओर मानवीय व्यवहार पर। इस प्रभाव से न घर सुरक्षित रह पाए हैं, न रिश्ते और न ही व्यक्तिगत भावनाएँ। हर किसी को कोई न कोई ठेस लग रही है, कोई आँच से झुलस रहा है, कोई सुलग लग रहा है। ऐसी परिस्थितियों को देख कर मन एक बार तो यह सोचने लगता है कि क्या मनुष्य यही सब करने के लिए इस धरती पर आया है? कहाँ गई वो मानवता भरी बातें, उच्च आध्यात्मिकता से परिपूर्ण जीवन, बिना मोह-ममता के जीने की इच्छाएँ कभी बहुत ज़ोर पकड़ने लगती हैं और कभी परिस्थितिवश उलझ कर ज़मीन पर धराशयी हो जाती हैं। आज का दौर केवल उलझावों और जटिलताओं से भर गया है, जिसमें ज़िंदगी का आईना बने साहित्य में भी बार-बार इसी की परछाईं दिखाई देती है। मंजूश्री की कहानियाँ भी इन्हीं परछाईयों को अपने में समेटते हुए कभी जीवन की सच्चाई बयान करती हैं और कभी उस सच्चाई के पीछे छिपी विद्रूपता को सामने लाती हैं।

अलग-अलग विषयों से बुनी गई मंजूश्री की कहानियों में 'शह और मात' कहानी में एक मिल में काम करने वाले भोले-भाले जनार्दन को मालूम ही नहीं हुआ कि उसे मिल मालिक विजय प्रताप और यूनियन नेता मुन्ना बाबू और उसके चमचे मुरली ने कब अपनी बिसात का मोहरा बना दिया। हड़ताल में मोबाइल से उसकी फ़ोटो खींच कर, उसे कब और कैसे इस्तेमाल किया गया, उस सरल व्यक्ति को मालूम नहीं हो पाया क्योंकि वह अन्य सभी मज़दूरों की तरह अपने जीवन निर्वाह की चक्की में ही लगातार पिस रहा था। उसके सिर पर गाज तब गिरी, जब हड़ताल तो ख़त्म हो गई परन्तु उसे अस्थायी होने के कारण नौकरी से निकाल दिया गया। किसने कैसी चाल चली, उसका नाम क्यों और कैसे घुमाया गया, इसका अंदाज़ा जनार्दन और अन्य साथियों को हो ही नहीं पाया।

मंजूश्री ने स्त्री के भीतर कई प्रकार से झाँकने की कोशिश की और उन के अंतर्मन में दबी कई गुत्थियों को कहानियों के माध्यम से पाठकों के समकक्ष प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में, 'एक नई सुबह' में जहाँ पाठक प्रिया निंबलाकर की पीड़ा को महसूस करते हैं, जिसे घर की परिस्थितियों के कारण लंबे अर्से तक अविवाहित रहने पड़ा, अंतत: उसने दो किशोर बच्चों के विधुर पिता के साथ विवाह करने की सहमति दे दी। वह सभी चुनौतियाँ स्वीकार करने के इरादे

से ब्याह कर आई। उसने किशोरी पंकजा द्वारा अनेक बार बेइज़्ज़त किए जाने के बाद भी अपनी ओर से प्रयास जारी रखा और घर से दूर जाकर पंकजा के मन में नई स्त्री के प्रति मित्रता का हाथ बढ़ाने की कोंपल फूट गई। हालाँकि इसमें उसकी शिक्षिका मिसेज नीला शर्मा का भी बहुत योगदान रहा। एक बूढ़ी दादी, जो अपने जीवन में घर-परिवार और गाँव से कभी बाहर नहीं गई, परन्तु उसके मन की उमंग, सपने देखने की आदत कभी नहीं गई। अपने घर-आँगन से दिखाई देते छोटे से आसमान के टुकड़े संग ही गहराई से जुड़ी रही। 'जाओ हमरी सोनचिरैया... उड़ जाओ आकास' नामक कहानी में दादी-पोती की जोड़ी में आधुनिक और शिक्षित पोती से अधिक प्रभावित अनपढ़ बूढ़ी दादी करती है। जीवन का लम्बा समय अधीनगी और परेशानियों के साथ बिताने वाली दादी की जीवतंता, दृढ़ निश्चय और जीवन के प्रति की ललक मन मोह लेती है। लेखिका ने इस कहानी में पात्र की ग्रामीण परिवेश व भाषा-बोली और विवाह की ढेरों पारंपरिक रस्मों द्वारा विवाह के असली अर्थ भी समझाने की कोशिश की है। हमारे देश की पुरानी अशिक्षित स्त्रियाँ आज भी अपने अनुभवों द्वारा घर-गृहस्थी को सँभालने के कई नुक्ते बस यूँ ही बातों-बातों में आज की आधुनिक स्त्रियों को दे जाती हैं।

पिछले कुछ समय से समाज में धर्म के नाम पर की जाने वाली राजनीति से परस्पर नफ़रत और दूरी बढ़ने लगी। अराजकतावादी तत्व प्रत्येक समाज में होते हैं परन्तु जब किसी धर्म विशेष से नाता जुड़ जाए तो आपसी भाईचारे और स्नेह के धागे, कुछेक की नफ़रत से टूटने लगते हैं। 'चौड़ी होती दरारें' में साथ-साथ खेली-पढ़ी सहेलियों के बीच, रुखसार के भाई रहमान के स्वभाव में आते परिवर्तन के कारण दूरी आने लगी। जिसकी सुगबुगाहट जल्दी ही मोहल्ले के अन्य हिन्दू परिवारों तक जा पहुँची। 'मुट्ठी में बंद ज़िंदगी' का हँसता-खेलता शरारती बच्चा राघव कब गंभीर युवक में परिवर्तित हो गया, इसका अनुमान उसके घर-परिवार और दोस्तों-मित्रों को भी आसानी से नहीं हो पाया। हालाँकि उसकी संगति के कुछेक दोस्तों को सभी संदेह की निगाह से अवश्य देखते थे। शायद स्वयं राघव को भी मालूम नहीं था कि ऐसे दोस्तों की संगति उसे भी अपने साथ ले डूबेगी, जहाँ उन लड़कों की गैर-कानूनी साज़िश के चलते सोशल मीडिया में उनके साथ खड़े राघव को भी पुलिस ने अपनी लपेट में ले लिया था। केवल राघव इस शिकंजे में नहीं फँसा था, उसका सारा परिवार भी शक और संदेह के दायरे में आ गया था। सोशल मीडिया की हम सभी के जीवन में हुई घुसपैठ के कई ख़तरे जाने-अनजाने भुगतने पड़ रहे हैं।

''महाकुंभ और गुत्थियाँ'' कहानियाँ ऐसे लोगों से परिचित करवाती है, जो ज़िंदगी में कहीं न कहीं हार मान बैठे हैं। घर से बाहर निकल कर देखने पर ही मालूम होता है कि हम कितनी छोटी-छोटी दुविधाओं को समस्याएँ और परेशानियों को बड़े दुख मानने लगते हैं जबकि अस्पताल या रिहैब्लिटेशन सेंटर में जाकर देखें तो उनके दुख, पीड़ाओं व मानसिक संताप को देख, अपने स्वस्थ शरीर में झुरझुरी सी होने लगती है। इन स्थानों में होने वाले लोग केवल ग़रीब परिवारों से नहीं, समाज के संपन्न परिवारों से वास्ता रखने वाले हैं। परन्तु कभी अचानक ऐसी कोई घटना या हादसा घटने से उनके दिमाग पर उसका ऐसा असर हो जाता है कि फिर वे उस घटित समय में ही स्वयं को क़ैद कर लेते हैं। जिनसे बाहर निकलना उनके लिए बहुत मुश्किल हो जाता है। अस्पतालों व रिहेब्लिटेशन सेंटर के कुछ उदाहरणों को देख-सुनकर उन दुखी लोगों के साथ हमदर्दी होने लगती है। वहाँ उनका ध्यान रखने वाली नर्सें हो या डाक्टर, आया हो या स्वयंसेवी, सभी के हिम्मत की दाद देनी पड़ती है। ये दोनों कहानियाँ एक प्रकार से महाकुंभ की शुभदा और गुत्थियों की वक्ता और उस सेंटर की प्रबंधक के रूप में प्रेरणा देती प्रतीत होती है और अप्रत्यक्ष रूप से यह सलाह भी कि हमें भी अपने व्यस्त जीवन में से थोड़ा समय निकाल कर, ऐसे मानसिक व बीमार लोगों की सेवा करने के लिए डाक्टर, नर्सों, आयाओं का साथ देना चाहिए। हम जो कर सकते हैं, वही करें, इससे एक ओर देखभाल करने को मदद मिलेगी, दूसरी बीमार व पीड़ित रोगियों को सांत्वना.... हमें क्या मालूम मिलेगा, यह तो 'सेवा' करने और हाथ बँटाने पर ही मालूम होगा परन्तु इस बात का ध्यान अवश्य रखना होगा कि उनके दुख में शुभदा की तरह खो न जाएँ।

संग्रह की एक अहम कहानी 'गिरगिटी चेहरे' हैं, जो बेरोज़गार वक्ता द्वारा अपना फालतू टाइम पास करने के लिए अपने आसपास व घर में चेहरों को पढ़ने का शौक पालने से संबंधित है। तब उसने देखा कि हर जगह पर लोग मुखौटे लगाए घूमते हैं। पल-पल बदलते चेहरे असल में अपनी वास्तविकता ही खो चुके है। परन्तु उनके असली चेहरों को पढ़ते देख, उसे बहुत सुकून मिलता। उसे लगता कि शायद वह लोगों को उनके भीतर से जानने लगा है परन्तु उसका अपना वास्तविक चेहरा क्या है ? इन सब के बीच वह भी तो कहीं खो गया है.... गिद्ध कहानी में भी ऐसे ही लोगों से सामना होता है जो पड़ोसी और मित्र होने का दावा अवश्य करते हैं परन्तु किसी की समृद्धि उनके लिए ईर्ष्या व डाह का कारण ही अधिक बनती है, मौका भले मि. चड्ढा की मौत का ही क्यों न रहा हो, उनके दुख में साझीदार बनने की बजाय वहाँ मौजूद अधिकतर औरतें व पुरुष उनके घर की संपन्नता देख क रमन ही मन जल-भुन रहे थे और जिस कारण से वहाँ मौजूद थे, उसकी अहमियत उनके लिए नहीं रह गई थी।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मंजूश्री की कहानियों का दायरा बहुत विस्तृत हैं। उसके पात्रों में भारतीय ग्रामीण और शहरी ही नहीं विदेशी पात्र भी शामिल हैं जैसे- शीशों में कैद में कहानी के मि. जेम्स व ट्रेसी। ट्रेसी जो वहाँ के अकेलेपन का शिकार हुए अनेकोनेक उम्रदराज पात्रों का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है। ऐसे लगता है, जैसे मंजूश्री ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों व जीवन के अहम् पहलुओं को ही नहीं इन्हीं कहानियों द्वारा सारी दुनिया को ही समेट लिया है।

000

पुस्तक समीक्षा

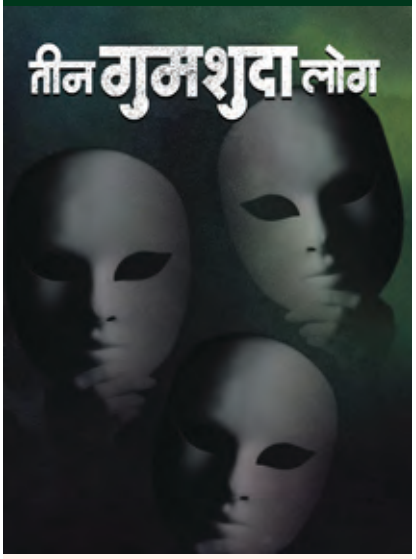

(नाटक)

तीन गुमशुदा लोग, बुल्लेशाह

समीक्षक : प्रमोद त्रिवेदी

लेखक : प्रताप सहगल

प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन प्रा. लिमिटेड

प्रमोद त्रिवेदी
मन्वन्तर, 205, सेठी नगर,
उज्जैन
मप्र- 456010
मोबाइल- 9755160197

कवि, कथाकार, नाट्य-लेखक प्रताप सहगल ने साहित्य की लोकप्रिय विधाओं में तो विपुल लेखन किया ही है पर साहित्य की अन्य तमाम विधाओं का भरपूर दोहन भी किया, जिन पर लेखकों का ध्यान कम ही जाता है, या नहीं जाता। उनमें भी इनकी रुचि और सक्रियता बराबर रही है। प्रतापजी के लिए लेखन टाइम-पास या आकस्मिक कभी नहीं रहा। उम्र की वजह से अब वे वयोवृद्ध लेखकों की श्रेणी में ज़रूर शुमार होने लगे होंगे, पर लेखन के प्रति उनमें अभी भी युवकोचित उत्साह है। इन्होंने यात्राएँ भी ख़ूब की हैं। यात्राएँ इन्हें हमेशा तरोताज़ा रखती हैं। अनुभव-सम्पन्न भी करती हैं। अभी यह तय होना शेष है कि वे अच्छे कवि हैं या अच्छे कथाकार, पर यह तय है कि नाट्य-लेखन और रंगकर्म के प्रति प्रतापजी पूरी तरह समर्पित हैं। रंगजगत् में इनके नाटकों की माँग बराबर बनी रहती है। निरंतर वैविध्यपूर्ण नाटकों की रचनाएँ करके और अपनी कहानियों को नाटक में रूपांतरित करके नाट्य-निर्देशकों की इस शिकायत को भी दूर करने का प्रयास किया है कि उन्हें वैविध्यपूर्ण और नए नाटक मंचन के लिए नहीं मिलते और उन्हें बहुत सीमित और अनूदित नाटकों पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रतापजी के नाट्य-लेखन की सक्रियता और उत्साह का अनुमान इसी से लगाया जा सकत है कि वर्ष 2022 अभी पूरे दो महीने भी नहीं बीते हैं और इनके दो प्रकाशित नाटक - बुल्लेशाह और तीन गुमशुदा लोग मेरी नज़रों से गुज़र चुके हैं। तीन गुमशुदा लोग प्रतापजी की तीन कहानियों का नाट्य-रूपांतर है। सतही तौर पर लग सकता है कि कहानी तैयार हो तो उसे नाटक में ढालना आसान काम है पर ऐसा है नहीं। मेहनत से तैयार कहानी को पहले तो कहानी के शिल्प से मुक्त करना होता है और फिर उसमें रंग-संभावनाएँ तलाशनी होती हैं। यह एक तरह से दोहरी मेहनत है पर ऐसी मेहनत से प्रताप सहगल कभी पीछे नहीं हटे, जबकि उसी दौरान वे अपने दूसरे काम, ज़ाहिर है वे भी लेखकीय ही होंगे, उतने ही परिश्रम और निष्ठा से करते रहे होंगे।

"बुल्लेशाह" नाम से लगेगा, पीरियड प्ले है। सामान्य नाटकों से भिन्न ऐसे नाटकों के लेखन की मानसिक तैयारी भिन्न होती है। बहुत कुछ शोध करना होता है। तत्कालीन भाषा और प्रेषणीयता अलग चुनौती होती है। फ़िर वह कौन सा आकर्षण पैदा करना होता है कि प्रेक्षक घरों से निकलकर प्रेक्षागार तक खिंचे चले आएँ। नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक का नायक ख्यात होना चाहिए। बुल्लेशाह नाम में वह आकर्षण है। कुछ नाम प्रेम के पर्याय हो गए हैं। बुल्लेशाह प्रेम को लौकिक धरातल से अलौकिक धरातल पर ले जाने के लिए प्रतिश्रुत है - अमीर खुसरो से शब्द उधार लूँ तो कहना होगा "छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाय के।" ऐसा नाटक दुनिया में अपनी अलग बस्ती बसा लेता है- प्रेमनगर। जिसमें वह है। उसका प्रेम है और उसकी विकलता है। समय कितना ही बदल गया हो, प्रेम का स्वरूप कितना ही बदल गया हो पर इसकी कशिश ज़रा भी कम नहीं हुई है और नाटक का नायक ही प्रेम का पर्याय हो जाए, कुशल निर्देशक के हाथों में ऐसी स्क्रिप्ट पहुँच जाए, नाटक के लिए सारे साधन जुट जाएँ, उत्साही अभिनेताओं का सहयोग मिल जाए तो नाटक का सफल होना ही होना निश्चित है। प्रताप जी के नाट्यालेख के साथ ऐसे सारे संयोग जुट जाते हैं।

कविता, कहानी, उपन्यास लेखन एक व्यक्तीय प्रयास होता है। यश-अपयश, सफलता-विफलता सभी उस व्यक्ति की, जिसने उसे रचा। पर नाटक की ऐसी विधा है, जिसकी सफलता या विफलता से कई व्यक्ति जुड़े होते हैं। इस विधान में छोटे से छोटे व्यक्ति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, चाहे वह प्रकाश-वृत्त के केन्द्र में हो या मंच से परे नेपथ्य में सक्रिय। इसमें प्रताप जी की भूमिका मज़बूत नींव रखने की है। नींव मज़बूत रख दी गई तो इमारत मज़बूत बननी ही है और सारी परख मंच पर होती है। सफलता-विफलता में सब हिस्सेदार। यहाँ तक कि प्रेक्षक भी। गति नाटक के साथ इनबिल्ट है। किसी भी वजह से नाटक में थोड़ा ठहराव आया कि नाटक विफल। सफलता का प्रमाण-पत्र भी अंतत: प्रेक्षकों से मिलता है। प्रेक्षक संतुष्ट तो नाटक

सफल। अनुभवी नाटककार को पता होता है कि झोल कहाँ आ सकता है और जागरूक नाटककार उसे दूर करने में जुट जाता है। कई बार सब व्यवस्थित होता है पर मंच पर ज़रा सी चूक सारी मेहनत पर पानी फेर देती है।

'बुल्लेशाह की सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि मंच पर बुल्लेशाह का प्रवेश एक सामान्य जन के रूप में होता है पर प्रेम के प्रति उसका समर्पण और उस अलौकिक के प्रति एकनिष्ठता उसके चरित्र को उत्तरोत्तर विस्तार और उत्कर्ष प्रदान करते हैं और जन से वह जननायक की प्रतिष्ठा पा लेता है। वह या उसका प्रेम। यही तो इस नाटक के माध्यम से नाटककार का लक्ष्य है और अपने इस ध्येय में प्रताप सहगल सफल रहे हैं।

तीन गुमशुदा लोग प्रताप जी तीन कहानियों- जुगलबंदी, क्रास रोड और मछली-मछली कितना पानी का नाट्य-रूपांतरित ख़ूबसूरत गुलदस्ता है। कहानी हमेशा पढ़ने और सुनने-सुनाने की विधा रही है तो नाटक करने और दिखाने की विधा। इसीलिए इसे 'चाक्षुष यज्ञ' कहा गया है। नाटक की अपेक्षा कहानी का स्पेस अधिक बड़ा और खुला होता है। अपनी सीमा में कहानी सब-कुछ समेट लेती है, जबकि नाटक में स्पेस की सीमा अपेक्षाकृत सीमित होती है। नाट्य-निर्देशक को इसी सीमा में असंभव को संभव कर दिखाना होता है। कहानी लिखते हुए कहानीकार को पता होता है कि वह केवल कहानी लिख रहा है जबकि नाटककार अपनी सीमाओं को जानता है। यहीं नाट्य-लेखक के कौशल की परीक्षा होती है। कई बार नाटककार और नाट्य-निर्देशक मिलकर मंचन में आ रही दिक्कतों का हल खोज लेते हैं तो कई बार नाट्य-निर्देशक को नाट्य-आलेख में हस्तक्षेप भी करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में बात बनते-बनते बिगड़ जाने की संभावना बढ़ जाती है।

मुझे लगता है नाट्य- मंचन की तुलना में कहानी का मंचन अधिक चुनौतीपोर्ण होगा, पर चुनौतियों से जूझने और कोई रास्ता निकालने का मज़ा भी कम नहीं होता। 'तीन गुमशुदा लोग' में तो एक नहीं, तीन-तीन कहानियों के मंचन की चुनौती है। इसलिए प्रस्तुति की सफलता का श्रेय नाट्य-निर्देशक को अधिक दिया जाना चाहिए।

समीक्ष्य नाटक 'बुल्लेशाह' में कथावस्तु और पात्रों के चरित्र-विकास में सीधा और उर्ध्वगामी विकास नज़र आता है। कथा विकास में भी जटिलताएँ नहीं हैं। बुल्लेशाह में नायक के मंच पर प्रवेश के साथ ही नायक से महानायक के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। दर्शक भी नायक का विकास इसी रूप में होता देखना चाहते हैं और अन्तत: नायक बुल्लेशाह जननायक की गरिमा पा लेता है। 'बुल्लेशाह' नाटक जहाँ प्रेम का महिमागान है, वहीं 'तीन गुमशुदा लोग' में नाट्य-नायक की परंपरागत छवि नज़र नहीं आती है। कृषि-सभ्यता में व्यक्ति व्यक्तित्ववान होते थे, बीसवीं सदी में व्यक्तित्व का क्षरण शुरू हो जाता है और इक्कीसवीं सदी की महानगरीय चकाचौंध में मनुष्य की गरिमा नष्ट हो जाती है। महानगरीय विकास ने सोच, जीवन-शैली, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, अहंकार, अलगाव, हमपन के भाव को तिरोहित कर दिया है। रिश्तों का स्थायित्व समाप्त हो गया है। आदमी की पहचान उसके गुणों से नहीं, उसके 'पैकेज' से की जाती है। आसपास चकाचौंध में अँधेरा भी ख़ूब घिरा और नैतिक मूल्यों की जगह अवसरवादिता ने ले ली। स्पर्धा में और सफलता पाने के लिए लोग किसी भी हद तक जा सकते हैं। परिवार की अहमियत समाप्त हो गई। आज जो रिश्ता नज़र आ रहा है, कल भी नज़र आएगा, इसकी कोई गारंटी नहीं रही। मनुष्य आधुनिक सभ्यता की जटिल महामशीन का एक अदना-सा पुर्ज़ा होकर रह गया।

'तीन गुमशुदा लोग' इसी जटिल जीवन की प्रामाणिक प्रस्तुति है। अपनी शैली में इस नाटक की प्रस्तुति एब्सर्ड चाहे न रही हो पर विघटन, बिख़राब की ध्वनियाँ और उथल-पुथल की स्थितियाँ अपने वाचिक में स्थितियों के खोखलेपन को उभारती हैं, चाहे अपने वाकजाल में पात्र वास्तविकताओं को ढँकने की कोशिश करते नज़र आएँ, तब भी।

नाटक की प्रस्तुति में तीन कहानियों का समावेश है। नाटक पूरे रन-थ्रू में मंचित होना है, पर प्रेक्षकों के लिए मानसिक रूप से शिफ्ट होने के लिए जो अंतराल ज़रूरी होता है, वह यहाँ नहीं है। एक कहानी की नाट्य-प्रस्तुति हुई और दूसरी कहानी का नाट्य-प्रदर्शन शुरू हो जाता है। यानी एक तनाव से मुक्त होकर दूसरी तरह के तनाव में प्रवेश के लिए पूरी तरह से साँस लेने तक का अवकाश नहीं है, पर इस शिफ़्टिंग के लिए हर बार नई मोमबत्ती जलाई जा रही है, वह अपनी प्रतीकात्मकता में सबकुछ व्यक्त कर देती है। मेरे ख़याल से कथा-परिवर्तन की इससे बेहतर कोई युक्ति हो भी नहीं सकती थी। एक मोमबत्ती का पूरी तरह जल जाना और नई मोमबत्ती का जलना सांकेतिक रूप से नया- नान्दी पाठ और नई प्रस्तावना का आलोकमय उपक्रम है। इसी अवकाश में (चाहे वह निमिष मात्र का ही हो) प्रेक्षक नए नाट्य-व्यापार और अभिनीत नए जीवन की विसंगत त्रासदियों को ग्रहण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाता है।

परंपरागत नाट्य-प्रदर्शन और तकनीक में (सुविधाओं में भी) काफी इज़ाफा हुआ है। कहानी ही क्यों, अब तो कविताओं की सकल और प्रभावी प्रस्तुतियाँ हो रही हैं। तकनीकी साधनों के प्रयोग ने नाट्य-आस्वाद के धरातल ही बदल दिये हैं। धरातल बदले ही नहीं, व्यापक भी हुए हैं। मंच की परंपरागत अवधारणा भी बदल गई है तो इसका इस्तेमाल भी बदल गया है। यह और भी बदलता रहेगा। नई वास्तविकताओं को मूर्त करने के लिए बदलाव ज़रूरी भी है। लेखन के स्तर पर नया मुहावरा आत्मसात् करने के लिए भाषा भी बदलेगी। दर्शकों को भी नए रंग-प्रयोगों के अनुरूप ढलना ही होगा। रंगकर्म का विकास भी तेज़ी से होगा। समय की माँग के अनुरूप नाट्य-लेखन का स्वरूप खंडित होगा। नाट्य-विधा अधिक मुक्त होगी। कहानियों का नाट्य-मंचन संभावना के नए द्वार खोलेगा। इस नई पहल के लिए प्रताप सहगल और उनके रंगकर्मी साथी और सहयोगी बधाई के हक़दार है- 'हम कौन थे? क्या हो गए? और क्या होंगे अभी.....।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

काला सोना

समीक्षक : प्रगति गुप्ता

लेखक : रेनू यादव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

जब हम अपने आसपास की स्त्रियों को देखते है तब प्रथम दृष्टया लगता है स्त्रियाँ बहुत आगे बढ़ गई हैं और उन्होंने हमारे विकसित समाज में एक विशेष जगह बना ली है। परंतु जब हम अपनी दृष्टि को थोड़ा और विस्तार देकर स्थितियों के गहरे उतरते हैं; परत दर परत सच्चाई खुलती है। सतही सच्चाई के विपरीत कुछ पीड़ाएँ और व्यथाएँ अनकही होती हैं; जिनको गहरा पारखी मन ही उतर पाता है। ऐसा करना उसे बेचैन करता है क्योंकि इन अनकही व्यथाओं के न ख़त्म होने की वज़ह कुछ हद तक स्वयं स्त्रियाँ ही है, जो भुगतने के बाद भी अपनी कुंठाओं पर विजय नहीं प्राप्त कर पाती। किसी भोग्या के साथ खड़ी नहीं हो पातीं और इसका फ़ायदा पुरुष उठाता है।

रेनू यादव अपने कहानी संग्रह "काला सोना" में ऐसी स्त्रियों की कहानियाँ गढ़ती हैं, जिनकी पीड़ाएँ किसी दूसरे को मरहम लगाने से नहीं घटतीं बल्कि उनके ख़ुद विद्रोह करने पर शांत होती हैं। रेनू के स्त्री पात्र कुछ हद तक पीड़ा सहती हैं; फिर अपनी सोची-समझी हुई दिशा की ओर विरोध कर बढ़ जाती हैं।

मनुष्य की प्रवृत्ति स्वार्थ से जुड़ा है। नशा किसी भी चीज़ का हो, व्यक्ति विशेष उसकी पूर्ति के लिये सभी सीमाओं को तोड़ देता है। ऐसे में व्यक्ति शरीर से ऊपर नहीं उठ पाता। शरीर से जुड़ी भूख कैसी भी हो वह व्यक्ति के विवेक को जाग्रत ही नहीं होने देती। विभिन्न भूख की पूर्ति में हर संबंध अपनी गरिमा खो देता है। यह सच है कि भूख अपराध को जन्म देती है।

बाछड़ समुदाय में वेश्यावृत्ति को बुरा नहीं माना जाता। माँ-बाप के लिए बेटियाँ काला सोना यानी अफीम के जैसी मूल्यवान् होती है क्योंकि वहाँ बेटियाँ वैश्यावृत्ति कर कमाई करती हैं। बचपन में माँ-बाप के प्रेम में बंधी नायिका उनके मन का सा ही करती है। जब वे उसकी ख़ामोशी पर भी अपना अधिकार जमा कर उसके दोहन की प्रक्रिया को बढ़ा देते हैं, वह अनुकूल समय मिलते ही विद्रोह कर पलायन कर जाती है। कहानी की नन्हीं मासूम पात्र कहती है... "दीदी और चाची लोग बड़ी लालची थीं... बस हँस कर मेरी बात टाल देतीं, यह गुब्बारा फूलाने के लिए नहीं है, फूलने से बचाने के लिए है।"

किन्हीं भी आरोपित परिस्थितियों का विद्रोह करने के लिए मन से सुदृढ़ होना अत्यंत आवश्यक है। ऐसे में नायिका चुप नहीं बैठती लावा उगलती है - "अम्मा ने लाल रंग का लहँगा

प्रगति गुप्ता
58, सरदार क्लब स्कीम,
जोधपुर – 342011, राजस्थान
ईमेल- pragatigupta.raj@gmail.com

पहना कर मुझे रच-रच कर सजाया। ऐसा लग रहा था जैसे मैं नवरात्रि के दिन कन्या पूजन के लिए जा रही हूँ या विवाह के लिए लाल जोड़े में सजी एक दुल्हन या बलि से पहले पूजी जाने वाली कोई पशु।"

काला सोना कहानी की दोनों मुख्य स्त्री पात्रों को चिकन से नफ़रत है। इसके पीछे छिपा हुआ मनोभाव उनके अतीत की उस पीड़ा और वेदना का प्रकटीकरण है, जिसे दोनों स्त्रियों ने भोगा है।

अमरपाली ठाकुरों के व्याभिचार से जुड़ी कथा है। खेतों में काम करने वाली न सिर्फ मज़दूरनें उनके अनाचार से पीड़ित हैं बल्कि उनकी पत्नियाँ भी रखैलों की उपस्थिति से चोटिल हैं। वे अपने घर के ठाकुरों के अपराधों को ढकती भी हैं और प्रताड़ित भी होती हैं। इस कहानी में मजबूरी का प्रतिरूप रखैल पात्र सशक्त किरदार के रूप में उभर कर आता है - "पाप की गठरी जनि कहो ठकुराइन.. इ हमार लइके हैं.. खाली हमार।"

टोनहिन विधवा औरत की पीड़ाओं, यंत्रणाओं, और प्रताड़नाओं का सजीव चित्रण है, जिसे गाँव का हर मर्द इस्तेमाल करना चाहता है और हर स्त्री अपनी कुंठा उतारने का माध्यम बनाना चाहती है।

खुखड़ी कहानी एक ऐसी स्त्री की व्यथा है, जिसके माँ-बाप ससुराल वालों को उसके गौने पर गगरी भर सोने-चाँदी की मोहरे देते हैं मगर ससुराली आजीवन उसके हाथ पर एक रुपया भी नहीं रखते। वह सारी उम्र उस परिवार में अपने अस्तित्व को खोजती रह जाती है। अच्छा खाना,पीना और पहनना क्या होता है; वह कभी महसूस नहीं कर पाती। कहानी का नायक उससे तीसरा विवाह करता है। वह स्त्री कहती है- "हमारे पाँच लइके हो गए लेकिन मलिकार कभी हमसे न परेम से बोले न बतियाये... " / "साठ-पैंसठ की उम्र हो गई जिनगी छुछ्छ बीत गई।"

यह कहानी जैसे-जैसे परत दर परत खुलती है पाठक को अपने साथ-साथ नायिका की पीड़ा से बाँध लेती है। पाँच बेटों की माँ, पाँच बहुओं और दर्जन भर पोते-पोती, नाती-नातिन को कुछ नहीं दे पाती उनके ताने सुनकर भी चुप रह जाती है क्योंकि उसके पास उन्हें खुश रखने के लिये देने को रुपया नहीं। उसके पास पीहर से मिली एकमात्र जागीर भैंस है। मरने से पहले जब वह उसे बेचने की इच्छा जाहिर करती है; सब मज़ाक उड़ाते हैं। घर के सभी पुरुषों और स्त्रियों में कानाफूसी शुरू हो जाती है कि वह भैंस बेचना क्यों चाहती है?

भैंस बेचकर जब रुपया मिलता है; वह सबसे पहले उस रुपए को अपने हाथ में लेने को कहती है। जैसे ही रुपया उसे हाथ में रखा जाता है; वह फूट-फूटकर रो पड़ती है; उसकी पीड़ा को वहाँ समझने वाला कोई नहीं होता। वह कहती है - "हमारे पास आँसू, सबर और दरद था, हम यही तुम सबको दे पाए... भइस हमारे मायके से आई थी, वही हमारी पूँजी थी.... हमारे जीवन की पूँजी हमारे मरने के बाद घर की सभी औरतों और लइकनियों में बराबर-बराबर बाँट देना।"

इस कहानी में स्त्री-संघर्ष बहुत मार्मिक रूप से उतारा गया है। स्त्री जीवन की यही सच्चाई है कि जिस स्त्री के साथ पुरुष उम्र भर असंख्य खेल खेलता है, उसे पाई-पाई के लिए भिखारन बना देता है। यह कहानी एक स्त्री के स्वाभिमान की चरम की कहानी है, जब इंसान को अपना स्वाभिमान का पता चल जाता है तब या तो वह मौन धारण करता है या फिर विद्रोह करता है। इस कहानी में नायिका विद्रोह करने की स्थिति में नहीं इसलिए वह मौन धारण किए हुए है। वह पूरे परिवार के जितने ताने सुन चुकी है, वह भैंस बेचकर उनका मुँह बंद करना चाहती है। इसे मूक विरोध कहेंगे।

वसुधा कहानी में भाषा का सौंदर्य अनूठा है। इस कहानी में प्रकृति को बहुत ख़ूबसूरत रूप से प्रेम में पगा पन्नों पर उतारा गया है। नायक-नायिका के नाम प्रेम व प्रकृति का चित्रण करते समय ध्वनित होता है। यह कहानी भी अन्य कहानियों की तरह बहुत अच्छे से बुनी गई है। प्रेम का अंत जिस कुरूपता के साथ उभरता है, पाठकों को सचेत करता है।

कहानी नचनिया एक पुरुष के नाच से जुड़े पैशन की कहानी है। जिसे उसकी पत्नी समझना नहीं चाहती। डर कहानी कोरोना वायरस की त्रासदी से जुड़ी हुई कहानी है। जहाँ हर व्यक्ति एक ख़ौफ़नाक ख़्वाब से गुज़रा है और इस खौफ़ से निकलने के लिए छटपटाया है। अपनों को जाते हुए देखना चाहे वह स्वप्न में ही क्यों न हो; व्यक्ति डर ही जाता है।

काला सोना, वसुधा, अमरपाली, चऊकवँ राँड़, खुखड़ी, टोनहिन, मुँहझौसी जैसी कहानियाँ समाज के उस पक्ष का अनावरण है; जहाँ स्त्री के अस्तित्व को नकार कर उस पर पुरुष अपना आधिपत्य ज़माना चाहता है। इन कहानियों की स्त्रियों की पीड़ा और उनका संघर्ष, सोचने पर मजबूर करते हैं।

रेनू यादव की कहानियाँ मज़बूत नायिकाओं के विद्रोह की कहानियाँ हैं। हर कहानी के अंत तक पहुँचते-पहुँचते नायिकाएँ विवेकपूर्ण निर्णय लेती हैं और समाज व पाठक के लिए प्रेरक संदेश छोड़ देती हैं। सभी कहानियाँ बहुत रोचक व प्रभाव छोड़ने वाली हैं।

कहानियों की सांकेतिक भाषा व सौंदर्य पाठक के दिल और दिमाग पर प्रभाव छोड़ता है। इन कहानियों में बहुत सी ऐसी पंक्तियाँ है, जिसके गर्भ में बहुत सी विशेषताएँ छिपी हुई हैं, जिन्हें रेखांकित किया जा सकता है।

अधिकांश कहानियों के कथानक अलग व ग्रामीण परिवेश के हैं। पात्रों के चरित्रों को उसी के अनुरूप बुना गया है। उनकी भाषा भी वैसी ही है। सभी कहानियाँ सकारात्मक बिंदु पर विराम लेती हैं। कन्या भ्रूण हत्या, व्यभिचार, वैश्यावृत्ति, समलैंगिकता, एसिड अटैक, विधवा दुर्दशा, बाल विवाह,साधुओं के प्रपंच,जादू टोना इत्यादि जैसे ज़रूरी मुद्दों के इर्द-गिर्द कहानियों के कथ्य हैं। रेनू जिस जगह से आती हैं उन्होंने वहीं की भाषा में कहानियों को रचा है। ऐसा करने से अभिव्यक्ति सरल और सहज हो जाती है। कुल मिला कर सभी कहानियाँ अच्छी हैं; पाठकों को प्रभावित करेंगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

ओ,जीवन के शाश्वत साथी

समीक्षक : डॉ.नीलोत्पल रमेश
लेखक : डॉ. मयंक मुरारी
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर ,बुध बाज़ार
गिद्दी -ए, जिला - हजारीबाग
झारखंड - 8291082
मोबाइल - 9931117537
ईमेल - neelotpalramesh@gmail.com

'ओ,जीवन के शाश्वत साथी' कविता-संग्रह की कविताएँ अनहद की तलाश में लिखी गई हैं। अनहद की खोज में निकला कवि अपनी अंतर्यात्रा के माध्यम से अपने अनुभव को कविताओं में पिरोता चलता है। वर्तमान समय बहुत ही भयावह होते जा रहा है। लेकिन इस दौर में भी कवि मानवीय संवेदना को बचाये रखने के पक्ष में है। इस कविता-संग्रह के माध्यम से आसपास के परिवेश को साफ-साफ देखा और महसूस किया जा सकता है।

'ओ,जीवन के शाश्वत साथी' डॉ. मयंक मुरारी का दूसरा कविता-संग्रह है। इसके पहले एक कविता-संग्रह 'यात्रा बीच ठहरे कदम' प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुका है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चा में भी आई हैं। डॉ. मयंक मुरारी मूलत: एक चिंतक हैं, जो इतिहास, धर्म, राजनीति, अध्यात्म और दर्शन पर लगातार लिखते रहे हैं। यही कारण है कि इनकी कविताओं में ये चीज़ें स्पष्ट रूप से वर्णित होती आ रही हैं।

इस कविता-संग्रह की एक कविता 'सतत स्मरण के संग' के माध्यम से कवि ने अपनी प्रिया को जीवन का शाश्वत साथी कहा है। उससे निवेदन करता है कि मेरी अर्चना को तुम स्वीकार करो। मेरी आँखों के सामने जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, उसमें तुम्हारी ही छवि दिखती है। यानी मेरे भीतर और बाहर तुम ही तुम हो। इतना ही नहीं मेरी श्वासों में भी तुम ही आती-जाती रहती हो। इसे कवि ने लिखा है- "प्रत्येक घटना में जो मैं देखता हूँ / और, जो कुछ भी है, / उसमें बस तुम हो / भीतर और बाहर तेरी ही स्मृति।"

'एक कदम अज्ञात में' कविता के माध्यम से कवि ने संसार में चलायमान चीज़ों में ऊर्जा को महसूस किया है। बीज का उगना, पेड़ का बढ़ना, नदी का बहना, सूर्य-चाँद-धरती-हवा का चलना। यानी सबमें ऊर्जा की गति निहित है। भले ही वह हमें दिखाई नहीं पड़ती है, पर उसकी गति हमें एहसास नहीं होता है। यही नहीं हमारे जीवन में भी अज्ञात ऊर्जा का संचार होता रहता है। कवि ने इसे लिखा है- " सूर्य, चाँद, धरती, हवा और हम / चलते हैं, क्यों चलते हैं ? / हम और सब बस ऊर्जा हैं / और हमारी गति बिल्कुल ज्ञात नहीं।"

'अंतर्यात्रा' कविता के माध्यम से कवि ने बीज की अंतर्यात्रा का मार्मिक वर्णन किया है। बीज किसी न किसी रूप में पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त है। इसी बीज की अंतर्यात्रा के परिणामस्वरूप बुद्ध को निर्वाण और महावीर को अर्हत प्राप्त होता है। कवि ने बीज की व्यापकता का वर्णन इस प्रकार किया है- " विचारों को विस्मृत कर / जब अंतर्यात्रा के पथ पर कोई चला / तो, यह बीज मुखरित हुआ। / बुद्धत्व के साथ यह बीज / व्यापक और विस्तृत होकर विश्व में छाया "

एक अन्य कविता 'अब विश्राम के तट पर' के माध्यम से कवि ने जीवन की अंतिम बेला की यात्रा का वर्णन किया है। जब जीवन मिला, तो ऐशो-आराम की ज़िंदगी गुज़ारी, अब जाने की बेला आई तो पीछे लौटकर देखने पर कई बिंब-प्रतिबिंब दिखाई पड़ते हैं, जो विश्राम के तट पर ले जाने को उत्सुक है। कवि ने इसे यों व्यक्त किया है - " अपनी ही परछाई के संग / बिंब-प्रतिबिंब बनाता / जीवन सरिता में / सतत तरल उत्प्लावन के बाद / अब विश्राम के तट पर।"

'नए सूर्योदय के लिए' कविता के माध्यम से कवि ने मानवीय संबंधों की बहुत ही बारीकी से पड़ताल की है। हमारे रिश्ते-नाते अब अतीत के गह्वर में चले गए हैं। अब ये दिखाई नहीं पड़ते

हैं। हमारी परंपराएँ विलुप्त होती जा रही हैं। यही कारण है कि गाँव की मर्यादाएँ भी ख़त्म होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में कवि ने फिर से वही स्थिति-परिस्थिति की कामना की है। गाँव के बदलते परिवेश को साफ-साफ देखा जा सकता है, इन पंक्तियों में - "अतीत की पहचानी भूमि / से उखड़ रहे पाँव, / परंपरा की कड़ियों में अब / नहीं बचा अपना गाँव।"

'वृक्ष बूढ़ा नहीं होता है' कविता के माध्यम से कवि ने वृक्ष की जिजीविषा का वर्णन किया है। वृक्ष सर्दी, गर्मी और बरसात को सहते हैं। यानी वे एक ही जगह पर स्थिर रहकर सब कुछ सहन करते रहते हैं। जबकि आदमी में कई तरह की भावनाएँ जीवित रहती हैं, जो उसको बेचैन किए हुए रहती हैं। यही कारण है कि आदमी बूढ़े होते हैं और वृक्ष बूढ़े नहीं होते हैं। समय के साथ सब थक जाते हैं, पर वृक्ष सृजन के जोश में रहते हैं। उनके अंदर प्रेम की भावना निहित रहती है - "वेद की ऋचाएँ / बुद्ध का ज्ञान / और स्वास्थ्य का कोष होता है / जीवन में सब थक और / समय के साथ सब पक जाते हैं / केवल वृक्ष प्रेम के भाव में रहते हैं। / प्रेम की अनुभूति में / वे सृजन के जोश में होते हैं।"

इसी प्रकार 'हमारा यह बंधन' कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य के अस्तित्व की तलाश की है। मनुष्य के निधन के बाद भी उसका अस्तित्व रह जाता है। हमारी बातें, हँसी, उसका संबंध सब कुछ समय के गर्भ में संचित हो जाता है। एक समय ऐसा आयेगा, जब हमारे अस्तित्व की तलाश करके विज्ञान उसे संरक्षित कर लेगा। इसकी हमेशा आशा करनी चाहिए। कवि ने लिखा है- " एक दिन हम चले जाएँगे / हमारी बातें, हमारी हँसी और हमारा संबंध / लेकिन, कुछ भी नष्ट नहीं होगा / सब समय के गर्भ में रहेंगे / अस्तित्व में गूँजती हमारी आवाज़ें / गर्म, सजीव और गति के साथ।"

'हम सोये हुए लोग' कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य की सुषुप्तावस्था का जिक्र किया है। मनुष्य के अंदर स्वप्न पलते-बढ़ते हैं। वह स्वप्न में कई झंझावतों से जूझते रहता है। इन्हीं स्वप्नों के बदौलत कोई सुकरात, कोई राधा, कोई ईसा, कोई बुद्ध और कोई नानक बन जाते हैं। कवि ने लिखा है- " हमारे चारों ओर सोए हुए लोग हैं / कभी कोई सुकरात जागा, कोई राधा जागी / तो किसी ने ज़हर का प्याला बढ़ा दिया। / ईसा ने बोला तो सूली पर लटका दी। / बुद्ध को देवता बना दिया और नानक को सद्गुरु।"

'ऊर्जा के उद्गम' कविता के माध्यम से कवि ने सृष्टि में व्याप्त ऊर्जा का ज़िक्र किया है। फूलों का खिलना, पत्तों का आना, काँटों का बनना, फलों का तैयार होना - ये सब ऊर्जा से ही संचारित होते हैं। ऊर्जा की अनुभूति सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। कवि की दृष्टि वहाँ तक पहुँची है, जहाँ तक हमारी दृष्टि नहीं पहुँच पाती है। कवि ने लिखा है - "फूल खिलते हैं ऊर्जा से / काँटे भी ऊर्जा से निकलते हैं - / फूल से फल उसी ऊर्जा से बनता है। / ऊर्जा छिपकर बैठा है - / पत्ते, फूल और फल में"

डॉ. मयंक मुरारी की कविताएँ सहज ही पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। एक ओर इनकी कविताओं में असीम से ससीम की यात्रा है तो दूसरी ओर अनहद से अर्चना भी है। अस्तित्व के स्वरों के साथ यात्रा करते हुए इनकी कविताओं में प्रेम की अनुभूति भी सहज महसूस होती है। कवि जीव और जगत् के लिए भी चिंतित है। वह जगत् के कल्याण के लिए कविताएँ लिखता है। इन कविताओं को पढ़ते समय पाठक इन सारी चीज़ों को अनुभूत कर सकता है।

लेखक ने अपनी अनुभूति में लिखा है - "अग्नि नहीं करुणा, हिंसा नहीं अहिंसा, क्रांति नहीं जागरण और अहम नहीं वयम् को केंद्र में रखकर रचनाएँ लिखता हूँ। ऐसी कविताएँ किस श्रेणी में आएगी, यह मैं नहीं जानता हूँ, लेकिन इतना प्रयास करता हूँ कि पाठक तक हमारी कविताएँ संप्रेषित हो जाए।" डॉ. मयंक मुरारी की कविताओं में संभावना है। ये कविताएँ इनके पहले के संग्रह से आगे की हैं। इनमें प्रौढ़ता दिखाई पड़ रही है। संग्रह के कवि को मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ!

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2022

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

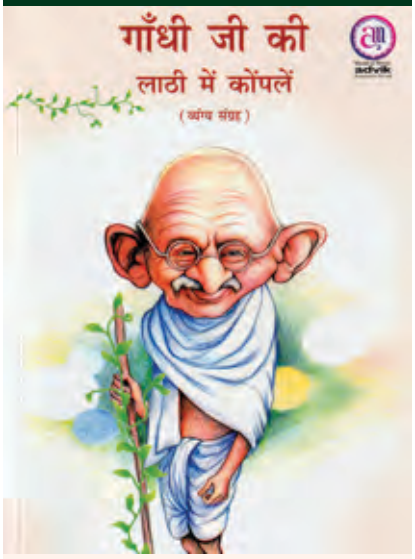

(व्यंग्य संग्रह)

गांधी जी की लाठी में कोपलें

समीक्षक : कैलाश मंडलेकर
लेखक : डॉ. जवाहर चौधरी
प्रकाशक : अद्रिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली

कैलाश मंडलेकर
15-16, कृष्णपुरम कॉलोनी, जेल रोड,
सिविल लाइन्स माता चौक खंडवा म. प्र.
450001
मोबाइल- 9425085085, 9425086855
ईमेल- kailash.mandlekar@gmail.com

डॉ. जवाहर चौधरी ने अपने नए व्यंग्य संग्रह "गांधी जी लाठी में कोपलें" के प्राक्कथन में कहा है कि हिन्दी में बड़े-बड़े व्यंग्य लेखक है और इनके बीच जवाहर चौधरी का नाम बहुत छोटा है। जब भी कोई लेखक अपने आत्मकथ्य में ख़ुद को छोटा कहता है तो इसे उसकी सहज विनम्रता नहीं मानना चाहिए। इसके निहितार्थ कुछ और भी हो सकते हैं बल्कि होते ही हैं। फिर लेखक यदि व्यंग्यकार है तो पक्का समझ लीजिये कि मामला उतना सीधा सादा नहीं है। बहरहाल, चौधरी जी वरिष्ठ व्यंग्यकार हैं और बड़े भी। उनकी किताब का नाम गांधी जी की लाठी में कोपलें, ध्यान आकृष्ट करता है। गांधी इन दिनों कई कारणों से चर्चा में हैं, बल्कि भारतीय जन जीवन में हमेशा से ही चर्चित रहे हैं। गांधी का जीवन और उनकी मृत्यु दोनों ही विश्व इतिहास की अविस्मरणीय घटनाएँ है। उल्लेखनीय है कि जो लोग गांधी के पक्षधर हैं और जिन्होंने गांधीवाद का लबादा ओढ़कर सतत उनका मूर्ति भंजन किया है, गांधी उनके लिए भी ज़रूरी है और जो गांधीवाद से असहमत हैं उनके लिए तो और भी ज़रूरी। ख़ैर, जवाहर चौधरी के इस व्यंग्य संग्रह में गांधी को लेकर सिर्फ एक व्यंग्य रचना है पर संग्रह की तमाम व्यंग्य रचनाओं में सत्ता और व्यवस्था के ख़िलाफ़ वैसी ही असहमति और अवज्ञा है जैसी गांधी अपने समय में उपनिवेशवादी शासन के ख़िलाफ़ दर्ज कराते रहे थे। कहने का तात्पर्य यह कि संग्रह की अधिकांश रचनाओं का मूल स्वर राजनीति केन्द्रित है। जवाहर चौधरी वर्तमान राजनीतिक अंतर्विरोधों पर तीखे प्रहार करते हैं। पर यह तीखापन हर बार कटु नहीं होता इसमें कहीं निर्मल हास्य बोध भी शामिल है। जवाहर चौधरी के पास विषयों की कमी नहीं है। व्यंग्य जब सध जाता है तब किसी भी आम फहम घटना या स्थिति को व्यंग्य का विषय बनाया जा सकता है। जवाहर चौधरी इस कला में पारंगत हैं। महामारी के दौर में व्यवस्था गत लापरवाही, बाज़ार तथा मीडिया के विद्रूप, वैयक्तिक और सामाजिक आचरण में व्याप्त पतनशीलता आदि अनेक विषयों पर

लिखे गए व्यंग्य इस संग्रह में मौजूद हैं। जवाहर चौधरी की भाषा में व्यंजना का वह मुहावरा है जो सरल है, आम जन की रोज़मर्रा की बतकही से उपजता है, लेकिन परिणति तक पहुँचता है और सोचने पर विवश करता है। जवाहर चौधरी की व्यंग्य यात्रा लम्बी है और यही कारण है कि वे समसामयिक सामाजिक विद्रूपों की शिनाख़्त आसानी से कर लेते हैं। और यही कारण है कि उनके व्यंग्य सीधे अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं।

बानगी के तौर पर यहाँ कुछ रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। "नए अंधों का हाथी" नामक व्यंग्य में एक प्रचलित रूपक के मार्फ़त वर्तमान राजनीतिक दुर्व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। इसके केंद्र में लोकतंत्र की पतनशीलता है जहाँ, हाँ में हाँ मिलाने वालों का समूह और रीढ़हीन समर्थकों की टोली लोकतांत्रिक व्यवस्था को क्षीण कर रही है। यह राजनीतिक गिरावट का दौर है। पर इसकी ज़िम्मेदारी सिर्फ नेतृत्व पर नहीं थोपी जा सकती। नेतृत्व तो एक बड़े जनवाद की कोख से जन्म लेता है तब ज़िम्मेदारी उस जन की भी है , उसके विवेक की भी और दृष्टि की भी जिसके बीच से नेतृत्व जन्म लेता है। स्पर्श से यदि हाथी की शिनाख़्त की जाएगी तो जो हाथी बरामद होगा वह असली नहीं होगा। हमें खुली और सजग आँखों से हाथी को चिह्नित करना होगा। वरना, जवाहर चौधरी कहते हैं कि राजनीति वह खेल है जो यदि ठीक से खेली जाए तो "मेंढक ही आगे चलकर हाथी हो जाता है"। " कठिन डगर दलित के घर की" में दलित के घर भोजन करने के प्रचलित ढकोसले को व्यंग्य का विषय बनाया गया है। आजकल इस किस्म की घटनाएँ बहुत आम फहम है। इस देश में समतावादी समाज के निर्माण तथा सामाजिक भेदभाव के ख़ात्मे का विचार वर्षों से चल रहा है। लेकिन इस तरह के कृत्यों ने प्राय: दलित को और ज़्यादा अस्पृश्य ही बनाया है, उसके आत्म सम्मान को कम ही किया है। दलित के घर खाना खाने जाने वाले नेता के आभिजात्य पर यह रचना जमकर प्रहार करती है। "भगोड़ा आदमी" में सिस्टम की लापरवाही और दुर्व्यवस्था पर व्यंग्य है। इतने सारे बैंक घोटालों के बाद भी हम भगोड़ों को चिह्नित नहीं कर पाते तो इसका अर्थ यह भी है कि यह सारा मामला एक व्यापक षड्यंत्र का ही हिस्सा है। पार्टी को शरीर चाहिए दिमाग़ नहीं में पार्टी की सदस्यता की बुनियादी अर्हता यह है कि यहाँ सोचने की स्वतंत्रता नहीं है। जिसे सदस्यता चाहिए वह दिमाग़ बाहर रख कर आए जैसे मंदिर में जूते बाहर रखे जाते हैं। "खोपड़ी अगर ठस हो और ऊपर सींग ऊगे हों तो ले सकते हैं पार्टी में"। "बेमारी बाज़ार में राम देशी वीर" में महामारी की आपदा के दौरान एक इंजेक्शन विशेष की खरीदी को लेकर व्यंग्य कथा बुनी गई है। इसमें हास्य है। लेकिन इसका करुण पक्ष यह है कि एक भोला और अपढ़ ग्रामीण इंजेक्शन बेचने वाले दलाल से मोल-तौल करते हुए मूर्खता और हास्य का आलंबन बनता है। पर यहाँ तर्क की एक उँगली व्यंग्यकार की तरफ भी उठनी चाहिए कि वह संकट की इस घड़ी में दवा माफियाओं को जुतियाने की बजाय एक इनोसेंट किसान की अशिक्षा और भोलेपन को व्यंग्य का ज़रिया बना रहा है। जवाहर चौधरी इस आरोप से बच नहीं सकते। जिस तरह सम्मानित होने की एक ललक होती है उसी तरह सम्मान करने वालों का भी एक मिशन हुआ करता है। इस मिशन में लगे हुए लोगों का एक संकट यह भी है कि कोई ठीक-ठाक आदमी नहीं मिलता जिसका सम्मान किया जाए। "सम्मान के लायक कोई ढंग का आदमी सपड़ नहीं रहा है"। मीठा कितना रखोगे सम्मान में, नामक व्यंग्य में इस विसंगति पर ज़ोरदार व्यंग्य है। पुराना कोट में व्यक्ति की उस प्रवृत्ति पर व्यंग्य है जो आत्मुग्धता से ग्रस्त है। कई बार विरासत और परम्परा को सहेजने की आत्ममुग्धता इस हद तक बढ़ जाती है कि व्यक्ति का आचरण सामान्य से परे चला जाता है, यह एक तरह की मानसिक व्याधि है। जवाहर चौधरी इस आत्ममुग्धता और संग्रह वृत्ति पर जम कर प्रहार करते हैं। गांधी की लाठी में कोपलें शीर्षक से लिखी व्यंग्य फैंटेसी इस संग्रह की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। यहाँ मीडिया की वाचालता और अतिसक्रियता पर गहरा व्यंग्य है। अजूबा यह है कि गांधी की लाठी में कोपलें आ गई हैं। तथा मीडिया इस ब्रेकिंग न्यूज़ को भुनाना चाहता है। हमारे समय की सचाई यह है कि राजनीतिक हलकों में गांधी एक ऐसी धरोहर है जिसे इस्तेमाल करके हर पार्टी अपने मेनिफेस्टो को चमकदार बनाना चाहती है। लेकिन दुर्भाग्य यह कि गांधी की देह में फँसी गोलियों को निकालने की तरफ किसी का ध्यान नहीं है। इस दौर की पतनशील राजनीति के इस अन्तर्विरोध पर जवाहर चौधरी का यह रूपक बहुत कुछ सोचने को विवश करता है। "चूल्हा जलई ले पिया उदर मा बड़ी आग है " में चूल्हे के बहाने वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक आचरण की असंगतियों पर गहरा व्यंग्य है। चूल्हे का संबंध अंतत: रोटी से और भूख से है और अन्ततोगत्वा यह सारा अनुष्ठान जीवन से बावस्ता है। आत्मनिर्भर होना या बनाना आजकल बहुत लोकप्रिय जुमला है। व्यंग्य के केंद्र में यही जुमला मुखर है। चूल्हा तो ख़ैर ईंटें माँगकर बनाया जा सकता है पर रोटी का सवाल तो फिर भी बचता ही है। ऐसे में "अब आपको कुछ सूखी लकड़ियाँ चाहिए जो लोकतंत्र में विरोधी दलों की तरह जल्दी आग पकड़ सकें"।आत्म निर्भरता के चालू जुमलों के बरअक्स सूखी लकड़ियों के आग पकड़ने का नेरेटिव बहुत कुछ कहता है।

इस संग्रह में अफगानिस्तान में चल रहे लैंगिक अंतर्विरोधों तथा स्त्री प्रताड़ना पर भी कुछ महत्त्वपूर्ण व्यंग्य रचनाएँ हैं। साथ ही घर में बहार आई है तथा आमार सोनार आलू जैसी व्यंग्य रचनाएँ धार्मिक जड़ता और अंध श्रद्धा पर तीखे कशाघात करती हैं।

जवाहर चौधरी चुस्त वाक्यों और भाषा की व्यंजना शक्ति का बेहतर इस्तेमाल करते हैं। कोप की तोप, कुलीन कुत्ता, शेर के नाखूनों पर नेल पॉलिश, रायल्टी ये क्या होता है, वैक्सीन का सीज़न है भल्लो, आदि व्यंग्य रचनाएँ भी पठनीय और रोचक हैं। इस संग्रह में छोटी व्यंग्य रचनाएँ हैं पर उनका बंधान बहुत मज़बूत है।

000

पुस्तक समीक्षा

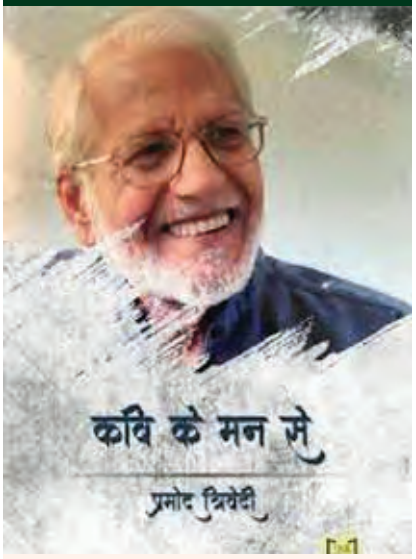

(कविता संग्रह)

कवि के मन से

समीक्षक : राजेश सक्सेना
लेखक : प्रमोद त्रिवेदी
प्रकाशक : इंडिया नेट बुक्स

राजेश सक्सेना
48- हरिओम विहार,
उज्जैन 456010 मप्र
मोबाइल- 9425108734
ईमेल- rajlag1519@gmail.com

जब कोई अग्रज कवि अपने अनुराग में अपने अनुज कवि को अपने कविता संग्रह को समर्पित करता है, तो स्वत: ही एक आदर के साथ एक कृतज्ञ भाव मन में उपज ही जाता है, किंचित सा गर्व भी आ सकता है। विगत दिनों समय के वरिष्ठ व महत्त्वपूर्ण कवि, कथाकार डॉ. प्रमोद त्रिवेदी जी का नवीन कविता संग्रह "कवि के मन से" इंडिया नेट बुक्स से प्रकाशित हुआ है ! इस संग्रह को प्रमोद जी ने मुझे, नीलोत्पल और हेमंत देवलेकर को समर्पित किया है यह तीनों के लिये बड़ी बात है हम उनके इस उदार उपक्रम के लिये आभारी हैं!

इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए कवि के मन से लेकर अनंत तक की यात्रा पर निकल जाते हैं!

अनंत के वितान में करीब 11 कविताओं में एक रहस्मयी संसार में प्रवेश कराती हैं, ऐसा लगता है आप किसी आकाश गंगा के छोर पर निरंतर कुछ निहार रहे हो, यहाँ से यह लोक सिर्फ एक बिंदु में सिमट रहा है, इस सीरीज़ की कविताएँ एक प्रकार से हमें भार हीन करती हैं इनमें समय, स्थान, जीवन, नदी, सागर सब एक शून्य या बिंदु में जा रहा है ! प्रारंभ में इन कविताओं का प्रवेश द्वार खोजना मुश्किल दिखाई देता है।

लेकिन सिर्फ एक बिंदु को पकड़ लें, तो फिर यह कविताएँ एक रेखीय यात्रा के साथ अनंत के वितान तक की यात्रा पर साथ ले जाती हैं। हालाँकि जहाँ तक मुझे याद है इन कविताओं की पृष्ठभूमि में उज्जैन के प्रसिद्ध चित्रकार भाई अक्षय आमेरिया के चित्रों की छवियों को कवि ने अपनी कविताओं में उतारा है किंतु हर पाठक के लिए यह जानकारी ना होने के कारण इन कविताओं की अलग रूप में समझने या पहचाने जाने के लिये श्री नरेश मेहता की कुछ कॉसमॉस सीरीज़ कविताओं को याद करना समीचीन होगा, यूँ भी प्रमोद जी नरेश जी से काफ़ी प्रभावित भी हैं, अस्तु इन कविताओं में हम एक प्रकार की विमुक्ति महसूस करते हैं !

कवि की परिकल्पना में इन कविताओं की उग सम्भवत: सृष्टि के सृजन की अनेकानेक, नानविध घटनाओं की पूर्वस्थिति में ब्रम्हाण्ड के नाद से लेकर ध्यान या समाधि की अवस्था तक मौन की अनंतता, की अनुभूति से उपजी होंगी, कवि में अज्ञेय और नरेश मेहता की ध्वनि सुनाई देती हैं !

ख़बरों के लग़भग दास हो चुके समय में जब सोशल मीडिया और मेन स्ट्रिम मीडिया ने हमें ख़बरों का हंगर बना दिया है तब कवि ने अख़बार छपने के बाद समाज तक आने के बीच के महत्त्वपूर्ण पात्र हॉकर लड़कों की विषय वस्तु पर केंद्रित कविता "हमारे जागने से पहले " में कवि ने अख़बार छपने की प्रक्रिया से लेकर हमारे दरवाज़े तक पहुँचाने वाले हर पात्र यह कविता लिखी है, जिसमें प्रेस वाहन, मालगाड़ी ट्रेन, लॉरी,प्रिंटिंग प्रेस पर काम करने प्रेस मेन, अलसुब्ह तक गलियों, मोहल्लों और कालोनी में गश्त देते चौकीदार तक की झलकियाँ हैं, जिनकी वजह से हमारी चाय की चुस्कियों में दाखिल होता है एक संसार। इस कविता की साधारणता में विन्यस्त भाषा सुबह के तनिक आलसाए समय का एक चित्र पाठक के दृष्टिपट पर चस्पा करती है।

जंगल शीर्षक से दो कविताएँ हैं, जिनमें एक तरह से कवि ने कट रहे जंगलों पर चिंता जताई है और बार-बार जंगल स्वयं के भीतर महसूस करने की कल्पना रची है, इन दोनों कविताओं में

जंगलों के प्रति कवि की सदाशय आसक्ति प्रकट होती है, जहाँ वह स्वयं को भी कुल्हाड़ी के प्रति जागरूक करता है, यह जागरूकता नागरिक समाज से भी अपेक्षित है।

इन कविताओं में कवि मन बेंद्रे की पेंटिंग में चित्रित आदिवासी लड़की को भी ढूँढ़ता हैं तो कहीं इसी जंगल में कवि भीमसेन जोशी के राग अहीर भैरवी को भी सुनने की कोशिश करता है, इस तरह इन दोनों कविताओं में कवि अपने दायित्व के चलते जंगल के बरक्स अपनी चिंता इसमें व्यक्त करते हैं। वहीं इसी के साथ जंगल के अद्‌भुत अनुपम सौंदर्य की छटा में संगीत को भी प्रकट करते हैं। यद्यपि जंगल की सिर्फ चिंता ही कविता में है, जंगल के कटने के प्रतिरोध या हस्तक्षेप के स्वर इन कविताओं में नहीं दिखते, इस दृष्टि से यह कविताएँ जंगलों के नष्ट होने पर चिंता जताती हैं लेकिन प्रतिरोध नहीं करती।

अपने पचासवें जन्मदिन पर कवि ने एक आत्मीय और प्रेम में डूबी कविता लिखी है, इसमें अपने पचासवें जन्मदिन के साथ साठवें से लेकर जीवन पर्यन्त और जीवन के बाद की भी आत्म इच्छाएँ कवि ने व्यक्त की हैं, यह कविता अपने प्रिय से संवाद करती हुई चलती है, लेकिन संवाद एक तरफा है अस्तु आत्मानुभूति से उपजी यह कविता प्रेम के औदार्य को और अधिक समपुष्ट करती है-

याद करूँगा कौन सा गीत
प्रिय था उन दिनों तुम्हें और
फिर उसे बुद्‌बुदऊँगा
जिसे गुनगुनाया था कभी
मैंने तुम्हारे लिये

यह कविता जीवन के पार से भी एक स्वप्न संसार रचती हुई कवि की अभिलाषा में प्रेम की उद्‌दात्त उड़ान पर चलती है।

फ़रवरी यूँ प्रेम का महीना है, इस माह में वसंत का मध्य रहता है वैसे आधुनिक समय में वेलेण्टाइन डे भी होता है। इसलिए प्रेम की सबसे अनुकूल ऋतु हम कह सकते हैं। इसीके चलते कवि ने फरवरी जैसे लघु आकार के महीने पर इस संग्रह में पाठकों के समक्ष दस छोटी कविताएँ रखी है, जिनकी शब्द रचनाओं में हर कहीं से प्रेमांकुर प्रस्फुटित होते देखा जा सकता है।

वह अब भी प्रार्थनारत है माँ के निधन पर लिखी यह कविता एक मार्मिक भाव के साथ पाठकों के मन पर माँ के औदार्य और उसकी करुणा के कई अक्स बनाती हुई अपनी श्रेष्ठता पाती है। इस कविता में कवि ने मृत्यु के पश्चात् भी माँओं की संतान के प्रति शुभेच्छाओं की अनेक प्रकार से प्रार्थना है कि कदाचित माँएँ सदा अपनी संतान के लिए जीवन काल में भी संतान सप्तमी से लेकर अनेक प्रकार के तीज त्यौहार व्रत उपक्रम करती रहती हैं। माँओं का प्रेम, तर्क वितर्क से दूर एक अलग संसार रचता है, उनकी प्रार्थनाएँ मृत्यु के पश्चात् भी चलती रहती हैं!

उसने हवाओं से प्रार्थना की
पोंछ दे हमारे आँसू
जो सूख नहीं पाए अब तक
धरती के बीजों से उसने प्रार्थना की
हो उठे वें सब के सब पुनर्जीवित
सब में सबकी होकर उसने
हम सबके लिये सबसे माँगा कुछ कुछ
उसने अब भी केवल हमारे लिये ही माँगा

"भर्तहरी की संगत में" यह कविता सहज ही पाठक को अपनी और इसलिए खींचती है भर्तहरी के नितिशतक और वैराग्य शतक की बीज अवधारणा की ध्वनि सुनाई देती है। इन कविताओं में उज्जैन की आख्यानिका के महत्त्वपूर्ण संदर्भ भी हैं, तो वहीं भर्तहरी की रानी पिंगला के अकेले रह जाने की विकट स्थिति के माध्यम से स्त्रियों की दशा के भी कुछ लाज़मी सवालों से यह कविता समय की पारम्परिक धूल को झटकारती है।

इस संग्रह में "चक्रतीर्थ" शीर्षक से एक कविता है जो उज्जैन के श्मशान पर लिखी है, जिसमें काशी के मणिकर्णिका से लेकर मरणोत्तर पुराण की कथा जोड़ते हुए कवि ने न केवल मृत्यु के पश्चात् मोक्ष की किवदंती के पक्ष को उठाया है बल्कि शिप्रा की दुर्दशा पर भी कलम चलाने का ज़रूरी काम किया है। श्मसान पर अग्नि के पश्चात् की दृश्य परिणति को कवि ने ख़ूब अंकित किया है --

एक गाय आई और
आटे का पिंड खा कर चली गई
एक औरत आई और,
भीगा कफन पहन कर चली गई
यह एक मरी हुई नदी की गंध है
यह अपने लिए ख़ुद नरक हो चुकी है
मोक्षदा नदी की गंध है
यह नदी की परिचित गंध से अलग है

इन पंक्तियों को कहते हुए कवि अत्यंत दुखी एवं व्यथित है कि हमने एक जीती जागती सुंदर नदी को किस दशा में ला छोड़ा है। अंत में यह कविता एक दार्शनिक यथार्थ के मोड़ पर ख़त्म होती है -

जहाँ जीवन वहाँ मृत्यु
जहाँ मृत्यु वहाँ शमशान
जहाँ शमशान वहाँ चिताग्नि
जहाँ जलेगा वहीं उसका चक्रतीर्थ
वही उसका मणिकर्णिका का
वहीं उसका मोक्ष !

देवताले जी से संवाद करती हुई एक महत्त्वपूर्ण कविता इसमें कवि ने रखी है। इस कविता में कवि ने देवताले जी की मृत्यु के पश्चात उनके उनके फ़ोन नंबर पर डायलिंग करते हुए कवि ने एक मार्मिक कविता लिखी है, जिसमें देवताले जी को याद करते हुए कवि बार-बार भावुक होता है। इसी प्रकार देवताले जी से बातचीत नाम की एक अन्य कविता भी है यह कवि के देवताले जी से दीर्घ कालीन संबंधों के शिलालेख की तरह है।

धूप में स्त्री, स्त्री प्रबोधिनी, सबक, अपनी-अपनी ज़िद, बारिश, इस बार दिल्ली में, रात तीन बजे, अलीगढ़ इत्यादि विषयों पर उल्लेखनीय एवं सुन्दर कविताएँ कवि ने रची हैं।

इस संग्रह की कविताएँ सीधे तौर पर पाठकों के साथ सहजता से जुड़ती हैं और एक रिश्ता क़ायम करते हुए जगह बनाती हैं, भाषा की पारम्परिक बुनावट में शिल्प की नवीनता का बोध भी इनमें दिखता है। इस प्रकार कह सकते हैं इन कविताओं का स्वाद और स्वभाव पाठकों के लिये सर्जनात्मक चेतना और क्षमताओं के नए पाठ के गवाक्ष खोलेगा। संग्रह के लिये प्रमोद जी बधाइयाँ और प्रकाशक को साधुवाद!

000

पुस्तक समीक्षा

(निबंध संग्रह)

समकाल के नेपथ्य में

समीक्षक : भालचंद्र जोशी
लेखक : डॉ. शोभा जैन
प्रकाशक : भावना प्रकाशन, नई दिल्ली

भालचंद्र जोशी
13एचआईजी, ओल्ड हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, जैतापुर,
खरगोन 451001 (मप्र)
मोबाइल- 8989432087

इस नए समय में परंपरा, इतिहास, धर्म और संस्कृति को लेकर निपट एकांगी और रूढ़ दृष्टि को सप्रयास विकसित कर सच की तरह स्थापित किया जा रहा है। लेकिन यह भी सुखद अचरज और तसल्ली की बात है कि इतिहास, धर्म और संस्कृति को लेकर गंभीर, तार्किक विश्लेषण और वैज्ञानिक अर्थ भी सामने आ रहे हैं। इसी समय रूढ़ आस्थाएँ और विज्ञान सम्मत विचार भी अपनी जगह बना रहे हैं। यह पीछे धकेलने का षड्यंत्र और आगे खींचने के साहस का एक ही समय है। इस पुस्तक के साफ आईने में इसी द्वंद्व की धुँधली परछाइयाँ हैं। आस्था और तर्क के सनातन संबंधों की संदर्भित व्याख्याएँ हैं। इन व्याख्याओं में विचार की समझ और ज्ञान की तृष्णा देखी जा सकती है।

यही कारण है कि शोभा जैन 'आधुनिकता के ज्ञान के लिए परंपराओं का बोध होना ज़रूरी है'(आधुनिकता बनाम परंपरा- पृष्ठ- 48) के आग्रह पर ज़ोर देती हैं। चीज़ों और स्थितियों के बदलने के संक्रमण काल के संदर्भ में उन्हें यह भी याद आता है कि 'जहाँ न सिर्फ 5000 वर्ष पुरानी सभ्यताएँ हैं, बल्कि सांस्कृतिक और कलात्मकता का बौद्धिक उत्कर्ष भी'(वही-पृष्ठ-वही) इसके लिए वे 'पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण' को ज़िम्मेदार ठहराती हैं। यहाँ आकर निराकरण की हड़बड़ी में उतर जाती हैं। 'पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण' के संदर्भ में याद आता है और वे बताती हैं,' जहाँ तीज- त्यौहार पर मोहल्ले गली और आसपास के पूरे वातावरण में उल्लास चारों और झलक पड़ता था, जहाँ सांस्कृतिक या पौराणिक रूप से बल्कि कलात्मक और सर्जनात्मक रूप से भी मन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त होने का अवसर मिलता था' (वही- पृष्ठ- वही) इन उपलब्धियों और वैभव को नष्ट करने वाले अपराधी को वह तत्काल पकड़ भी लेती हैं, 'आधुनिकता के नाम पर यह उत्सवधर्मिता अब से सिमटती जा रही है।' (वही-पृष्ठ-वही) इस भाव प्रवण विश्लेषण में निराकरण के बेहद करीब पहुँच जाने के उपरांत किंचित अदेखी यह हो जाती है कि इस भूमंडलीकरणोत्तर समय में बाज़ार ही पूँजी की ललक में यह सारी लीला रच रहा है, वरना हम दो सौ साल अंग्रेज़ों के ग़ुलाम रहे और पाश्चात्य संस्कृति

तो तब भी थी लेकिन पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकता के ऐसे डरावने दृश्य सामने नहीं आए थे। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि वे बदलते समय की गति में संस्कृति और परंपरा को को बहुत उत्सुकता और तल्लीनता से देख रही हैं। इसलिए यह बात उनके लिए स्पष्ट है कि, 'हम अपनी परंपराओं को जानने समझने का कार्य करते हैं, हमारा युगबोध सुदृढ़ होता चला जाता है।'(वही-पृष्ठ-50)

इस पुस्तक में विविध विषयों पर लेख हैं। इतने विविध विषयों पर लिखने का साहस जुटाना कोई सामान्य बात नहीं है। इन निबंधों को पढ़कर यह तो काफी हद तक स्पष्ट हो जाता है कि शोभा जीवन और समाज के सच को जानने समझने की गंभीर कोशिश में संलग्न है। निजी और अनुभूतिगत स्तर पर समझने की प्रक्रिया में अपने विश्लेषणों को इस तरह से अभिव्यक्त करती हैं कि वह किसी पूर्व सिद्ध धारणा की प्रतिलिपि न लगे। साथ ही निबंध में विषय के फैलाव में अंतर्निहित यथार्थ की अनुभूति को भाषा के कौशल में जाकर अर्थ निरपेक्ष होने से भी बचाती हैं। इसलिए कागज़ पर शब्द महज भाषा का खेल या लिपि की चित्रकारी नहीं बल्कि अर्थ छवि की चित्रात्मकता होते हैं। वरना तो ज्ञान का कुबेर खज़ाना व्हाट्सएप और फेसबुक पर कोई कम नहीं फैला हुआ है। इस तरह के साहित्य या ज्ञान की निरर्थकता और खतरे की ओर भी शोभा संकेत करती हैं, 'सोशल मीडिया पर ज्ञान का महिमामंडन सबसे सरल संचार साधन है कापरा ने अपनी पुस्तक 'टर्निंग पॉइंट' में एक बात कही थी, 'हम एक ऐसी सदी में प्रवेश कर रहे हैं जहाँ ज्ञानबोध का संकट एक प्रकार से यूटोपिया और डायस्पोरिया के बीच टकराहट के रूप नज़र आएगा।'(हिन्दी साहित्य समाज के हाशिए पर क्यों ?-पृष्ठ-55) यह सारा संकट बाज़ार ने सूचना और संचार तकनीक के फैलाव के रूप में खड़ा किया है। यह एक नया एडिक्शन है। नया रोग है। जिसमें सिर्फ यूरोपियन समाज और अंग्रेज़ी भाषा ही नहीं हिन्दी भी फँसी है। लेखिका इसे एक नई चिंता दृष्टि के साथ देखती है, 'हिन्दी के साथ भी शायद यही संकट है क्योंकि हिन्दी पाठक एक प्रकार की ऐसी साहित्यिक सरलता के यूटोपिया में जी रहा है कि वह विचार दर्शन, ज्ञान और साहित्य की गहन चुनौतियों से टकराना नहीं चाहता।' (वही-पृष्ठ-वही) यह समस्या और संकट तो उन कच्चे-अध कच्चे लेखक नुमा लोगों पर लागू होती है जो व्हाट्सएप और फेसबुक पर लिखकर अपने ज्ञान के संप्रेषण की इतिश्री कर लेते हैं लेकिन इस परिधि से बाहर भी लेखकों की ऐसी जमात है जो बदलती हुई परिस्थितियों को चिंता के साथ देख रही है। इन लेखकों की चिंताएँ और द्वंद्व विचार के टूटने और पुनर्निर्माण के हैं। यह लेख और बेहतर हो जाता यदि इसमें इस द्वंद्व को लेकर भी विमर्श होता। पुस्तक में ऐसे कुछ निबंध हैं जो जल्दी समेट लेने के मोह में विचार की आंतरिक संरचना के द्वंद्व की अपेक्षा शीघ्रता के सरलीकरण की ओर चले गए। जबकि लेखिका के पास विषयानुकूल दृष्टि और विस्तार की गुंजाइश थी।

इस पुस्तक में एक महत्त्वपूर्ण लेख है, 'साहित्यिक संदर्भ में समकालीनता: उत्तर पाठ एवं पुनरावलोकन'। साहित्य के संदर्भ में भी समकालीनता को देखा जाए तो भी उसके केंद्र में मनुष्य ही रहेगा और यह भली बात है कि इस लेख के सारे संदर्भ मनुष्यता के केंद्र में है।' निस्संदेह साहित्य जड़ की तरह स्थिर रह भी नहीं सकता क्योंकि उसका सीधा संबंध मनुष्य से है और मनुष्य की परिस्थितियाँ परिवेश, विचार भाव स्थिति अनुरूप बदलते रहते हैं।'(पृष्ठ-3 4) एक लेखक के लिए समकालीनता का पद मनुष्यता को लेकर सम और विषम के संघर्ष को समय के संदर्भ में देखना समझना है। इसीलिए जब शोभा कहती हैं, 'साहित्य के इतिहास में समकालीनता एक मूल्य वाचक अवधारणा है लेकिन मूलत: है यह मूल्यबोधक ही।' (पृष्ठ-34-35) तो यह अंतत: द्वंद्व के आंतरिक पद को तोड़ते हुए उसे परिचयात्मक आकार देने की ऐसी कोशिश है जो उसके अनुकूलन में संभव है। क्योंकि इस तरह इतिहास से विच्छेद हुए बगैर वर्तमान के बोध के साथ भविष्य की आकांक्षा को पोसना है। इस तरह काल की चेतना को इस तरह समयबद्ध करना कि अतीत, वर्तमान और भविष्य की छायाओं को स्पष्ट आकार मिले। इसलिए शोभा की इस बात से सहमति प्रकट की जा सकती है कि 'समकालीनता साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी मानी गई है जिसका सीधा संबंध उसकी काल चेतना से है।'(पृष्ठ-35) लेकिन अंत तक जाते-जाते इस लेख में लेखिका ने समकालीनता के संदर्भ को एक अबोध आवेशित आरोप के सामान्यीकरण में क्यों डाल दिया ?, 'आज का साहित्य ख़ासकर आधुनिक साहित्य भी समकालीन हो सकता है किंतु उसमें शाश्वतता का गुण अनुपस्थित पाया जाता है इसलिए कि यह साहित्य मौलिक और यथार्थ न होकर आयातित सामग्रियों पर आधारित हुआ करता है। सत्य और यथार्थ से दूर बिंबों, शब्दों के आडंबरों से युक्त रचनाएँ और कृतियाँ आज की सदी में मानव- समुदाय को आह्लादित, आनंदित और रसमय नहीं कर पा रही हैं।' (पृष्ठ-37)' 'आयातित सामग्री' की अबोध और असावधान आपत्ति पर फिलहाल चर्चा न भी की जाए तो शाश्वत होने का पद किसी को एक लंबे कालखंड के बाद ही दिया जा सकता है। इसके पहले उसके शाश्वत होने की घोषणा जल्दबाज़ी है और उसे खारिज करना भी मुनासिब नहीं है। रचना या कृति शाश्वत होने के लिए एक लंबे कालखंड की माँग रखती है। साथ ही अब साहित्य का काम महज आनंद देने का नहीं रह गया है। प्राथमिकताएँ बदल गई हैं। बहरहाल यह पुस्तक बहस तलब है इसलिए पठनीय भी है। अलबत्ता निबंधों के वैचारिक विस्तार की गुंजाइश थी।

विषय और विचारों के स्तर पर शोभा की ज़रूरी चिंता और लगाव इस पुस्तक में हर कहीं मौजूद है। साथ ही विचारों के सम्मोहक संप्रेषण के लिए ज़रूरी भाषा और तार्किक सूक्ष्मता के लिए निरंतर अभ्यास की इच्छा शक्ति भी इसी में प्रकट होती है। पहली पुस्तक उनकी विचारों के प्रति स्पष्ट आस्था और श्रम को बताती है। यह प्रतिभा के भविष्य के दरवाज़े खुलने के संकेत हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(साक्षात्कार संग्रह)

हरे कक्ष में दिन भर

समीक्षक : रमेश खत्री

संपादक : प्रबोध कुमार गोविल

प्रकाशक : मोनिका प्रकाशन, जयपुर

रमेश खत्री
53/17, प्रतापनगर, सांगानेर,
जयपुर, 302033 राजस्थान
मोबाइल- 9414373188
ईमेल- sahityadarshan@gmail.com

'मनुष्य अपने भावजगत् की रचना स्वयं करता है, किन्तु वह इस कार्य को देशकाल की किन्ही परिस्थितियों में ही संपन्न करता है, और ये परिस्थितियाँ उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं होती .... बाह्य जगत् का इंद्रीय बोध और मनुष्य के मन का भावजगत् एक ही यथार्थ के दो पक्ष हैं जो एक दूसरे से पूर्णत: स्वतंत्र न होकर परस्पर संबद्ध हैं।" -डॉ. रामविलास शर्मा

हिन्दी में साक्षात्कार साहित्य का भण्डार बहुत समृद्ध नहीं है फिर भी वर्तमान समय की पत्र-पत्रिकाओं में यदाकदा साहित्यकारों के साक्षात्कार छपते रहते हैं। उन साक्षात्कारों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो लम्बे समय तक स्मृति में बने रहते हैं और वो रचना की और रचनाकार की सोच की दिशा को स्पष्ट करते नज़र आते है। "हरे कक्ष में दिन भर" प्रबोध कुमार गोविल के संपादन में मोनिका प्रकाशन, जयपुर से विगत दिनों प्रकाशित साक्षात्कार संग्रह प्रकाशित होकर आया है जिसमें हिन्दी साहित्य के 56 मूर्धन्य रचनाकारों के साक्षात्कार संग्रहित हैं, जो अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है।

इस किताब के समकालीनता पर बात करते हुए संपदक ने अपनी बात में कहा है, "मेरे दिमाग़ में यह बात आई कि हिन्दी में बहुत सारे बेहद महत्त्वपूर्ण ऐसे साहित्कार भी हैं, जिन्होंने सार्थक और नायाब आधुनिक साहित्य रचा है, निरंतर लिख भी रहे हैं, पर इस बात से बिल्कुल बेख़बर हैं कि उनके काम को सामने लाया जा रहा है या नहीं। ऐसे में मुझे लगा कि आधुनिक साहित्य में से महत्त्वपूर्ण काम को चुनकर एक निष्पक्ष, विचारधारा विहीन पद्धति से कुछ समर्थ पाठकों, लेखकों, शिक्षकों, विद्यार्थियों, संपादकों, समीक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों, पुस्तक विक्रेताओं, पत्र- पत्रिकाओं, इंटरनेट सर्फर्स, सजग बुद्धिजीवियों से सहयोग लेकर हर साल कुछ अच्छे और बड़े लेखकों की सूची तैयार की जाए।"

समीक्ष्य साक्षात्कार संग्रह में जिन 56 साहित्यकारों के साक्षात्कार संग्रहित है, उनमें प्रमुख हैं नरेन्द्र कोहली, काशीनाथ सिंह, हेतु भारद्वाज, कृष्णा सोबती, नामवर सिंह, मराठी के महत्त्वपूर्ण रचनाकार दामोदर खड़से, रत्नकुमार सांभरिया, दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, मैत्रेयी पुष्पा, रूपसिंह चंदेल, अशोक वाजयेयी, प्रणव भारती, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा, लीलाधर मंडलोई, सूरज प्रकाश, तेजेन्द्र शर्मा, माधव हाड़ा, अनामिका, दूधनाथ सिंह, कात्यायनी, विश्वनाथ त्रिपाठी, केदारनाथ सिंह, पंकज बिष्ट, ज्ञानरंजन, विनोद कुमार शुक्ल, ममता कालिया, विष्णु खरे, राजेश जोशी, सुधीश पचौरी, मैनेजर पांण्डेय, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भागीरथ परिहार, गोविन्द माथुर, सुदेश बत्रा, गीरीश पंकज, नंद भारद्वाज, हरिराम मीणा, प्रेमचंद गांधी, कुसुम खेमानी, सुधा अरोड़ा, सत्यनारायण, रजनी मोरवाल, संतोष श्रीवास्तव, मन्नू भण्डारी, उर्मि कृष्ण, कृष्णा अग्निहोत्री, राजी सेठ, मालती जोशी, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, लालित्य ललित, जयप्रकाश मानस, मिथिलेश्वर, प्रेम जनमेजय और पुस्तक के संपादक स्वयं भी इसमें सम्मिलित हैं।

इन साक्षात्कारों की खिड़की से आती हुई हवा में विचारों की ताज़गी तो नज़र आती ही है साथ ही यह भी पता चलता है कि वर्तमान समय में क्या रचा जा रहा है और वह कितना पढ़ा जा

रहा है, इसके साथ ही उसकी रचना प्रक्रिया क्या थी, इस पर रचनाकारों में विस्तार से प्रकाश डालने की आवश्यकता को महसूस किया है। नामवरजी स्वयं कहते हैं, ''फ़िराक़ साहब पर ग़ालिब का बहुत असर है। मीर तो मीर ही हैं। ग़ालिब ख़ुद मानते थे, ''हम हुए तुम हुए कि मीर हुए, उसकी जुल्फों के सब असीर हुए।'' जो सादगी मीर में हैं, ग़ालिब में नहीं। यह मीर और ग़ालिब का फर्क है। मीर को उर्दू में ख़ुदा-ए-सुख़न कहा जाता है। यदि मीर नहीं होते तो ग़ालिब नहीं होते। लेकिन मीर के दीवान में सारी चीज़ें देखने पर काफी 'कूड़ा' मिलेगा। ग़ालिब ने एक भी कच्चा शेर नहीं आने दिया अपने दीवान में। यह सावधानी बरती है, वैसे ग़ालिब यह भी कहते हैं, ''रेख्ता के तुम ही उस्ताद नहीं हो ग़ालिब, सुनते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था।'' तो वहीं दूसरी ओर नरेन्द्र कोहली एक सवाल के जवाब में कहते हैं, 'हिन्दुओं ने अपना इतिहास कभी नहीं लिखा। भारत का इतिहास हमेशा विदेशियों द्वारा लिख गया और विदेशियों ने भारत का आत्मगौरव बढ़ाने के लिए नहीं लिखा बल्कि इसलिए लिखा कि भारतीयों का आत्मविश्वास, आत्मगौरव ध्वस्त हो। इसलिए भारतीयों को चाहिए कि वे अपना इतिहास स्वयं लिखें व रचें।' उपन्यासकार काशीनाथ सिंह भी एक सवाल के जवाब में 'काशी का अस्सी' और 'रेहन पर रग्घू' पर बात करते हुए कहते हैं, ''इसमें दो राय नहीं कि यह बड़ी ख़तरनाक चीज़ है, जो भाषा ''काशी का अस्सी'' में है वह भाषा 'रेहन पर रग्घू' में नहीं है। इस देश की जो विदेशों में प्रतिष्ठा है, हिन्दू राष्ट्र के रूप में नहीं है। बहुलतावाद इसकी प्रकृति में रहा है। आरंभ में तो आक्रमणकारी लौट भी जाते थे और बस भी जाते थे। जहाँ तक मुग़लों का सवाल है बहुत से लोग यहाँ रह गए। और इसे ही अपना देश मान लिया। बहुत से हिन्दुओं ने इस्लाम से प्रभावित होकर धर्म परिवर्तन किया। जिस दिन बहुतलावाद ख़त्म हो जाएगा भारत भारत नहीं रहेगा।'' कात्यायनी महिलाओं की वकालत करते हुए कहती हैं, 'एक आम स्त्री पारम्परिक सामाजिक-पारिवारिक जीवन में यदि एकदम पारदर्शी और सहज हो जाए तो उसका जीना मुहाल हो जाएगा, पुरुष सत्ता का भेड़िया उसे खा जाएगा। रहस्य आम स्त्री का प्रतिरक्षा कवच है लेकिन एक स्त्री जब एक बार रूढ़ियों-परम्पराओं के विरूद्ध विद्रोह करके लड़ने और रचने के संकल्प के साथ बाहर निकल पड़ती है तो संघर्ष और सृजन के लिए कम से कम कुछ हमसफ़रों के साथ अपनेपन का रिश्ता, कुछ दोस्ती कुछ प्यार तो चाहिए ही होता है।'' तो वहीं दूसरी तरफ विनोद कुमार शुक्ल कहते हैं, ''आलोचक का धर्म रचना को बतलाने का होना चाहिए। रचना को खारिज करने या स्थायित्व करने का काम आलोचक का नहीं है। यह काम पाठक का है। आलोचक की बताई हुई दिशा में कोई रचनाकार जा रहा हो, ऐसा मुझे कोई नहीं दिखता।'' राजेश जोशी समकालीन साहित्य पर बात करते हुए कहते हैं, ''समकालीन साहित्य में जनतान्त्रिक स्पेस बड़ी है। वह अधिक सामाजिक हुआ है। उसकी श्रेष्ठ रचना को विश्व की किसी भी भाषा के श्रेष्ठ रचना के समकक्ष रखा जा सकता है।'' दामोदर खड़से लेखन प्रक्रिया के बारे में चर्चा करते हुए कहते हैं, ''समग्र लेखन को लेकर किसी भी लेखक की सन्तुष्टि उसकी लेखकीय गति में अवरोध है। क्योंकि लेखन एक सतत प्रक्रिया है, जिसे चलते रहना है और चलते रहना चाहिए। लेकिन जहाँ तक कुछ रचनाओं का प्रश्न है, मुझे भी अपनी कुछ कहानियाँ, कविताएँ अच्छी लगती हैं, जिनको लेकर मुझे संतुष्टि का अनुभव होता है।'' तो वहीं दूसरी ओर दलित लेखक रत्नकुमार सांभरिया अपनी रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए बताते हैं, ''जीवन, जज़्बा और जिजीविषा के फलस्वरूप मेरी कहानियों के पात्र ना हताश होते हैं, ना निराश होते हैं ना थकते-हारते हैं। विषम परिस्थितियों का सामना करते मान-सम्मान, स्वाभिमान और मर्यादा का जीवन जीते हैं। मेरा मानना है कि कहानी का पात्र जाति से चाहे कितना ही छोटा हो, उसकी प्रकृति पीपल के बीज जैसी होनी चाहिए। पीपल का एक छोटा सा बीज पत्थर को फाड़कर उग जाता है और अपना आकार लेता जाता है।'' अशोक बाजपेयी अपनी बात कहते हुए बताते हैं, ''मेरा साहित्य संसार के अनुराग से उपजता है और मैं उसकी अनेक विडम्बनाओं के साथ उसका गुणगान ही करता रहा हूँ। रति, शृंगार, देह आदि पर रचने की भारत में लम्बी और प्राचीन परम्परा है, मैंने अपने समय में उसे पुनरायन करने की कुछ चेष्ठा की है।'' तो वहीं दूसरी ओर तेजेन्द्र शर्मा अपनी रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए बताते हैं, ''रचना प्रक्रिया हर कहानी की अलग होती है। कोई कहानी एक सिटिंग में पूरी हो जाती है तो कोई-कोई महीनों सालों घिसटती रहती है... हिन्दी को हाथ से लिखने का अभ्यास नहीं था। बड़े-बड़े अक्षर लिखता था और लाइन खींचता था। कहानी के साथ-साथ मेरी हैंण्डराइटिंग भी विकसित होती गई।''

समीक्ष्य किताब में 56 साक्षात्कार संग्रहित हैं जो अपने आपने अनूठे हैं। इनमें वर्णित विचार बेशक अलग-अलग दिशाओं की ओर हमारा ध्यान ले जाते हैं लेकिन इन सबके बीच से आता हुआ मूल स्वर हमें एक ही लगता है और वह है वर्तमान समय के इस आपाधापी वाले युग में साहित्य को और संस्कृति को कैसे बचाया जा सकता है। ये रचनाकार बेशक अलग-अलग परिवेश से आते हैं और उनकी भाषा शैली और कहन के अंदाज़ में काफी विविधता हो सकती है, किन्तु लगभग सभी रचनाकारों के मन में विश्व साहित्य के समकक्ष हिन्दी की रचनाओं के फ़लक में आए बदलाव को रेखांकित ज़रूर किया गया है।

कहना न होगा कि 'हरे कक्ष में दिन भर' में सम्मिलित साक्षात्कार के माध्यम से रचनाकार के अध्ययन कक्ष में झाँकने का प्रयास किया गया है और इसके बनिस्बत निथरकर आए ये साक्षात्कार अपने आपने अनूठे हैं और समय की आँच में तपकर हीरे की तरह अपने समय को निथारकर बाहर आए हैं। निश्चित तौर पर यह किताब अपने समकाल को चुनौती देती और पाठक के लिए नई सोच के रास्ते खोलेगी। जिसे देर तक और दूर तक चिह्नित किया जाएगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

भेड़ और भेड़िए

समीक्षक : डॉ. प्रदीप उपाध्याय

लेखक : धर्मपाल महेंद्र जैन

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

डॉ. प्रदीप उपाध्याय
16, अम्बिका भवन, उपाध्याय नगर,
मेंढ़की रोड, देवास, मप्र 455001
मोबाइल- 9425030009
ईमेल- pradeepru21@gmail.com

कविता और व्यंग्य विधा में समान रूप से दखल रखने वाले धर्मपाल महेंद्र जैन का व्यंग्य संग्रह अपने शीर्षक 'भीड़ और भेड़िए' को सार्थक करता प्रतीत होता है। भीड़ और भेड़िए का चरित्र जगजाहिर-सा है और यह धर्मपाल जैन की उक्त व्यंग्य रचना में प्रभावी ढंग से उभरता है। व्यंग्य संग्रह का एक उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि पुस्तक की भूमिका वर्तमान दौर के व्यंग्य क्षेत्र के पुरोधा ज्ञान चतुर्वेदी जी ने लिखी है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि धर्मपाल जैन का पहला व्यंग्य संग्रह वर्ष उन्नीस सौ चौरासी में प्रकाशित हुआ था, जिसकी भूमिका व्यंग्य विधा के पितृपुरुष हरिशंकर परसाई जी ने लिखी थी और उस भूमिका में परसाई जी ने व्यंग्य विधा के जो मंत्र दिए थे, उनका अनुसरण धर्मपाल जैन के व्यंग्य आलेखों में यत्र-तत्र दिखाई देता है।

धर्मपाल जैन व्यंग्य रचना के लिए आवश्यक तत्वों की भी बात करते हैं। उनके मतानुसार चेतना को झकझोरना और आत्मसाक्षात्कार करना व्यंग्य की पहली माँग है। चेतना से जोड़ते हुए व्यंग्य आत्मा, मन और बुद्धि तीनों को अपने व्याप में ले आता है। व्यंग्य के बारे में वे कहते हैं कि व्यंग्य चेतना का भाव है जो केवल शब्द तो नहीं होता। उसके प्रकटीकरण में शब्दों, वाक्य और वाक्यों के समूह की शक्ति होती है। इसलिए व्यंग्य के रचाव को केवल व्यंजना पर आधारित मानना एक सीमित दृष्टिकोण होगा। शब्द की दृश्य शक्तियाँ जिन्हें हम अभिधा, लक्षणा और व्यंजना मानते हैं, के अतिरिक्त भी गुप्त शक्तियाँ होती हैं। व्यंग्य के विषय व्यंग्यकार को कहाँ से मिलते हैं, इस संबंध में उन्होंने लिखा है कि-"व्यंग्यकार जनमानस से जुड़कर ऐसी सजी-धजी लुभावनी प्रवृत्तियों को पकड़ता है और उनकी विकृतियों को परत दर परत अनावृत करता है। ऐसा करने के लिए उसके पास समाज के विकारों को पहचानने की दृष्टि होना चाहिए।" वे मानते हैं कि- "व्यंग्यकार की अपनी सीमाएँ होती हैं, इसलिए व्यंग्यकार का प्रमुख उद्देश्य व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करना तो हो ही। यह व्यवस्था सिर्फ राजनीतिक सत्ता या उसका चरणोपासक प्रशासन या धार्मिक सत्ता ही नहीं है। यह व्यवस्था वह समूचा समाज है जिसे हम निर्मित करते हैं, जिसमें हम जीते हैं। ऐसे में जनमानस से जुड़े बिना व्यंग्यकार होने के मुगालते में रहना बहुत बड़ा भ्रम है। और, असत्य के साथ खड़े होकर सत्य की वकालत करना पाखण्ड है। ऐसे पाखण्ड से उद्वेलन नहीं होगा और न ही व्यंग्य उपजेगा।" एक महत्त्वपूर्ण बात का उल्लेख करना और समीचीन होगा जिसमें व्यंग्यकार ने कहा है कि व्यंग्य का उद्देश्य मनोरंजन नहीं है और न ही व्यंग्यकार विदूषक।

चलिए पुस्तक के जरिए व्यंग्यकार की गहन वैचारिक दृष्टि से तो साक्षात्कार हो ही गया, अब उनकी कुछ व्यंग्य रचनाओं पर भी बात कर लें। वैसे व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक ही अपनी बात कह देते हैं। जनतंत्र में जब जनता भीड़ में तब्दील होने लगे और भीड़, भेड़ बनने पर मजबूर हो जाए तब भेड़िए भीड़ पर काबू करने लगते हैं। धर्मपाल जैन के व्यंग्य संग्रह का पहला आलेख 'भीड़ और भेड़िए' की यह पंक्ति दृष्टव्य है- "भेड़ें आदमी नहीं बन सकतीं। इसका यह मतलब नहीं कि आदमी भेड़ नहीं बन सकता। आदमी भेड़ क्या भेड़िया बन सकता है और चमचमाता बिस्कुट दिखा दो तो मेमना भी बन सकता है।"

आम आदमी भीड़ का ही हिस्सा तो बनकर रह गया है। आज के दौर में हरेक आदमी डरा हुआ है। व्यवस्था इतनी पथभ्रष्ट हो चुकी है, जिसने चहुँओर भय का माहौल खड़ा कर दिया है और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि आमजन निरीह बनकर तमाशा देख रहा है। धर्मपाल जैन ने इसी आलेख में लिखा भी है-

"डराने के लिए डर का भ्रम भी पर्याप्त है। वास्तविक डर की बजाय आभासी डर फैलाना और बनाए रखना सहज है। यह आदमी को भीड़ में बदलने का कामयाब फार्मूला है। भेड़ें और ऐसे पशु भीड़ बन जाएँ तो उन्हें एक साथ हाँकना आसान हो जाता है।" देश में लोकतंत्र के विकृत होते स्वरूप तथा भीड़ तंत्र में तब्दील होते जाने पर यह कटाक्ष भी पाठक को भीतर तक उद्वेलित कर देता है- "एक भेड़ को डंडा दिखाकर चरवाहा सारी भेड़ों को एक साथ हाँक सकता है। पेशेवर चरवाहे जानते हैं कि भेड़ें न सिर उठाकर देखती हैं, न रास्ते से इधर-उधर होती

हैं। एक के पीछे एक।" भीड़ के चरित्र पर यह पंच वाक्य प्रभावी है जिसमें कहा गया है कि- "आदमी पशु बनकर भी पशु जैसा वफादार नहीं बन सकता।"

लोकतांत्रिक व्यवस्था का इससे बड़ा मज़ाक और क्या हो सकता है! स्वतंत्रता के बाद इतनी सरकारें आईं और गईं, चाहे किसी भी दल की सरकार रही हो, लेकिन हालात ज्यों के त्यों ही रहे। व्यंग्यकार अपने निराशा के भाव को छुपा नहीं पाता है, 'प्रजातंत्र की बस' में व्यंग्यकार ने लिखा है- "प्रजातंत्र की बस तैयार खड़ी है, सरकारी गाड़ी है, इसलिए धक्का परेड है।" देश में यह मानसिकता जन्म ले चुकी है कि जो भी सरकारी व्यवस्था है, वह व्यवस्थित नहीं हो सकती। प्रजातंत्र को किस तरह से सभी मिलकर विकृत कर रहे हैं, इसकी बानगी देखिए- "बस को धक्का लगाने के लिए सरकार ने बड़ा अमला रखा है। दाईं तरफ़ से आईएएस धक्का लगा रहे हैं। बाईं तरफ़ मंत्रीगण लगे हैं। पीछे से न्यायपालिका दम लगा के हाइशा बोल रही है और आगे से असामाजिक तत्व बस को पीछे धकेल रहे हैं। लोग सात दशकों से पुरज़ोर धक्का लगा रहे हैं, पर गाड़ी साम्य अवस्था में है।"

वर्तमान दौर में व्यक्ति पूजा और सामंती मानसिकता का पूरी तरह से बोलबाला है। लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनाने के बाद भी इन विकृतियों को हम ध्वस्त नहीं कर पाए हैं। चाटुकारिता लोगों की रग-रग में समा चुकी है। 'भैंस की पूँछ' आलेख में व्यंग्यकार ने बख़ूबी व्यंग्य किया है- "मंत्रीवर के तलवों में चंदन ही चंदन लगा था। तब रसीलाजी और सुरीलीजी ने मंत्रीवर की जय-जयकार करते हुए कहा- नाथ आपके पुण्य चरण हमारे भाल पर रख दें। मंत्रीवर संस्कृति रक्षक थे, नरमुंडों पर नंगे पैर चलने में प्रशिक्षित थे। उन्होंने सुरीलीजी व रसीलाजी के भाल पर अपने चरण टिका दिए। कलाकार की गर्दन में लोच हो, रीढ़ में लचीलापन हो, घुटने में नम्यता हो और पवित्र चरणों पर दृष्टि हो तो मंत्रीवर के चरण तक कलाकार का भाल पहुँच ही जाता है।" एक अन्य रचना 'चापलूस बेरोज़गार नहीं रहते' की ये पंक्तियाँ भी गहरा कटाक्ष करती हैं- "बेरोज़गार रहने से किसी की चापलूसी सेवा भली। आप जिस किसी की चापलूसी करें, ठोक बजाकर देख लें कि वह टिकाऊ हो। यदि चापलूस-पालक टिकाऊ नहीं हुआ तो कालांतर में समाज में बड़ी किरकिरी हो जाती है, धन और समय गया वह अलग।" सरकारी सम्मान-पुरस्कार की चाहत आज से नहीं, सदियों से रहती आई है। कलाकार हो, साहित्यकार हो या बुद्धिजीवी, रीढ़विहीन होकर सरकार के गुणगान में इसी अपेक्षा के साथ लगा रहता है। व्यंग्यकार ने इसी मानसिकता पर कटाक्ष करते हुए 'भाल तिलक सब छीनी रे' में लिखा है - "कलाकार की लोक में प्रतिष्ठा राजा से जुड़कर दरबारी होने में है। नुक्कड़ आयोजनों में कलाकार भले ही चर्चित हो जाए, पर इस तिलक हीन भाल का क्या करें। अपनी कला को कालजयी बनाना हो तो कालिदास हो या तानसेन, दरबार में भर्ती होना पड़ता है।"

सरकारी नौकरियों में भ्रष्टाचार, ट्रांसफर पोस्टिंग, तबादला उद्योग के चर्चे तो होते रहते हैं। इस भ्रष्ट व्यवस्था पर 'डिमांड ज़्यादा है थाने कम' में वे अपनी कलम चलाते हैं- "सभी डिवीज़नों के विशेष थानों में थानेदारों की पोस्टिंग करने हेतु प्रशासनिक सुविधा के लिए मुहरबंद निविदाएँ आमंत्रित की जाती हैं। ये निविदाएँ 'आइटम रेट' पर 'कम्पेटेटिव्ह बिडिंग' के अन्तर्गत बुलाई जाती हैं। इसमें ए, बी एवं सी श्रेणी के लिए सुपात्र (जिन्हें आगे निविदाकार कहा है) निविदाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। लाइन अटैच लोगों के लिए यह सुनहरा मौका है।" धर्मपाल जैन ने जहाँ राजनीतिक-सामाजिक क्षेत्र की विसंगतियों और विद्रूपताओं पर जमकर अपनी लेखनी चलाई है, वहीं उन्होंने साहित्य जगत् में चाहे कवि हों या व्यंग्यकार, किसी को नहीं बख्शा है। कोरोनाकाल में सरकारी अव्यवस्थाएँ जहाँ व्यंग्यकार को बहुत आहत करती हैं और वह 'लाचार मरीज़ और वेंटिलेटर पर सरकारें' की रचना कर डालते हैं तो दूसरी ओर इस त्रासदी से आए संकट पर वे 'नए देवता की तलाश' में भी जुट जाते हैं।

बात प्रदूषण की करें तो आज समाज का कौन सा ऐसा क्षेत्र है जो प्रदूषित नहीं है! इसी बात को 'दिल्ली है बिना फेफड़े वालों की' में वे कुछ इस तरह लिखते हैं- "शुद्ध हवा हल्की होती है और ऊपर उठ जाती है, गंदी हवा भारी होती है और हमारे गंदे राजनेताओं जैसी दिल्ली में बस जाती है।" प्रवासी भारतीय व्यंग्यकार की दृष्टि सिर्फ अपने देश तक ही सीमित नहीं है। वे 'संस्कृति के नशीले संस्कार' में लिखते हैं-"प्रजा को नशेड़ी बनाकर रखो तो सरकार का निठल्लापन छुप जाता है। कैनबस और मैरवाना अब कैनेडियन व अमेरिकी संस्कृति के आधुनिक संस्कार हैं। "इसी तरह 'अमेरिका-मैं साँस नहीं ले पा रहा हूँ' में उन्होंने अपना आक्रोश कुछ यूँ व्यक्त किया है और प्रश्न भी उठाया है- "अपने अधिसंख्य गोरे होने की अभिशप्त कुंठा में अमेरिका जी रहा है। वहाँ के राष्ट्रपति जी रहे हैं। क्या समानता पर आधारित संसार का यह सर्वश्रेष्ठ समाज कभी समवेत कह पाएगा- हम साँस नहीं ले पा रहे हैं।"

इसी प्रकार से धर्मपाल जैन ने अपनी दृष्टि सम्पन्नता, संवेदनशीलता और गहरी सोच के साथ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों और कुरूपताओं पर अपनी धारदार कलम चलाते हुए दिशा दर्शन किया है। व्यंग्य के शीर्षक अपनी बात कहने की क्षमता रखते हैं तो निश्चित ही वे पाठकों को पढ़ने के लिए बाध्य भी करेंगे। धर्मपाल जैन के व्यंग्य आलेख शैली और शिल्प दोनों ही दृष्टि से उल्लेखनीय हैं जिनमें विषय वैविध्य है। समाज में व्याप्त विषमताओं, विद्रूपताओं और विकृतियों को खोजकर अपनी व्यंजना शक्ति के माध्यम से आक्रोश को उन्होंने बेहतरीन अभिव्यक्ति दी है। उनकी अपनी कहन शैली है जिसके माध्यम से वे कई स्थानों पर व्यंजना के माध्यम से अपनी बात कहते हैं तो कहीं-कहीं वे अपनी बात सीधी-सपाट कहने में भी संकोच नहीं करते। नि:संदेह पाठकों को यह संग्रह आकृष्ट करेगा और पुस्तक पाठक वर्ग का भरपूर प्रतिसाद भी पाएगी। धर्मपाल जैन को इस नए संग्रह के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

तलाश ख़त्म हुई

समीक्षक : 'योगी' योगेन्द्र व्यास
लेखक : प्रमोद देवगिरिकर
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

जब मैं जब प्रमोद देवगिरिकर द्वारा रचित मर्डर मिस्ट्री उपन्यास "तलाश ख़त्म हुई" पढ़ रहा रहा था तब शीर्षक पढ़ कर ही और ख़ास कर शीर्षक में "ख़त्म" शब्द में जो "नुक्ता" लगाया उसे देख कर ही लग गया था की ये एक मनस्थिति को झकझोर देने वाला कोई घटना क्रम है जिसे एक बैठक में ही पढ़ कर "ख़त्म" करना होगा।

घटना क्रम 17 दिसंबर 2012 से शुरू होता है और 1 दिसंबर 2041 को जाकर ख़त्म होता है और ख़त्म क्या होती है जैसा कि लेखक ने प्रस्तावना में लियो टॉलस्टॉय का कथन कहा है "ख़ुशी सत्य को पाने से अधिक उसकी तलाश में है"। इस तलाश में न जाने कितने विग्रह, तनाव, दैहिक छल, विसंगतियाँ, सब कुछ पा लेने की लालसा, ईर्ष्या, मतभेद,और भी कई इंसानी फितरत से पार पाने के लिए छटपटाना पढ़ता है। यह उपन्यास एक पुलिस ऑफ़िसर विजय मिश्रा के कॅरियर के प्रथम मर्डर केस से है, जो अपने रिटायरमेंट पर जा कर अपने प्रथम केस के बारे में सही कातिल तक पहुँच पाता है, जबकि अधिकारिक रूप से इस केस का हल हो चुका होता है लेकिन एक आंतरिक छटपटाहट उसे इस केस से अलग नहीं होने देती।

कोई भी उपन्यास में उसके किरदार उसका लेखक ही गढ़ता है और वह ही गुत्थियाँ उलझता है और वह ही गुत्थियाँ सुलझाता भी है, लेखक ही मर्डर का प्लॉट तैयार करता है और लेखक ही उससे बाहर निकलने का तरीका भी खोजता है। ऐसे में मैं प्रमोद देवगिरीकर की प्रत्युत्पन्नमति की दाद देना चाहूँगा की कैसे एक-एक कड़ी को जोड़ -जोड़ कर पूरी मर्डर मिस्ट्री का ख़ाका तैयार किया। प्रमोद जी इस तरह से अपनी लेखनी को अंजाम देते गए जैसे पाठक ख़ुद एक इन्वेस्टिगेशन ऑफ़िसर हो। प्रमोद देवगिरिकर एक-एक वाक़ये की डिटेलिंग इस तरह से करते हैं कि पढ़ने वाला उस जगह उस स्थान का सजीव मानचित्र तैयार कर लेता है। मसलन घटना के स्थान की बिल्डिंग, उस जगह का कैफे, कमरे की सजावट, खिड़की दरवाज़े की लोकेशन, जीतने भी किरदार हैं, उनके व्यक्तित्व का सजीव चित्रण, पूछताछ के दौरान चेहरे एवं शरीर की भाव भंगिमाएँ, जिस व्यक्ति का खून हुआ है उसकी अवस्था, आस-पड़ोस के लोगों की प्रतिक्रिया, सब कुछ एक रिद्मिक रूप से चलचित्र की भाँति चलता है।

यह उपन्यास पढ़ कर हमें अपराध के पीछे पैदा हुए कारणों तथा अपराधी की मानसिक स्थिति-परिस्थिति को समझने की बेहतरी समझ भी विकसित करता है। समाज की विद्रुपता का एक चेहरा भी लेखक हमारे सामने प्रस्तुत करता है कि एक बेलगाम खिलंदड़ी विकृति किस तरह से एक पूरा परिवार तबाह कर देती है। कई मर्तबा एक अपराध और अपराधी को हम एक कम पढ़ा-लिखा और उसकी क्रूर प्रवत्ति से जोड़ कर ही देखते हैं लेकिन यह उपन्यास हमें आगाह करता है कि हमारे बदले परिवेश ने हमें आर्थिक रूप से भले ही संपन्न कर दिया हो लेकिन नैतिक रूप से हम उतने ही निर्धन और फटेहाल हैं। लेखक का आशय केवल सनसनीख़ेज उपन्यास लिखना ही नहीं है, वरन् यह बताना कि किस तरह एक विकसित समाज में लोग एक चोले की तरह लड़के और लड़कियों का वरण करते हैं और शराब की बोतलों के समान उन्हें अन्यत्र लुढ़का देते हैं और यही बात लेखक ने किरदारों के अंदर घुसकर उनकी छद्म मानसिकता को उजागर किया है।

प्रमोद देवगिरिकर ख़ुद एक आर्मी ऑफिसर रहे हैं इसलिए मानसिक दृढ़ता के लिहाज़ से यह उपन्यास बेहद अहम है। किरदार में आपने ये भी उजागर किया है कि किस तरह प्रशासनिक लापरवाही और राजनीतिक दबाव से तथ्यों के साथ समझौता किया जाता है। अपराध कितना भी छोटा या बड़ा हो उसके असल सत्य तक पहुँचा जाना बहुत ज़रूरी है, क्यों एवं किन परिस्थितियों में यह अपराध किया गया। इसमें अपराधी एवं विक्टिम की एक-एक कड़ियों को जोड़कर देखा जाना चाहिए। किसी की भी जान लेना नि:संदेह अपराध की श्रेणी में आता है लेकिन "क्यों" पर गहन अध्ययन होना चाहिए और यह ही लेखक प्रमोद देवगिरिकर ने बहुत ही गहराई से बताने की कोशिश की है।

000

'योगी' योगेन्द्र व्यास
मोबाइल- 9425061538
ईमेल- yvyas2010@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

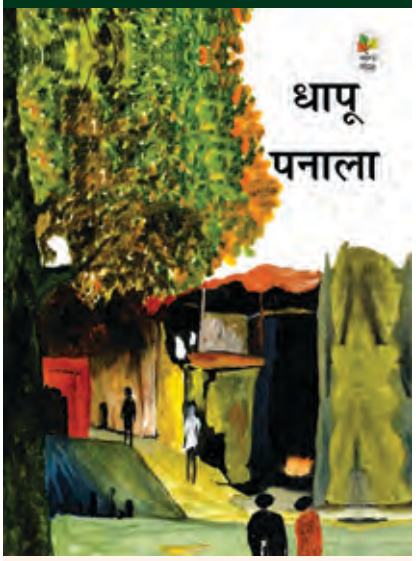

(व्यंग्य संग्रह)

धापू पनाला

समीक्षक : राहुल देव

लेखक : कैलाश मंडलेकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

राहुल देव

ईमेल- rahuldev.bly@gmail.com

कैलाश मण्डलेकर समकालीन हिन्दी व्यंग्य का जाना-पहचाना नाम है। अभी हाल ही में शिवना प्रकाशन सीहोर से उनका सातवाँ व्यंग्य संग्रह 'धापू पनाला' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में 'कालोनी के दंत चिकित्सक' से लेकर 'पकड़े गए पटवारी पिया' तक की 42 मील पत्थर तक की यात्रा तय करता हुआ पाठक व्यंग्य के विशिष्ट आस्वाद से परिचय प्राप्त करता है। 'बिगड़ा हुआ कूलर और एक अदद ठेले वाले की तलाश' में वह कूलर के पंप और पंखे की तुलना मध्यमवर्गीय दाम्पत्य से करते हुए हास्य व्यंग्य का बढ़िया उदाहरण पेश करते हैं। व्यंग्य को इम्प्रोवाइज़ करती हुई उनकी यह टिप्पणी कि 'पड़ोसी का दु:ख अपने दु:ख को आधा कर देता है।' सामाजिक सत्य है। कैलाश जी की ख़ूबी है कि हास्य का सहज समावेश। वह हास्य को व्यंग्य की ताक़त बनाकर प्रस्तुत करते हैं और इम्प्रोवाइज़ेशन की कला से करुणा का संतुलन बिठाते हैं। ऐसा करते हुए वे कहीं भी लाऊड नहीं होते, विषय से भटकते नहीं, कहीं से भी कृत्रिम नहीं लगते। भाषा की रवानगी में अपनी बात कहते चले जाने के वे उस्ताद हैं।

कैलाश मण्डलेकर पठनीय और सरल-सहज भाषा शैली में व्यक्त होने वाले मध्यमवर्गीय ग्रामीण और क़स्बाई जीवन के प्रवक्ता हैं। इनके व्यंग्य निबंध या कहानी के नहीं बल्कि रेखाचित्र के ज़्यादा नज़दीक प्रतीत होते हैं। रेखाचित्र और व्यंग्य के सहमेल से व्यंग्य का एक नया रूप निकलकर हमारे सामने आता है। जैसा कि 'एक ठहरी हुई बारात' शीर्षक व्यंग्य। ऐसा प्रयोग करने वाले वे मेरी नज़र में अकेले व्यंग्यकार हैं। कैलाश मंडलेकर व्यवस्थागत विसंगतियों पर सूक्ष्म ऑब्ज़रवेशन करते हुए विषय की परिणति तक उसके हर संभव आयाम की ओर जाते हैं, क्या पता किस गली में उनकी मुलाकात किस पात्र के ज़रिये किसी अनाम प्रदेश से हो जाए। शब्दसीमा उन जैसे लेखकों के लिए कभी बाधक नहीं बनी। आधुनिकता और लोकजीवन का सुंदर समन्वय उनके व्यंग्य लेखन की पहचान है।

'एन्टी रोमियो स्क्वॉड और आशिक का गिरेबान' नामक व्यंग्य में वे लिखते हैं- 'देश मे एन्टी टेररिस्ट स्क्वॉड की तर्ज पर एन्टी रोमियो स्क्वाड बन गए हैं। फर्क इतना है कि टेररिस्ट पकड़ में नही आते और मजनू आसानी से धर लिए जाते हैं।' इसी व्यंग्य में वे बेरोज़गारी के दंश का बयान करते हुए पूरी संवेदनशीलता से कहते हैं 'ये फाकाकशी की कोख से जन्मी बेरोज़गार जवानी है जो अकर्मण्यता के टल्ले खाती पार्क के अँधेरे कोने में खड़ी है। सरकार को इनका कॉलर पकड़ने के बजाय इनकी टी शर्ट के नीचे जो मासूम सा दिल है उसकी धड़कनों को सुनने की कोशिश करनी चाहिए।' इस तरह आपके व्यंग्य अराजक न होकर सामाजिक सरोकार के मूल्य के प्रबल पक्षधर हैं।

कैलाश मंडलेकर के व्यंग्य विषय भी कुछ अलग प्रकार के हैं। वे बहती गंगा में हाथ धोना पसंद नहीं करते बल्कि विषयों की खोज में जीवन और परिवेश के अधिक निकट चलायमान होते हैं- 'खाने-पीने के मामले में ज़्यादा सोच विचार नहीं करना चाहिए, रेल का खाना हो या जेल का। यदि कोई प्रेम से खिलाए तो चुपचाप खा लेना चाहिए।' (कहते हैं लोग, रेल का खाना ख़राब है) तथा 'लोगों को जागते रहने का आह्वान करते हुए ख़ुद गहरी नींद में चले जाना एक सामर्थ्यवान वॉचमैन के ही पुरुषार्थ के लक्षण हैं।' (आई ग्रीष्म चोर घर आए)

कैलाश मंडलेकर का अपने व्यंग्य के आलोक में यह स्पष्ट मानना है कि मध्यमवर्गीय आदमी की असुरक्षा के मूल कारण में राजनीतिक छल-प्रपंच है। वे बार बार देशज मिठास और लोक मनोभावों को समझे जाने की वकालत करते हैं। कई दफा सक्रिय बेईमानी पर निकम्मी ईमानदारी का भारी पड़ना उन्हें व्यथित करता है। रामकरण, शम्भूदयाल, भगत जी, गिरजा बाबू, डीसी मास्साब, रामसुमेर, दीनबन्धु जी, चुन्नी बाबू, सुदामा प्रसाद और वनग्राम धापू पनाला के मास्टर दयाराम जैसे विविधवर्णी चरित्र उनके व्यंग्यों में यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। इन तमाम चरित्रों में व्याप्त संभावनाओं को देखते हुए मैं आगे उनसे व्यंग्य के बड़े प्रारूप में कुछ लिखने की उम्मीद भी करता हूँ।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

सूखे पत्तों पर चलते हुए

समीक्षक : भालचंद्र जोशी

लेखक : शैलेन्द्र शरण

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

भालचंद्र जोशी
13एचआईजी, ओल्ड हाउसिंग बोर्ड
कॉलोनी, जैतापुर,
खरगोन 451001 (मप्र)
मोबाइल- 8989432087

शैलेंद्र शरण का कविता संग्रह 'सूखे पत्तों पर चलते हुए' पढ़ रहा हूँ। इस संग्रह की कविताएँ पिछले संग्रह की कविताओं से इस अर्थ में भिन्न हैं कि दोनों संग्रह के बीच समय की दूरी ने निश्चित रूप से जीवन अनुभव बढ़ाए होंगे और बदलते हुए समय ने भी आपको प्रभावित किया होगा। कई बार बदला हुआ समय हमारी संवेदना को भी प्रभावित करता है और कविता के मुहावरे को भी बदलता है। चीज़ें और स्थितियाँ बदलती हैं तो कविता की भाषा अप्रभावित नहीं रह सकती है। लेकिन भली बात तो यह है कि कविता के सरोकार नहीं बदले, कवि की संवेदन दृष्टि नहीं बदली। व्यक्ति और समाज को देश में समझने के लिए आपकी भाव प्रवण दृष्टि और ज़्यादा पानीदार हुई है। एक ठंडी उदासी के बीच का जो यह निरर्थकता बोध है यह समय के बीहड़ ने पैदा किया है और परिस्थितियों ने उसे क्रूर किया है। यह कविता एक निजी उदासी को समय के निरर्थकता बोध में खड़ा करने की मार्मिक कोशिश है।

इन कविताओं में आकस्मिकता का भी बहुत विशेष स्थान है। कई बार कोई एक शब्द आकस्मिक रूप से अपनी जगह खड़ा होकर कविता के तनाव को ख़त्म कर देता है। ऐसा शब्द असम्पृक्त होते जा रहे शब्दों को एकजुट कर अपनी एकता में अर्थ को नया और बड़ा जीवन दे देता है। ऐसा नहीं है कि इन अनुभवों की जड़ें नीचे परंपरा तक नहीं पहुँचती है लेकिन उसकी प्रस्तुति की विकलता कवि की निजी है। विकलता में यथार्थ की एक पुरातन छवि के प्रति जो आसक्ति है कविता की स्थिर संरचना का वही जड़ों के प्रति प्रेम है। साठोत्तरी कविता में देश और समाज में जो असंगत परिवर्तन हुए उसके प्रति गहरा असंतोष और तीखी प्रतिक्रिया थी। इधर के समय में देश और समाज में और ज़्यादा असंगत परिवर्तन नज़र आ रहे हैं इस पर आप की दृष्टि है यह बात संतोष की है। इस दृष्टि को, शरण की कविताओं के नज़दीक ज़रूर ला सकते हैं।

इस समय जो कविता लिखी जा रही है वह भी प्रतिबद्ध कविता है और किसी संगठन के विचार विशेष के आग्रह, दबाव और नारे से मुक्त हो चुकी है। यही वह समय है जब कविता की आँख में संवेदनात्मक ज्ञान के काव्य मुहावरे की दृष्टि विकसित हो सकती है। शैलेन्द्र की काव्य दृष्टि इस संभावना को सामने रखती है। इस संभावना में कविता की पनीली आँख में हम अपने समय की मार्मिक छवियाँ देख सकेंगे। आपसे उस परिश्रम की अपेक्षा है जिसमें कविता को जीवन यथार्थ के रूढ़ दृश्यों से पृथक कर उन आशंकाओं को निर्मूल प्रमाणित करने की धैर्य दृष्टि हो जो कविता में मनुष्य जीवन की चमक की अपेक्षा काव्य भाषा की चमक धर देने की चतुराई प्रकट करती है। इन कविताओं को पढ़कर लगता है कि हमारे जीवन अनुभव दुख और संघर्ष से आहत हैं।

आपकी कविताओं के प्रयास इसमें बैठी करुणा की खोज के प्रयास हैं। एक भली बात तो यह है कि इन कविताओं में कवि के निजी जीवन के अनुभवों की प्रति छाया प्रत्यक्ष नहीं है। इस बीहड़ समय के यथार्थ को कविता में जगह देने के लिए शैलेन्द्र का आहत मन ऐसी तल्लीनता से कोशिश करता है कि यथार्थ जहाँ जितनी जगह मिलती है उससे और आगे जाकर अपने उत्साह में क्षेत्र को विस्तारित करता है और निश्चित ही अपने राज्य विस्तार की ललक से शरण के करुण कवि मन को बड़ा तोष देने में सफल होता है। लेकिन कवि के लिए इतना अवश्य कहूँगा कि आप इस तोष की निगरानी करें और पड़ताल भी करें यह सावधानी आपकी कविता की संभावनाओं का क्षेत्र- विस्तार करने में मदद करेगी। और संभव हुआ तो यथार्थ के राज्य विस्तार के लोभ को लगाम देने में भी सहायक होगी।

हालाँकि कुछ कविताओं में ऐसा भी हुआ है कि आपके काव्य संयम और कविता संकोच ने समय के क्रूर यथार्थ को विचार की द्वंद्वात्मकता में जगह देने में परेशानी महसूस की। 'प्रतीति' कविता को इस संदर्भ में पढ़ा जा सकता है। लेकिन यह शुभ लक्षण है कि आपकी यथार्थवादी कविताएँ और प्रेम के धरातल की कविताएँ, दोनों में जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के द्वंद्व के संकेत हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

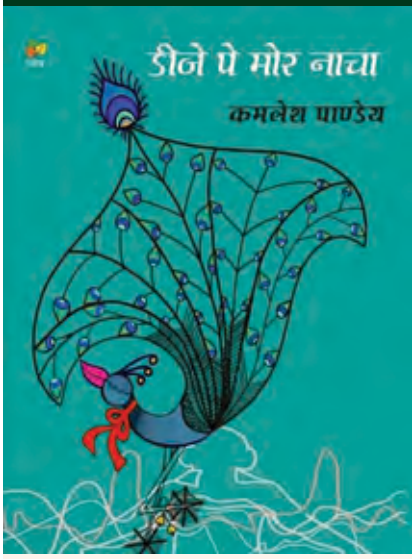

(व्यंग्य संग्रह)

डीजे पे मोर नाचा

समीक्षक : राहुल देव

लेखक : कमलेश पाण्डेय

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

राहुल देव

ईमेल- rahuldev.bly@gmail.com

कमलेश पांडेय कम लेकिन गुणवत्तापूर्ण लेखन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनकी व्यंग्य यात्रा के तमाम पड़ाव रहे हैं। हर पड़ाव पर उनकी व्यंग्य रचनाशीलता का एक अलहदा रंग देखने को मिलता है। यात्रा वृत्तांत लेखन की उन्होंने अपनी मौलिक शैली विकसित की है। वह एक सधे हुए फ़ोटोग्राफ़र भी हैं। 'डीजे पे मोर नाचा' कमलेश पांडेय का पाँचवाँ व्यंग्य संग्रह है। यह संग्रह इक्यावन व्यंग्य रचनाओं से सजा हुआ है। इन व्यंग्यों में आज के जीवन की मार्मिक स्थितियों की चित्रोपम उपस्थिति है। जीवन के व्यापक संदर्भ तथा समकालीन घटनाओं से यह व्यंग्य सीधा सामना करती दिखते हैं। अनेक जगह वैश्विक घटनाक्रम पर भी व्यंग्यकार की सहज दृष्टि है। पूरे संकलन की रचनाओं में उनकी अपनी यह पहचान लक्ष्य की जा सकती है। कहीं कहीं वे एक नया सौंदर्यशास्त्र रचती लगती है। उनकी भाषा प्रचलित और चलताऊ भाषा से बिल्कुल भिन्न है। बहुधा वह हिंग्लिश की छाती पर वह जिस तरह से व्यंग्य का अंगद पाँव रखते हैं, उसकी छटा देखते ही बनती है।

कमलेश पच्चीकारी के नहीं रवानगी के लेखक हैं। उन्होंने मुश्ताक अहमद युसूफ़ी कृत उर्दू से हिन्दी अनुवाद का तमाम व्यंग्य साहित्य 'लफ्ज़' के संपादन सहयोग के दौर में पूरा मथ डाला है। जिसका प्रभाव उनके लेखन पर पड़ा है। लिखते हुए वे कभी भी इनाम-इकराम के पीछे नहीं भागे। पांडेय जी हमेशा ही छपने से एकदम बेपरवाह अपनी धुन में बेलौस लेखन करते पाए गए। साहित्य क्षेत्र में यह उपलब्धि कम नहीं। व्यंग्यकार विषयों की खोज में उन क्षेत्रों में भी गया है जहाँ बहुधा जाने से लोग या तो हिचकते हैं या जानबूझ कर वहाँ जाना नहीं चाहते। कमलेश पांडेय अपने व्यंग्यों के माध्यम से लोक के मनोरम पहलू के साथ उसका संघर्षधर्मी पहलू भी उजागर करते चलते हैं। यही कारण है ये व्यंग्य रचनाएँ आज के भयावह यथार्थ को बड़े साहस तथा आत्मविश्वास से व्यक्त कर पाई हैं। वह संश्लिष्ट यथार्थ और गहन विचारबोध के अनूठे व्यंग्यशिल्पी हैं। प्याज की फाँकों की तरह इनके व्यंग्य परत दर परत खुलते चलते हैं। वे पाठक को अचानक हँसाते हुए रुला जाते हैं। कमलेश विसंगतियों के पोस्टमार्टम करते वक्त परिवेशगत ख़ूबियों को बड़ी कुशलता से व्यक्त करते है। देश की आर्थिक नीतियों के वे रचनात्मक आलोचक हैं। ऐसी गतिविधियों में समाए लूपहोल्स के चित्र यहाँ अति सामान्य हैं। वह बाज़ार और विज्ञापनी दुनिया के अतिवाद की चुनौतियों से निपटने की तैयारी में ग्राहक को लगातार जगाने की कोशिश करते दिखाई देते हैं- 'बाज़ार ग्राहकों की आकांक्षाओं से भरी पलकों में सपनों की चिंगारियाँ डालता है और छूट-डिस्काउंट की हवा फूँक कर आग भड़काता है।' (जागो ग्राहक जागो)

इनके अतिरिक्त इस संग्रह में मुद्दों की बस्ती, सिंदबाद की अंतिम यात्रा, वैलेंटाइन डे इन पनौतीगंज, बहस पुराण, ज़िंदगी एक सफ़र है सुहाना, मार्केट ऑफर टू कबीर, बैंक ऋण निर्वाण दिवस और गिरा हुआ रुपया जैसी तमाम उल्लेखनीय रंग रचनाएँ शामिल हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक व्यंग्य की सार्थकता से भर उठता है।

आर्थिक मामलों जैसे बेहद महत्त्वपूर्ण लेकिन व्यंग्य की नज़र से नीरस संभावनाओं वाले विषयों पर पूरे अधिकार के साथ लिखने वाले लेखकों में आलोक पुराणिक के बाद उनका नाम ही ज़ेहन में आता है। वे एक कुशल गोताखोर की तरह विषय की तह तक जाते हैं, केवल ऊपर ऊपर तैरते नहीं रह जाते। एक संवेदनशील मानवीय समाज की सतत तलाश उनके व्यंग्य लेखन की मूल भावना है। 'वर्क लाइफ बैलेंस' के समाजवादी मॉडल का आदर्श कमलेश की व्यंग्यदृष्टि का परिचायक है। लेखन जहाँ कोई शगल नहीं कलम की सामर्थ्य से संचालित परिवर्तन पथ की यात्रा है। कमलेश पांडेय का व्यंग्य विवेक स्वतंत्र नागरिक चेतना का आग्रही है। इन विशेषताओं से आपके व्यंग्य तात्कालिकता पर एक ज़हीन टिप्पणी भर नहीं बल्कि साहित्यिक मूल्यों से सम्पन्न शाश्वत निधि बन जाते हैं। मुझे उम्मीद है व्यंग्य के पाठक शिवना प्रकाशन से छपे उनके इस नए व्यंग्य संकलन को पढ़कर अभिभूत होंगे।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

खिड़कियों से झाँकती आँखें

समीक्षक : शीला मिश्रा

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

शीला मिश्रा
बी-4, सेक्टर-2, रॉयल रेसीडेंसी
बावड़ियाँ कलां, थाना शाहपुरा के पास,
भोपाल (मप्र) 462039
मोबाइल - 9977655565
ईमेल - sheelamishra2006@gmail.com

इस संग्रह की पहली कहानी "खिड़कियों से झाँकती आँखें" अपनी संतान के दूर रहने पर एकाकी जीवन जी रहे वृद्धों की भावनाओं को व्यक्त करने में अत्यंत सफल रही है। स्नेह के लिए तरसते वृद्धों के मनोभावों को लेखिका ने बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। आज नौकरी के सिलसिले में बच्चों का माता-पिता से दूर रहना, उनकी विवशता हो सकती है परंतु संवेदना के स्तर पर माता-पिता से दूर हो जाना वर्तमान समय का एक ऐसा कटु यथार्थ है जो चिंतन के लिए मजबूर करता है। चाहे देश हो या विदेश, बुज़ुर्गों के प्रति बढ़ती बच्चों की उदासीनता से जहाँ वे स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगे हैं वहीं शून्य होती संवेदना से अत्यंत हतप्रभ व निराश भी। इस कटु यथार्थ को लेखिका ने बहुत ही प्रामाणिकता से व्यक्त किया है। इसे संग्रह की बेहद सशक्त कहानी कहा जा सकता है। दूसरी कहानी "वसूली" बेटे के व्यवहार की संवेदनशीलता का सटीक चित्रण है। वर्तमान समय में कई घरों की निर्मम सच्चाई को लेखिका ने बख़ूबी व्यक्त किया है। धन व स्टेटस के प्रति बढ़ता मोह माँ के स्नेह को अनदेखा कर सकता है, यह सुनने में तो अविश्वसनीय लगता है किंतु वर्तमान समय में यह कई घरों की दारुण व्यथा है। लेखिका ने इस सच से उपजी भयावह स्थिति को उजागर किया है।

तीसरी कहानी "एक ग़लत कदम" माता-पिता व बच्चों के बीच, मूल्यों व सिद्धांतों के कशमकश को व्यक्त करती है। भारतीय माता-पिता चाहे देश में रह रहे हों या विदेश में; अभी भी यह सपना सँजोते हैं कि बच्चों की शादी अपनी ही बिरादरी में हो किन्तु जब बेटा अपनी पसंद से शादी करता है, तो उन्हें यह अपने प्रति विद्रोह प्रतीत होता है और वे वास्तविकता को स्वीकार नहीं कर पाते। दूसरी तरफ जो बच्चे माता-पिता की पसंद से अपनी बिरादरी में शादी तो करते हैं किंतु धीरे-धीरे अपने कर्त्तव्य से विमुख होकर उन्हें वृद्धाश्रम में भेजने तक को तैयार हो जाते हैं। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने जहाँ वर्तमान समय का सच व्यक्त किया है वही कहानी का सुखद अंत दिखाकर यह संदेश भी दिया है कि विजातीय होने भर से ही भावनात्मक लगाव कम नहीं होता। चौथी कहानी "ऐसा भी होता है" पढ़कर वास्तव में सोच ,इस बात पर अटक गई कि क्या ऐसा भी हो सकता है... वही वसूली का भाव... क्या माता-पिता इस कदर स्वार्थी हो सकते हैं... ? पत्र के माध्यम से लिखी कहानी का प्रवाह अत्यंत प्रभावोत्पादक तथा अपनी गिरफ्त में रखने में पूर्णतया सफल रहा है। "कास्मिक की कस्टडी" कहानी आरंभ में चमत्कृत करती है और अंत तक आते-आते चेहरे पर मुस्कान ले आती है। इस कहानी में लेखिका की कलम की क़िस्सागोई की विशेषता उभरकर सामने आती है।

छठी कहानी "यह पत्र उस तक पहुँचा देना" राजनीति में छुपे अपराधीकरण की कलई खोलती है। रहस्य-रोमांच में गुँथी, अद्‌भुत वाक्य- विन्यास से सजी यह कहानी अचंभित करती है। सातवीं कहानी "अँधेरा -उजाला" समाज में गहरे पैठे दोहरे मापदंड पर कड़ा प्रहार करती है साथ ही लोगों की इस मानसिकता को भी सामने रखती है कि प्रतिष्ठा मिलने पर, उनकी नज़रों से जात-पात व ऊँच-नीच का भेद स्वत: मिट जाता है। कला के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा की भावना के तहत किस तरह षड्यंत्र रचे जाते हैं, इसका खुलासा भी यह कहानी करती है किन्तु नब्बे के दशक में मुख्य पात्र 'इला'की सोच इतनी क्रांतिकारी हो सकती है, यह बात थोड़ी अविश्वसनीय लगती है। वैसे लेखक अपनी कहानी के लिए कालखंड चुनने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होता है। इस कहानी-संग्रह की आठवीं व अंतिम कहानी "एक नई दिशा", धोखाधड़ी किस तरह रची जाती है, इसकी पोल खोलती है। इस कहानी का अंत एक सुखद सकारात्मक संदेश के साथ होता है, जो निश्चित ही पाठकों को अपनी जीवनशैली के प्रति जागरूक करेगा। सहज व सरल भाषा में लिखी गई इस कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ पढ़ते हुए जैसी उत्सुकता मन में बनी रहती है वैसी ही उसकी प्रतिध्वनि बहुत देर तक मानस पटल पर ठहरती है। सशक्त कथानक तथा प्रवाहमान भाषा द्वारा प्रभावोत्पादकता बनाए रखना व कथोपकथन के माध्यम से दृश्य उपस्थित कर देना सुधा ओम ढींगरा की लेखनी की विशिष्टता है।

000

शोध आलेख

डॉ. राकेश प्रेम का रचना संसार और विविध विमर्श

शोध : डॉ. दीप्ति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
हिन्दू कॉलेज, अमृतसर

डॉ. दीप्ति
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
हिन्दू कॉलेज, कटरा अहलूवालिया
अमृतसर (पंजाब) 143001

साहित्य की एक अभिन्न विधा कविता भाषा की सुंदर संरचना होती है। समाज का अंग होने के नाते कवि अपने मौलिक सृजन में समाज से जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करता है, अपने जीवन काल में जो भी ज्ञान, अभ्यास और अनुभव प्राप्त करता है, वही अपने सृजन में अभिव्यक्त करता है। आधुनिक काल में भी कवियों की उत्कृष्ट रचनाएँ हिंदी साहित्य कोष को अनवरत् समृद्ध कर रही हैं। आधुनिक काल के पंजाब के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. राकेश प्रेम ने हिंदू कॉलेज अमृतसर में 37 वर्ष तक प्रोफ़ेसर और प्राचार्य पद की ज़िम्मेदारियों का बख़ूबी निर्वहन किया। उनके 5 कविता संग्रह एवं समय-समय पर विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में शोध एवं समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हुए हैं। इनकी कविताओं का नेपाली भाषा में अनूदित एवं प्रकाशित होना उनकी कविताओं के महत्त्व को स्वयंसिद्ध करता है। उनका नए कविता संग्रह 'सूरजमुखी सा खिलता है जो' में उनकी 57 कविताएँ सम्मिलित हैं। इस काव्य साहित्य का परिक्षेत्र रचना कर्म के संदर्भ में सृजन, मौन, संवेदना, अनुभूति एवं मानव जीवन की विविध अवस्थाओं व सरोकारों, पौराणिक संदर्भों एवं दर्शन भाव को जहाँ बख़ूबी चिन्हित करता है, वहीं पारिवारिक एवं सामाजिक स्नेहमयी रिश्तों की महत्ता को रेखांकित करते हुए 21वीं सदी के वर्तमान पदार्थवादी परिदृश्य में लुप्त होती मानवता, कुटिल राजनीति पर चिंता प्रकट करते हुए, आत्म विश्लेषण के द्वारा आत्म परिमार्जन को महत्त्व देते हुए उदात्त मानव मूल्यों की स्थापना का संदेश देकर यथार्थ के विभिन्न रूपों को सहेजता हुआ लेखक के बहुमुखी दृष्टिकोण को बख़ूबी दर्शाता है। इस प्रकार से प्रस्तुत कविता संग्रह में कालातीत जीवन के सत्य एवं यथार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह 'सूरजमुखी सा खिलता है जो' की कविताएँ कवि कर्म के संदर्भ में सृजन के महत्त्व एवं आवश्यकता को बख़ूबी चित्रित करती हैं। कवियों के लिए कवि कर्म का दायित्व निभाना आसान और सहज नहीं होता। अपने विचारों व अनुभवों को चुनिंदा शब्दों में ढालना जटिल कार्य होता है। इन सबके बावजूद कवि सृजन में ही संतुष्टि का अनुभव करता हुआ स्वयं का साक्षात्कार अपनी रचनाओं में करता है। प्रत्येक कविता कवि के व्यक्तित्व, रचना प्रक्रिया, सोच-विचार एवं दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह डॉ. राकेश प्रेम के कवि कर्म के प्रति गंभीरता एवं अनवरत सृजनशील व्यक्तित्व का साक्ष्य है। 'सृजन की उष्मा', 'जीवन की भाषा,' 'सोया हुआ शब्द' और 'उजली धूप' कविताएँ कवि के लिए अनुभूति और मौन की नींव को कविता सृजन के लिए अनिवार्य बताती हैं- "कविता/ जीवन का कल और आज है/ सुवासित गंध-सी/जीवन के/ संचित अनुभवों की/ भागीरथी है कविता।"

'पिघलने दो शब्द को' और 'संजीवनी' कविताओं में कवि स्मृतियों को पुनर्नवा करते हुए शब्दों के द्वारा संवाद रच कर उन्हें किसी रचना के रूप में पाठकों तक पहुँचाने की बात करता है। 'संजीवनी' कविता में कवि कविता को जीवन सत्व की संजीवनी मानते हुये व्यक्तिगत से सामाजिकता के हित में अर्पित करता है- "एक भाव है कविता/ विचरता है जो/ एकत्व से अनेकत्व तक/ आत्मावलोकन को करता प्रतिभासित/ सामाजिकता के लोकार्पण में।"

प्रस्तुत काव्य-संग्रह की 'पिता' कविता दो पीढ़ियों के पिता और बेटे के बीच के संबंधों में आए अंतर को बख़ूबी बयाँ करती है। कवि कहता है कि पहले बच्चे माँ के अधिक नज़दीक ही होते थे। उनकी सारी चिंताएँ भी माँ की होती थी। पिता से बेटा डर के कारण कुछ नहीं कह पाता था, किंतु अब समय बदल गया है। अब युवा होते बेटे व्यंग्य कसने और स्वयं को सही सिद्ध करने की चुनौती देने से भी पीछे नहीं हटते- "और मेरा युवा होता बेटा/अपने पर तौलने लगा है/ सहज व्यंग्योक्तियों से चुनौती देता/ बात-बात में/ समझदार हो जाने की गवाही देता। सोचता/अब मैं/ पिता की भूमिका पर/बाप-बेटे के संबंधों की/ बदलती हुई दुनिया पर/चुभती कहीं/ कील पर।"

प्रस्तुत काव्य-संग्रह आधुनिक युग में रिश्तों का सकारात्मक उज्ज्वल पहलू भी दर्शाता है। माँ और संतान का सबसे अनोखा उत्कृष्ट रिश्ता होता है। माँ जो अपने गर्भ में नौ महीने बच्चे को

रखकर उसे जन्म देकर दुनिया में लाती है। कहा जाता है कि भगवान जब हर जगह उपस्थित नहीं रह सकते थे तो उन्होंने माँ को बनाया। माँ, जिसकी स्नेहमयी छाया में प्रत्येक बच्चा अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। माँ के आँचल में उसे पूरे विश्व की ख़ुशियाँ मिलती हैं। प्रस्तुत काव्य-संग्रह में 'माँ' और ''माँ की स्मृति' में कवि 'माँ' की स्मृतियों में खोए हुए अपनी माँ के प्रति भावनाओं को अभिव्यक्त करता है- ''माँ/ तुम्हारी उँगली पकड़ सीखा जो/ बहुत याद आता है अब भी/जीवन की टेढ़ी-मेढ़ी डगर पर/डोलता है विश्वास जब/ मज़बूती से टिके रहते हैं पाँव ज़मीन पर/ हाथ की उँगलियाँ सिकुड़तीं-सी/ टटोलती-गंतव्य अपना/ अलौकिक किसी संदेश को/ महसूस करतीं-/ सार्थक किसी बोध से अनुप्राणित होता जीवन।''

इसी तरह 'बचपन' कविता मानव जीवन के सर्वश्रेष्ठ समय बचपन को रेखांकित करती है। बचपन में मन सभी चिंताओं से मुक्त रहता है। माँ-बाप के आश्रय में बच्चा हर पल ख़ुशियों को महसूस करता है। उनकी डाँट में भी प्यार एवं स्नेह की झलक बच्चे को सदैव दिखाई देती है। पथ प्रदर्शक माँ और बाप सदैव उसे अपने वात्सल्य एवं ममता की छाया में दुनिया की नज़रों से बचा कर रखते हैं। बचपन में ख़ुशी और ग़म एक ही सिक्के के दो पहलू लगते हैं और बात बेबात पर हँसी और रोना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता- ''ज़मीन पर/दौड़ते पाँव/हवा से बातें करते जैसे/हवा की गति को भी/देना चाहते हैं मात/ख़ुशी और गम जहाँ/एक ही सिक्के के/ पहलू से दिखते हैं/ बात-बेबात पर हँसी/और रोना/ जहाँ रखता नहीं है/कोई विशेष अर्थ/हाँ/ यही है बचपन/जीवन का मूलाधार।''

प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कविताओं में कवि मानव के वात्सल्यमयी व स्नेहमयी संबंधों को भी चित्रित करता है। प्रत्येक परिवार अपनी आने वाली पीढ़ी के शिशुओं में अपनी पीढ़ी की परंपरा देखता है। नवजात शिशु पर परिवार का प्रत्येक सदस्य ममता एवं वात्सल्य उडेलता है। 'दूधमुँहा बच्चा' नवजात शिशुओं के प्रति परिवार के इसी स्नेह को चित्रित करता है- ''माँ के वक्ष से चिपटा/ अमृतपान करता/ दूधमुँहा बच्चा/ किस-किस की कहें/ किस-किस को कहें/सबके मन-आँगन में बैठा/ एक चिरंतन बिंब में ढला/ दूधमुँहा बच्चा।''

'स्नेह-सुधा' कविता में कवि अपने अतीत की स्मृतियों में खोया हुआ माँ की गोद और पिता की स्नेह भरी दृष्टि को याद करते हुए एक बार फिर से स्नेह की उष्मा से सराबोर होता है- ''बच्चों की अठखेलियों में/ पोर-पोर डूबा है/ रोआँ-रोआँ खिलखिलाया है/ रहा होगा यही अनुभव/ माँ की गोद में थे/ जब हम/ पिता की स्नेहसिक्त दृष्टि में पनपते/ आज फिर जीवन/ हो रहा अभिसिंचित/ स्नेह की नव-ऊष्मा से।''

प्रस्तुत काव्य-संग्रह प्रकृति द्वारा प्रदत्त रिश्तों के साथ-साथ सच्ची मित्रता के रिश्ते को भी चिह्नित करता है। 'हमजोली' कविता में कवि अपने स्वर्गीय मित्र की स्मृतियों में खोया उसके प्रति अपने स्नेह व निश्छल मैत्री भाव को प्रदर्शित कर रहा है- ''कभी/शब्द की बात/ करते/ हम दोनों/अपने-अपने तर्क के साथ/अर्थ की छाया में खोजते हुए/कारगर शब्द/केवल शब्द/प्राणवान शब्द।''

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में पौराणिक चरित्रों के संदर्भों द्वारा कवि पाठकों के सामने जीवन का अर्थ खोजने का प्रश्न रखता है। 'संदर्भ, 'युधिष्ठिर', 'दर्शन' तथा 'दंश' कविताएँ पौराणिक पात्रों के संदर्भ द्वारा पाठकों के सामने उन्माद व अहम और वर्चस्व की लड़ाई की सार्थकता पर प्रश्न उठाती हैं। कवि इस बात को रेखांकित करता है कि संबंध हमारी ताक़त भी होते हैं और कमज़ोरी भी। संबंध आशा और विश्वास से जुड़े होते हैं। संशय की गाँठ से रिश्ते छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। 'दंश' और 'युधिष्ठिर' कविताएँ इस सत्य को चिह्नित करती हैं कि पौराणिक पात्र युधिष्ठिर जैसे आदर्श मानव भी अहंकार, धृष्टता व कपट से दो-चार होते रहे हैं- ''यह नहीं कि/ द्रौपदी को दाँव पर लगा देने को/ अभियुक्त नहीं ये युधिष्ठिर/.. हाँ, नहीं जानते थे/ टिक नहीं पाएँगे शकुनि के कपटी मन के आगे/ सहजता से जुड़ा उनका धर्म/ जीवन-मर्म/ पिट जाएगा।''

आधुनिक काल में कपट, बेईमानी, षड्यंत्र व धोखा प्राचीन काल की अपेक्षा अत्यधिक घिनौने रूप में पाया जाता है। समाचार पत्रों में प्रतिदिन रिश्तेदारों के द्वारा ज़मीन हड़पने के लिए अपने संबंधियों की हत्या, बलात्कार, दूसरों की पूँजी व संपत्ति को नाजायज़ रूप से हड़पने इत्यादि दुखद ख़बरें प्राय: पढ़ने को मिलती हैं। 'भेड़िया' कविता आज के वैज्ञानिक एवं तथाकथित समृद्ध दौर में दुष्ट मानव द्वारा मानवीयता की सारी सीमाओं को लाँघते हुए स्वार्थ पूर्ति हेतु दूसरों को धोखा देने तथा नारी के शरीर को खिलौने की तरह प्रयोग करके उसे मारने जैसे दुष्कर्मों के कटु यथार्थ पर प्रकाश डालती है। लोभ के वशीभूत मानव दुर्बुद्धि का दास बनकर कर्म, दुष्कर्म व सुकर्म में अंतर को भूलकर साम, दाम, दंड व भेद अपनाकर मन के दंभ हेतु तथाकथित जीत हासिल करने में लगातार लगा हुआ है, किंतु वह भूल गया है कि कर्म कभी भी मानव का पीछा नहीं छोड़ता है। आज या कल उसे उसके किए कर्मों का भुगतान अवश्य ही करना पड़ता है- ''चिंतनशील मानव/ बन जाता है जब भेड़िया/ भस्मासुर-सा वह/ मर्यादा को बनाकर दासी अपनी/ लोलुपता के रथ पर/ हो कर सवार/ विजयाभिमान में जुट जाता है/ भूलकर /कर्म/ सुकर्म/ और दुष्कर्म/फलीभूत होते हैं अवश्य।''

आज क्रोध और अविश्वास का विष मानव के मन- मस्तिष्क में इतना घुल गया है कि एक मानव दूसरे मानव का लहू बहाने में रत्ती भर भी संकोच नहीं करता। किसी की माँ, बहन, पत्नी व बेटी के मन की उमंग से बेशर्मी की हद तक खेलने से भी संकोच नहीं करता। 'प्रार्थना' कविता में कवि इस अमानवीयता का निसंकोच विरोध करता है। 'प्रार्थना' कविता में कवि भगवान से प्रार्थना करता है कि वह अपनी संतानों को मानवीयता का ज्ञान दे ताकि वे 'वासुदेव कुटुंबकम्' की भावना को आत्मसात् करें और एक दूसरे के प्रति घृणा, ईर्ष्या व द्वेष के नकारात्मक भावों को त्याग कर प्रेम एवं स्नेह के भाव से परस्पर आत्मीय

भाव से जुड़कर एक दूसरे के दुख और सुख को अपना समझें- " हे मेरे प्रभु/ हमें विश्वास दे/सिरजनहार/हमारे ज़ख्म भरे दिल पर/ स्नेह-अमृत का छींटा दे/ एक-दूसरे के दुख में डूबने/ और एक-दूसरे के सुख में खोने/की सद्बुद्धि दे/हे मेरे गरीब निवाज़।"

भारत के प्राचीनतम ग्रंथ सत्य, अहिंसा और सदाचार का संदेश देते हैं, मान और मर्यादा की शिक्षा देते हैं। प्राचीन काल से हमारा भारतीय समाज इन संदेशों को बख़ूबी अपने व्यक्तित्व में, रहन-सहन में अपनाता रहा है, किंतु आज 21वीं सदी के दौर में सामाजिक ढाँचे में कुछ नकारात्मक बदलाव आ रहे हैं। 'क्षणिकाएँ' कविता इसी परिवर्तन को रेखांकित करती है कि आज मानव की ज़िंदगी से सत्य, अहिंसा और सदाचार जैसे ग़ायब हो रहे हैं। वे तो जैसे म्यूज़ियम में पुरानी चीज़ों की तरह रखने का उपकरण मात्र बन कर रह गए हैं। आज मान और मर्यादा शब्द केवल शब्दकोश में ही शोभा पा रहे हैं। आज हर व्यक्ति मुखौटा ओढ़े दोहरा जीवन जी रहा है। पहले पुराने घरों में साँप अपनी केंचुली को उतारा करता था, किंतु आज लगता है कि मानव की आँखों से शर्म की केंचुली उतर रही है और झूठ, आडंबर एवं बेईमानी का ही सर्वत्र बोलबाला है। डॉ. देवराज इनकी कविताओं में व्याप्त आक्रोश तथा मुखर मानवीय काव्य संवेदना को देखते हुए कहते हैं, "ऐसी समर्थ कविता रचने वाला कवि ही यथार्थ ही ज़मीन पर चलते हुए यह कहने की हिम्मत कर सकता है कि कविता का काम कोई नया सूरज उगाना नहीं है बल्कि उसका काम सूरज उगने की ज़मीन तैयार करना है।"

'क्षणिकाएँ' कविता में कवि कहता है- "पहले कभी पुराने घरों में/ मिल जाया करती थी/ साँप की केंचुल/अब नये घरों में/ कीलियों पर टँगा है ईमान/ और उतर रही है आँखों से केंचुल/ शर्म-हया की।"

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में 'अंतर' कविता श्रेष्ठ मानवीय मूल्य से परिचित करवाती हुई उदातत्ता की ओर गतिशील होती है। 'अंतर' कविता मानव को संबंधों की महत्ता से अवगत करवाते हुए मानवता को सर्वश्रेष्ठ घोषित करती है- "आज के स्पुतनिक राडार युग में/ वर्ष भर में बदलते हैं/ कई बार केंचुल/ और तुम अभी/सिद्धांतों की केंचुल से बँधे हो/कोल्हू के बैल से/ तुम/ समझो-जानो/ कम से कम/ अपने और उनके/ अंतर को पहचानो।"

'क्षणिकाएं' और 'अमरबेलि' कविताएँ भारत माँ की अकर्मण्य संतानों की मिथ्या देश प्रेम की भावना पर प्रकाश डालतीं है कि आज भारतवासी स्वयं को अखण्ड भारत के निवासी न समझ कर भाषा, प्रांत, धर्म व संप्रदाय के नाम पर बँट गए हैं। उनमें वर्ष में 15 अगस्त और 26 जनवरी ये दो दिन ही राष्ट्रप्रेम की भावना को जगाते हैं। इस अवसर पर देशवासी बाहरी दिखावे के लिए उत्सव, भाषण और भावावेश अभिव्यक्त करते हैं। इन दो दिनों के अतिरिक्त संपूर्ण वर्ष अपने स्वार्थों को पूर्ण करने हेतु लगे रहते हैं। हमारे पूर्वजों ने अपने नि:स्वार्थ भाव से दिए बलिदानों से भारत माँ को आज़ाद करवाया। उन्होंने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा कि उनकी आने वाली पीढ़ियाँ अपनी विषाक्त मनोकामनाओं के चलते स्वार्थ के वशीभूत होकर देश के प्रति अपने कर्तव्यों को भुला देंगे- "भाषा-प्रांत/धर्म- संप्रदाय/ के विवादों में घिरे हम/ बंदर बाँट के दर्शन में जुटे हैं/ कि पेड़ रहे न रहे/हम हाथों में थामे/ कुल्हाड़ियाँ और दरातियाँ/ अपने-अपने हिस्से पर/ हो जाएँ काबिज़।"

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में 'दिवास्वप्न' और 'एक और यात्रा' कविताएँ कवि की दार्शनिक भावना को स्पष्ट परिलक्षित करती हैं। 'दिवास्वप्न' कविता पंच तत्व शरीर की नश्वरता पर शोक करने को व्यर्थ मानती है और आत्मा को अजर-अमर मानती है। सृष्टि चक्र में मानव अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच का निमित्त है। काया केवल आवागमन के चक्रव्यूह में उलझी रहती है। यह जीवन तो एक दिवास्वप्न सा अस्थाई है- "काया है/ माया केवल/आवागमन के चक्रव्यूह में /अस्तित्वहीन/भ्रमजाल- सी/ धरती और आकाश के मध्य/ विनिर्मित/वाष्पकण जैसे/ धूप के एक संस्पर्श से ही/हो जाते हैं जो अस्तित्वहीन/वैसा ही है जीवन /एक दिवास्वप्न-सा।"

इसी प्रकार 'एक और यात्रा' कविता मृत्यु के बाद नव जीवन में विश्वास को रेखांकित करती है। यह सत्य है कि आत्मवंचना की भूल-भुलैया में डूबे मानव को एक दिन इस दुनिया को छोड़कर जाना होता है, किन्तु आत्मा पुर्नजन्म के द्वारा नया शरीर धारण कर नवजीवन प्राप्त करती है- "पंचतत्व फिर से/ एकाकार हो जाएँगे/ मूल तत्व संग/ सजेगा/नव जीवन-वितान/इंद्रधनुषी रंगों के पार्श्व में/होगा संधान/एक और यात्रा का।"

'नवजीवन' और 'कोपल' कविताएँ कवि के सकारात्मक व आशावादी दृष्टिकोण को उजागर करती हैं। कवि प्रकृति से संबंधित उदाहरण देते हुए कहता हैं कि पेड़ों के जड़ से उखड़ जाने पर भी नई कोपलें नवजीवन के साथ आशा का संदेश देती है। मानव को जीवन में हार-जीत, टूटन और बिखराव से दो-चार होना ही पड़ता हैं, किंतु विपरीत परिस्थितियों में भी मानव को आशा का दामन नहीं छोड़ना चाहिए- "कोपल एक ही फूटती है जब/ उल्लसित करती प्रकृति को/ नवजीवन की उमंग और तरंग/ फैलती हवा में/ आशा और विश्वास की अनुगूँज।"

प्रत्येक मानव के जीवन में निराशा और अवसाद के क्षण आते हैं। ऐसे में मानव का दृष्टिकोण उदासीन होना जायज होता है। 'कई दिनों से' कविता में निराश आदमी की झलक दिखाई देती है। विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए निराशा से दो-चार होते हुए कभी-कभी तनाव में आदमी का टूटना और बिखरना स्वाभाविक है- "इधर कई दिनों से/उजली धूप का उतरना/ और घर-आँगन पसर जाना/ नहीं देख पा रहा हूँ/ धूप ने आना छोड़ दिया/इधर कई दिनों से/ अपने ही से बतिया नहीं पा रहा हूँ/ मन ने भावों की सरगम पे/सा-रे-गा-मा गुनगुनाना छोड़ दिया।"

'आदमी' कविता में कवि अपने से ही कट जाने में तनाव के उफ़ान का ज़िक्र करता है। कवि कहता है- "जब कभी/ अपने से/ कट जाता है आदमी/ बाहर और भीतर में/ बँट जाता है आदमी/एक लिजलिजापन सालता

है/ तन को/ मन को/ रोएँदार कीड़े रेंगते हैं/दिमाग़ की गहरी परतों में/ जुगाली करते बैल- सा/ उठता है/ तनाव का उफ़ान ।"

कवि जहाँ निराशा को अपनी कविता द्वारा अभिव्यक्त करता है, वहीं आशावादी स्वर भी उनकी कविता में दृष्टिगोचर होता है। 'बहुत दिनों के बाद' कविता में कवि का सकारात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है- "बहुत दिनों के बाद /फैली है आँगन में/एक खनकती-सी/ सुनहरी आभा/ताँबे-सी सुनहरी किरणें/खेल रही हैं/पेड़-पौधों पर/चहचहाते पंछियों के घोसलों में/है कुछ सुगबुगाहट/लौट रहा है फिर से जीवन।"

कहते हैं कि समय सदा एक सा नहीं रहता है। समय सदा परिवर्तित होता रहता है। आज दुख है तो कल सुख। सुख और दुख जीवन के दो पहलू हैं। हमें समय-समय पर कभी हर्ष और कभी विषाद से दो-चार होना पड़ता है। यही जीवन का अटल सत्य है। 'ज़िंदगी' कविता में कवि दुख- सुख को समान रूप से स्वीकार कर अपनाने का संदेश भी देता है। कवि कहता है- "ज़िंदगी एक गाना है/जिसे सबको गुनगुनाना है/ कौन यहाँ मूढ़/ कौन सयाना है/यह सब तो 'उसका'/ताना-बाना है/ और ठीक ही तो है/ बकौल ग़ालिब/ दर्द का हद से गुज़रना/ है दवा हो जाना।"

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में कवि 'डर' कविता में समय के अनवरत् प्रवाह के अटल सत्य पर प्रकाश डालता है कि समय निरंतर गतिशील रहता है और उसी के साथ मानव का जीवन आरंभ से अंत समय की ओर गतिशील रहता है। कवि कहता है कि मानव डर-डर कर जीवन जीता है। आशा-आकांक्षा पूरी न होने पर निराश मानव संदेह के अँधेरे में घिरा हुआ अनिश्चितता की परिधि में ही सिमट कर रह जाता है- "डर के भीतर/बैठे डर से/ डर/डर कर/ बीत गया जीवन/.. संदेह के/ मटमैले अँधेरे में घिरी/प्रश्नाकुल मानसिकता को सौंप/अनिश्चिता के बीज बोए/मुट्ठी में भरी रेत-सा/बिखरता गया जीवन/और हम इसे/ खेल समझ/ रीतते गए।"

कविता 'समय' में कवि हर पल को भरपूर जीने का संदेश देता है। समय प्रतिकूल हो या अनुकूल हो। समय के अनुकूल होने की प्रतीक्षा न कर मानव को हर तरह के समय को स्वीकार्य कर हर क्षण को खुल कर जीना चाहिए- "और हम/ हाथ पर हाथ धरे/सोचते रहे/ कि कब समय/ हमारे साथ होगा/ हम प्रतीक्षा में रहे/ समय के ठहरने की।"

प्रस्तुत काव्य-संग्रह के कवि डॉ. राकेश के नाम के साथ जो प्रेम शब्द जुड़ा है, वह उनके स्नेह से सराबोर व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करता है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह में भी भावों में सर्वश्रेष्ठ प्रेमभाव उनकी रचना 'प्रेम' में स्पष्ट परिलक्षित है। प्रस्तुत कविता में कवि कहता है कि न चाहते हुए भी नफ़रत हो जाती हैं लेकिन चाहते हुए भी प्रेम नहीं होता है। यह जीवन का अद्भुत रहस्य है। प्रेम संवादहीनता से शुरू होता है और प्रेम संवादहीनता की स्थिति से मौन की ओर गतिशील होता है- "संवादहीनता से/ शुरू होता है प्रेम/ प्रेम से शुरू होती है/संवादहीनता/अथाह में खो जाती है/थाह/रवता घुल जाती है/नीरवता में/ शब्द अर्थवान हो जाते हैं कभी/होते हुए मौन/ ..प्रेम के/आर-पार है/वैकुंठधाम।"

डॉ. राकेश प्रेम की कविताएँ गागर में सागर भरने के समान हैं। अपने संक्षिप्त आकार में पाठकों तक संपूर्ण संदेश और गहन व गूढ़ अर्थ को पहुँचाने में पूर्णतया सक्षम है। इन कविताओं में जीवन के लगभग सभी पहलू स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। डॉ. राकेश प्रेम के कथन में,"कविता मेरे लिए एक जीवन शैली है, जीवन सत्य है, ऋत है। जीवन को उसकी समग्रता में जीने की उत्कट चाह का एक अनिवार्य प्रतिकर्म है।" प्रस्तुत कथन सुंदर शब्दों की माला में पिरोई डॉ. राकेश प्रेम की अनुभूतिजन्य कविताओं का साक्षी है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कविताएँ आम आदमी के जीवन के प्रत्येक पहलू -पारिवारिक, सामाजिक, मानवीय संवेदना के साथ-साथ भौतिकवादी परिदृश्य में स्नेह व अपनत्व से परायेपन, स्वार्थ, भोगवाद, लुप्त होती मानवीयता, कूटनीति, दोहरे व्यक्तित्व में बदलती मानव की मानसिकता के साथ-साथ राजनीतिक एवं सामाजिक विद्रूपताओं और विसंगतियों का विरोध करती हुईं जीवन के संपूर्ण चित्र को विभिन्न पक्षों से चित्रित कर रही हैं। प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कुछ कविताएँ पौराणिक चरित्रों के प्रतीकों के माध्यम से व्यक्तिगत स्वार्थ एवं लघुता से मुक्त होकर आत्म विश्लेषण व आत्म परिमार्जन कर उदात्त मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करती स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। इसके साथ ही कुछ रचनाओं में जीवन एवं दुनिया की नश्वरता एवं आत्मा के अजर अमर होने संबंधी दार्शनिक भाव स्पष्ट परिलक्षित हैं। प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कुछ रचनाएँ एक रचनाकार की सृजनात्मकता हेतु अनुभूति, संवेदना एवं मौन के भाव से भी संबंधित हैं। इन कविताओं में कवि अपने अस्तित्व की तलाश करता हुआ उसकी जीवंतता हेतु भी अत्यंत जागरूक है। रचना वही कालजयी होती है, जो कल्पना लोक में न विचरकर यथार्थ की ज़मीन पर खड़ी होकर, जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हुई पाठकों को अपने जीवन से जुड़ी हुई अनुभव करवाकर उनके मन को उद्वेलित करने के प्रयास में सफल रहे। यह सारे तथ्य डॉक्टर राकेश प्रेम के प्रस्तुत काव्य-संग्रह में नि:संदेह परिलक्षित हैं। अत: यह काव्य संग्रह कालजयी रचना कहलाने का पूर्णतया अधिकारी है। "डॉ. जयप्रकाश डॉ. राकेश प्रेम की रचनाओं में निरायास भाषा की सहजता और बिंबबोधकता को देखते हैं।" विचारों एवं संवेदना की गहनता एवं गूढ़ता को सहज रूप से प्रवाहमयी भाषा संप्रेषणीय बनाती है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह का सुगठित शिल्प, सधी हुई भाषा और प्रभावी प्रस्तुति कवि प्रतिभा की साक्षी है। पाठक इन कविताओं से स्वयं को जुड़ा हुआ अनुभव करता हुआ, यथार्थ की दुनिया में विचरण करते हुए, प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता।

000

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. राकेश प्रेम, जड़ पकड़ते हुए, बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशन, फगवाड़ा (पंजाब)

2. डॉ. राकेश प्रेम, सूरजमुखी सा खिलता है जो, उजली धूप, बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशन, फगवाड़ा (पंजाब)

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला, सीहोर, मप्र

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला का शुभारंभ अतिथियों द्वारा तथा ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से अतिथियों का स्वागत

कार्यशाला में बच्चियों को मार्गदर्शन प्रदान करते अतिथि- पर्यावरण विद् श्रीमती अमृता राय तथा आइसेक्ट के संचालक श्री सिद्धार्थ चतुर्वेदी

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में बच्चियों को मार्गदर्शन प्रदान करते अतिथि साहित्यकारगण डॉ. लक्ष्मी शर्मा, गीताश्री तथा रश्मि भारद्वाज

कार्यशाला में बच्चियों को मार्गदर्शन प्रदान करते अतिथि साहित्यकारगण डॉ. प्रज्ञा तथा आस्था नवल, कार्यक्रम में उपस्थित श्रोतागण

प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं द्वारा बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को हस्तनिर्मित स्मृति चिह्न प्रदान किए गए

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● July-September 2022 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला, सीहोर, मप्र

सीहोर में ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन द्वारा चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं द्वारा बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को हस्तनिर्मित स्मृति चिह्न प्रदान किए गए।

कार्यशाला में पधारे अतिथियों को ढींगरा फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से स्मृति चिह्न प्रदान करते पंखुरी पुरोहित, अनिल पालीवाल, उमेश शर्मा

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से स्मृति चिह्न प्रदान करते आकाश माथुर

बालिका सशक्तिकरण कार्यशाला में पधारे हुए अतिथियों को ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से स्मृति चिह्न प्रदान करते आकाश माथुर

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।